GOVERNMENT OF INDIA
ARCHÆOLOGICAL SURVEY OF INDIA
CENTRAL
ARCHÆOLOGICAL
LIBRARY
ACCESSION NO 45234
CALL No. 928.912/Ban/RT
D.G.A. 79

[illegible]

गद्यकार बाण

[BANA—A PROSE WRITER]

(बाण विषयक लेखों का संकलन)

45234

सम्पादक :—

प्रो० सत्यपाल रणदेव
एम. ए. (आनर्स)
स्नातकोत्तर प्राध्यापक, संस्कृत विभाग
डी. ए. वी. कालेज जालन्धर।

प्रो० महेन्द्र प्रताप थापर
एम. ए.
स्नातकोत्तर प्राध्यापक, संस्कृत विभाग
डी. ए. वी. कालेज जालन्धर।

928.912
Ban/R.T.

भारतीय संस्कृत भवन—जालन्धर

* प्रकाशक :

डा० डी०जी० मेनन,
प्रधान मन्त्री,
पंजाब प्रादेशिक हिन्दी साहित्य सम्मेलन,
१४—लिंक रोड, जालन्धर।

* सम्पादक :

प्रो० सत्यपाल रणदेव,
प्रो० महेन्द्र थापर,

* प्रथम संस्करण :

१५ अगस्त, १९६५.

LIBRARY
Acc. No 45234
Date 30.1.1967
Call No. 928.912/Ban/R.T.

* सर्वाधिकार सुरक्षित :

* मुद्रक :

श्री गोपाल कृष्ण चोडा,
प्रो० मॉडर्स्ट प्रिंटर्ज,
सैण्ट्रल मिल्ज, जालन्धर।

* [मूल्य : 10-50]

विषय-सूत्र

जीवन, काल एवं कृतित्व

1. बाण की जीवन गाथा	डा० दुर्गादत्त मेनन	3
2. बाण का स्थिति काल	प्रो० सी. आर. नागपाल	20
3. बाण का कृतित्व	प्रो० एस. आर. शर्मा	26

गद्य साहित्य और बाण

4. संस्कृत गद्य साहित्य एक पर्यवेक्षण	प्रो० सत्यपाल रणदेव	39
5. गद्य कवीनां निकषं वदन्ति	प्रो० टेकचन्द शर्मा	53
6. संस्कृत साहित्य में कथा एवं आख्यायिका	प्रो० सत्यपाल रणदेव	57
7. गद्य-परम्परा और बाण	प्रो० महेन्द्र थापर	69
8. बाण का गद्य सौष्ठव	प्रो० कर्णसिंह वर्मा	86
9. गद्यकार बाणभट्ट – एक विहंगम दृष्टि	डा० संसार चन्द्र	95

महाकवि बाण

10. उदात्त कविगुरु श्री बाणभट्ट	श्री विश्व प्रकाश दीक्षित 'बटुक'	103
11. बाण की प्रतिभा	डा० ब्रजलाल गोस्वामी	118
12. बाण एक विश्लेषण	प्रो० सत्या शर्मा	116
13. शैलीकार बाण—एक तुलनात्मक अध्ययन	प्रो० सत्यपाल रणदेव	126

विविध

14. पुरातन आलोचकों की दृष्टि में बाण	प्रो० महेन्द्र थापर	163
15. बाण की काव्यगत मान्यताएं	प्रो० रविदत्त तिवाड़ी	171
16. बाणोच्छिष्टं जगत्सर्वम्	प्रो० सी. मिश्रा	175
17. बाण के पात्र	प्रो० माधो स्वरूप बहल	183
18. बाण कालीन समाज और संस्कृति	डा० धर्मपाल मैनी	189

लेखक-परिचय

* डा० दुर्गादत्त मेनन—एम. ए., पी. एच. डी., अध्यक्ष संस्कृत विभाग, डी. ए. वी. कालेज—जालन्धर।
* डा० संसारचन्द्र—एम. ए. (हि० सं०), पी. एच. डी., रीडर, पंजाब-विश्वविद्यालय प्रादेशिक हिन्दी केन्द्र—जालन्धर।
* डा० व्रजलाल गोस्वामी—एम. ए., (हि० सं० इं०), पी. एच. डी., अध्यक्ष हिन्दी विभाग, गवर्नमैंट कालेज—रोहतक।
* डा० धर्मपाल मैनी—एम. ए., पी. एच. डी., प्रवक्ता हिन्दी विभाग, पंजाब विश्वविद्यालय—चंडीगढ़।
* श्री विश्वप्रकाश दीक्षित 'बटुक'—आकाशवाणी—जालन्धर।
* प्रो० टेकचन्द शर्मा—एम. ए., एम. ओ. एल.—प्राध्यापक हिन्दी, संस्कृत विभाग, दाबा कालेज—जालन्धर।
* प्रो० सी. मिश्रा—एम. ए., व्याकरणाचार्य—विक्रमपुरा—जालन्धर।
* प्रो० माधव स्वरूप बहल—एम. ए., प्राध्यापक हिन्दी विभाग, दाबा कालेज—जालन्धर।
* प्रो० सी. आर. नागपाल—एम. ए., प्राध्यापक संस्कृत विभाग, सनातन धर्म कालेज—अम्बाला कैन्ट।
* प्रो० सत्या शर्मा—एम. ए., प्राध्यापक संस्कृत विभाग, एफ. सी. कालेज फार वुमैन—हिसार।
* प्रो० महेन्द्र थापर—एम. ए., प्राध्यापक संस्कृत विभाग, डी. ए. वी. कालेज—जालन्धर।
* प्रो० कर्णसिंह वर्मा—एम. ए., प्राध्यापक संस्कृत विभाग, डी. ए. वी. कालेज—जालन्धर।
* प्रो० एस. आर. शर्मा—एम. ए., प्राध्यापक संस्कृत विभाग, राजेन्द्रा कालेज—फगवाड़ा।
* प्रो० रविदत्त तिवाड़ी—एम. ए., शास्त्री—प्राध्यापक संस्कृत विभाग, डी. ए. वी. कालेज—जालन्धर।
* प्रो० सत्यपाल रणदेव—एम. ए.,—प्राध्यापक संस्कृत विभाग, डी. ए. वी. कालेज—जालन्धर।

———

आमुख

साहित्य रूपी पयस्विनी पद्य और गद्य के कूलों में प्रवाहित होती रहती है। कभी साहित्य में पद्य को महत्त्व प्राप्त होता है और कभी गद्य को। साहित्य की इन दोनों विधाओं ने साहित्यकारों को दो भागों में विभक्त कर दिया है। कालिदास कविता के क्षेत्र में यशस्वी प्रतिनिधि माने जाते हैं और बाणभट्ट गद्यकार के रूप में संस्कृत साहित्य में सर्वोच्च स्थान प्राप्त करते हैं।

यदि सूक्ष्म दृष्टि से देखा जाए तो गद्य और पद्य में कोई विशेष भेद नहीं। केवल छन्दों की परिधि को यदि हटा दिया जाए तो वे एक ही हो जाते हैं। विश्व के आरम्भ में जब मानव के पास वाक्-भण्डार कम था तो उसने पद्य की रचना की। भाषा का जब उत्तरोत्तर विकास होता गया, मानव का शब्द-सागर उत्ताल-तरंगों में नाचने लगा तो गद्य की रचना की गई। इस प्रकार पद्य और गद्य—साहित्य रूपी महान् न्यग्रोध की दो शाखायें हैं, जो आपस में सदा उठखेलियां करती रहती हैं।

पद्य में अनुभूति की प्रधानता होती है और गद्य में अभिव्यक्ति को अधिक महत्व दिया जाता है। कालिदास और बाण—इन दोनों को मानदण्ड मानकर संस्कृत साहित्य के अन्य कवियों की आलोचना की जाती है। कवियों की प्रतिभा के आयाम का निर्णय इन दोनों को अपनी अपनी विधा का प्रतिनिधि समझ कर ही किया जाता है। इन दोनों कवियों की तुलना करते हुए हम किसी को छोटा या बड़ा नहीं कह सकते। दोनों ही अपनी अपनी विधा में सर्वातिशायी हैं। कालिदास गगन विहारी पक्षी है तो बाण इस कठोर धरातल पर चलने वाला मुगशावक है। उड़ते दोनों ही हैं, पर एक की उड़ान कल्पना के पंखों के सहारे है और दूसरे की उड़ान में धरातल के साथ संपर्क बना रहता है।

बाणभट्ट केवल एक गद्यकार ही नहीं, एक विशिष्ट प्रकार की गद्य शैली के आविष्कर्ता भी हैं। इस कारण शैलीकार के रूप में आपका स्थान कुछ अंशों में कालिदास से ऊँचा है। साहित्य में एक ही पिटी पिटाई लीक पर चलने वाले कवि तो कई होते हैं परन्तु एक नवीन शैली के जन्मदाता और उसके परिष्कर्ता तो केवल बाणभट्ट जैसे कोई विरले ही होते हैं। बाणभट्ट ने 'हर्षचरित' के आरम्भ में उन कुछ गद्यकारों का उल्लेख किया है जो उनसे पहले इस क्षेत्र के प्रतिनिधि लेखक गिने जाते थे, परन्तु उनकी शैलियों में जो दोष थे उनका निराकरण कर आपने जो पाञ्चाली शैली का आविष्कार किया उससे आपका गौरव इतना ऊँचा उठा कि कोई आपको पंचबाण,

कोई पञ्चानन और कोई बाण के परवर्ती सभी साहित्यकारों को अपने उच्छिष्ट प्रसाद को बाँटने वाला कहने लगे।

इसी विलक्षण प्रतिभाशाली बाण के महान् व्यक्तित्व और कृतित्व पर पंजाब के विद्वानों ने जो विचार प्रकट किये हैं उनका समन्वय इस पुस्तक में किया गया है। प्रस्तुत पुस्तक की रूप-रेखा निर्माण में भारत के मूर्धन्य साहित्यकार आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी जी का वरद-हस्त साथ रहा है तथा उनके ही आशीर्वाद के फलस्वरूप यह महान् कार्य सम्पन्न हुआ है।

इस पुस्तक के प्रकाशन में सम्मेलन के सामने बहुत सी कठिनाईयां आईं पर पंजाब प्रादेशिक हिन्दी साहित्य सम्मेलन के प्रधान मन्त्री डा० दुर्गादत्त मेनन तथा पंजाब के ख्यात नामा प्रो० सत्यपाल रणदेव के सतत प्रयत्नों द्वारा हमारा यह स्वप्न आज साकार हुआ है। इस पुस्तक में जिन विद्वान् लेखकों ने अपना अमूल्य समय यापन कर जो हमें लेख भेजे हैं उनके लिए सम्मेलन सदा आभारी रहेगा।

अन्त में मैं पंजाब भाषा विभाग के अधिकारी वर्ग एवं शिक्षा मन्त्री पंजाब के प्रति सम्मेलन की ओर से आभार प्रदर्शन करना अत्यन्त आवश्यक समझता हूँ जिनके अनुदान से यह ग्रन्थ प्रकाशित हुआ।

प्रि० रलाराम
एम. ए., एम. एल. ए.
प्रधान, पंजाब प्रादेशिक हिन्दी साहित्य सम्मेलन
जालन्धर

श्रावणी पूर्णिमा—१३-८-६५.

दो शब्द

संस्कृत के कवियों का शोधात्मक अध्ययन यद्यपि गत दो शतकों से जारी है, तथापि वह अध्ययन प्रायः कवि के बहिरंग पक्ष तक ही सीमित रहा है। कवि का काल-निर्णय, कवि की जन्मभूमि, इस की कृतियां, व्यक्तिगत धारणाएँ, आस्थाएं तथा विश्वास आदि के विषय में ही अधिक अध्ययन अब तक हुआ है। कवि की कृतियों का शुद्ध साहित्य अथवा कला की दृष्टि से अध्ययन अभी तक प्रायः उपेक्षित सा ही रहा है। केवल संस्कृत ही नहीं, राष्ट्र भाषा हिन्दी के साहित्य का भी कला की दृष्टि से गम्भीर अध्ययन हाल में ही आरम्भ हुआ है। नहीं तो उसका भी अध्ययन प्रायः बहिरंग पक्ष तक ही सीमित रहा है। तुलसी जैसे कवि के काल, कृतियां एवं जीवनी आदि पर शोध प्रबन्ध तो आरम्भ से ही मिलते हैं, पर कवि की दृष्टि से उसका विवेचन आरम्भ हुए बहुत देर नहीं हुई।

इसलिए यदि संस्कृत जैसी प्राचीन भाषा के कवियों का शुद्ध कला की दृष्टि से अध्ययन गतकाल में उपेक्षित रहा है तो इस में आश्चर्य की कौन सी बात है। तो भी साहित्य के इतिहास से सम्बद्ध पुस्तकों में थोड़ा बहुत विचार इस दृष्टि से अवश्य हुआ और उसका सूत्रपात भी ए. बी. कीथ की साहित्य-इतिहास विषयक पुस्तकों से प्रायः होता है, पर वह अध्ययन संक्षिप्त और सीमित होने के साथ साथ एकांगी है। हाल में ही कुछ विद्वानों ने कालिदास, शूद्रक, श्रीहर्ष और माघ आदि का बाह्य एवं आन्तर दोनों दृष्टियों से अध्ययन प्रस्तुत करके इस दिशा में सराहनीय कार्य किया है।

प्रस्तुत पुस्तक 'गद्यकार बाण' भी उसी अध्ययन शृंखला की एक कड़ी है। इस पुस्तक में बाण का अध्ययन समग्रता से प्रस्तुत किया गया है और इसीलिए विभिन्न विद्वानों से बाण-विषयक विविध लेखों को आमन्त्रित करके पुस्तक को संकलन का आकार दिया गया है। इस पुस्तक के प्रणयन में हमने जिन लेखकों के लेखों को प्रकाशित किया है उनके प्रति हम विशेष आभारी हैं और इसके साथ ही स्थानाभाव के कारण यदि किसी लेखक का लेख इस पुस्तक में स्थान न पा सका हो तो उस के लिए हम क्षमा प्रार्थी हैं।

प्रस्तुत पुस्तक का निर्माण संस्कृत के स्नातकोत्तर छात्रों की आवश्यकताओं को ध्यान में रख कर किया गया है। इसमें बाण सम्बन्धी सभी पहलुओं पर लेख लिखे गए हैं। पुस्तक को हमने चार खण्डों में बांटा है। प्रथम भाग में बाण के जीवन, उनके काल एवं रचनाओं से सम्बन्धित लेख संगृहीत हैं। दूसरे भाग में संस्कृत के गद्य साहित्य

और विशेषत: बाण के गद्य साहित्य की विवेचना की गई है। तीसरे खण्ड में बाण का मूल्यांकन एक महाकवि के रूप में किया गया है। अन्तिम भाग में बाण विषयक अन्य महत्वपूर्ण लेखों का संकलन है।

इस पुस्तक के प्रकाशन के दिनों में हमें इस सम्बन्ध में साधुवाद के अनेक पत्र पंजाब, इलाहाबाद, लखनऊ, देहली, आगरा, उज्जैन आदि विश्व-विद्यालयों के प्राध्यापकों से तथा अन्य कई विद्वानों के प्राप्त होते रहे हैं। उन यशस्वी विद्वानों का हम हार्दिक धन्यवाद करते हैं और आशा रखते हैं कि वे इस पुस्तक को उसी प्रेम से अपना कर पंजाब के उदीयमान लेखकों को प्रोत्साहित करते रहेंगे।

पुस्तक को और अधिक उपयोगी बनाने में यदि विद्वान् पाठक अपने सुझाव भेजें तो हम उनके हृदय से आभारी रहेंगे।

अन्त में हम श्रद्धेय आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, गुरुवर डा० दुर्गादत्त मेनन तथा उन सब विद्वानों का हार्दिक धन्यवाद करते हैं जिनकी प्रेरणा और परामर्श ने हमें इस पुस्तक के प्रकाशन में अमूल्य योग दिया है।

संस्कृत विभाग,
डी. ए. वी. कालेज, जालन्धर
15 अगस्त 1965.

—सम्पादक

जीवन, काल एवं कृतित्व

* बाण की जीवन-गाथा
* बाण का स्थिति काल
* बाण का कृतित्व

'नमामि भत्सोश्चरणाम्बुजद्वयं सशेखरैर्मौलिरिभिः कृतार्चनम् ।
समस्तसामन्तकिरीटवेदिकाविघट्टपीठोल्लुठितारुणाङ्गुलिः ॥'

: १ :

बाण की जीवन-गाथा

सभी देशों में वहाँ के महान् व्यक्तियों की जीवनियों को लिखने की प्रथा है। कुछ समय से राष्ट्रों के महान् नेता अपनी-अपनी जीवनियाँ स्वयं लिखने लग पड़े हैं। इन्हें साधारण भाषा में आत्म-कथा अथवा आप बीती कहा जाता है। वर्तमान काल के विख्यात नेताओं जैसे महात्मा गाँधी, पं० जवाहरलाल नेहरू, डा० राजेन्द्र प्रसाद आदि ने अपनी अपनी आत्म-कथायें लिख कर जनता को यह बताने का प्रयास किया कि उनके जीवन की धारा सम और विषम तलों में कैसे बहती रही, उनके जीवन को किन-किन घाटियों से गुज़रना पड़ा।

बाण भट्ट केवल भारत के ही नहीं अपितु विश्व के उन महान् साहित्यकारों में से हैं जिन्होंने आत्म-कथा लिखने की पद्धति का सूत्रपात किया। आप से पूर्व विश्व के किसी भी साहित्यकार ने यह बताने का प्रयत्न नहीं किया कि उसके जीवन के उज्ज्वल पक्ष और अन्धकारपूर्ण पक्ष कौन से थे? अपने जीवन की सफलताओं और उपलब्धियों को बताने वाले तो संभवतः कुछ संस्मरण-लेखक मिल जाएँ, परन्तु उस सुदूर अतीत काल में अपनी दुर्बलताओं और विवशताओं को निर्भीकता से प्रकट करने वाला केवल भट्ट बाण ही था। इसी विशेषता के कारण हम उसे विश्व का सर्वप्रथम मुखर साहित्यिक प्रतिनिधि कहने का साहस करते हैं।

आत्म कथा के आविष्कारक के रूप में बाण भट्ट का व्यक्तित्व अत्यन्त ऊँचा उठ जाता है। उनकी साहित्यिक विशेषताओं को तो सभी संस्कृत साहित्य के पढ़ने वाले जानते हैं, परन्तु उनकी इस महान् कला के सर्व प्रथम कलाकार के रूप में जानने वाले बहुत थोड़े व्यक्ति हैं।

बाण ने अपनी दोनों कृतियों 'हर्षचरित' और 'कादम्बरी' में अपने जीवन की गाथा को गा कर सुनाने का प्रयास किया है।

हमने इसी कारण उस के जीवन को केवल आत्म कथा न कह कर उसे जीवन गाथा कहना ही उचित समझा है। बाण ने अपने जीवन की कथा वास्तव में अपने उपाख्यानों के समान गाकर ही सुनाई है। एक गीतकार के समान उसने यद्यपि अपनी

कहानी गीतों में नहीं लिखी परन्तु हम उसे फिर भी संगीतमयी इसलिए कहते हैं कि उसके एक-एक शब्द में संगीत है, लय है, लास्य है। उस का गद्य, पद्यमय है। उसकी रचनाओं को साहित्यकार कोरा गद्य न कह कर गद्य-काव्य कहते हैं। वास्तव में उन्हें गद्य काव्य कहना भी सर्वथा उचित नहीं, उन्हें तो जीवन के गीत ही कहना उचित है।

उस के जीवन को गीत इस कारण भी कहा जाता है कि उसमें सरसता है, माद-कता है, आकर्षण है, लालित्य है एवं ओज और प्रसाद भी है। उस का जीवन गीत उस निर्झर का स्मरण कराता है जो सदा अपनी ही मस्ती में गाता रहता है। वह उस ज्योत्स्ना के समान है जो अपनी निर्मलता में आप ही मुस्कराती फिरती है। वह शरत्-कालीन गगन की स्वच्छता के समान है जो स्वयं ही अपनी स्वच्छता में सदा प्रसन्न दिखाई देती है।

बाण ने जीवन के बहुमुखी पक्षों और परिवेशों का स्वयं अनुभव किया। उसने १४ वर्ष की आयु में एक यायावर के समान संपूर्ण भारत का भ्रमण किया। उसने अनेक प्रकार की नाटक-मण्डलियों में सम्मिलित होकर उस अबोध अवस्था में जीवन के रस को चखने की उत्सुकता प्रकट की। उसने समाज के अनेक प्रकार के स्तरों का प्रति-निधित्व करने वाले निम्न और अभिजात्य वर्ग के लोगों के साथ मिल कर जीवन की रागनियों के आरोह और अवरोह के स्वरों को अनुरणित किया।

उसने जीवन में अपने उन भाइयों से भी सहोदरों जैसा स्नेह प्रकट किया जो उसकी शूद्रा माता के गर्भ से पैदा हुए थे। वह अपने इन भाइयों चन्द्रसेन मातृषेण का भी उल्लेख करता हुआ समाज की मिथ्या गहंणा से घबराता नहीं, वह अपनी मण्डली में रहने वाली नर्तकियों, गायिकाओं और विलासिनियों का भी वर्णन करता हुआ लोक लज्जा की झूठी विभीषिका से कतराता नहीं।

यह है उस महान् कवि का विशिष्ट व्यक्तित्व और उदात्त चरित्र। संसार में वह व्यक्ति महान् है जो अपने दोषों को जन साधारण की दृष्टि से डर कर छिपाता नहीं। जो अपनी त्रुटियों, अक्षमताओं और दुर्बलताओं को सब के समक्ष निडर होकर वर्णन करने से नहीं चूकता वही मानव संसार का नेता बनता है। राष्ट्र का सही कर्णधार और उन्नायक होता है।

बाण भट्ट वास्तव में तुम महान् हो। तुम युगमानव हो। तुम युगावतार हो। तुमने अपने जीवन को आड़म्बर पूर्ण शब्दावली की नीहारिका में प्रच्छन्न करने का प्रयास नहीं किया। तुम्हारा जीवन दर्पण के समान स्वच्छ है। तुम्हारा जीवन उस आलोक-स्तंभ के समान निरावृत और जागृत है जो अपने आलोक से, पथ-भ्रष्ट नाविकों को मार्ग दिखाता है।

तुम्हारी लेखनी में वह ओज और प्रवाह है जो मृत प्राय: लोगों की धमनियों में उष्ण-रक्त का संचार करता है।

देवी यशोमती महाराजा प्रभाकर वर्धन, युवराज राज्यवर्धन, सेनापति 'सिंहनाद एवं गजाधिप स्कन्दगुप्त की वाणियों में बैठकर तुमने जो वीरता का विरुद गाया है उसे क्या भारत कभी भूल सकेगा ?

इस साधारण परिचय के अनन्तर हम बाणभट्ट की उसके अपने ही शब्दों में जीवन गाथा का चित्रण करते हैं।

बाण ने हर्षचरित के पहले तीन-उच्छ्वासों में अपनी जीवनगाथा को गाकर उसे महाराजा हर्ष वर्धन की यशोमयी रागिणी में मिला दिया है। कादम्बरी में वह केवल आरम्भिक पद्यों में ही अपने पितृजनों का वर्णन कर उसकी कथा को आरम्भ कर देता है।

हम यहाँ मुख्यतया 'हर्ष-चरित' के आधार पर ही उसकी जीवन गाथा को चित्रित करने का प्रयास करते हैं।

बाण भट्ट ने अपने वंश का उद्भव सरस्वती देवी और वत्स से किया है। सरस्वती का दुर्वासा के शाप के कारण मर्त्यलोक पर अवतरित होना, उसके साथ सावित्री का भी यहाँ आना और हिरण्यबाहु नद के समीप निवास करना, दधीच के साथ सरस्वती का प्रणय एवं विवाह तथा वर्ष के अनन्तर दधीच को जन्म देकर सरस्वती का ब्रह्मलोक वापिस जाना, दधीच द्वारा अपनी भ्रातृजाया अक्षमाला को अपने सारस्वत पुत्र को पालन पोषण के लिए अर्पण कर तपस्या के लिए च्यवन के आश्रम जाना, अक्षमाला के भी उसी अवसर पर पुत्र का जन्म होना तथा उसके द्वारा सारस्वत पुत्र और अपने पुत्र वत्स का पालन करना इन सभी घटनाओं का उल्लेख बाण भट्ट ने प्रथम उच्छ्वास में बड़े ही कलापूर्ण शब्दों में किया है।

बाण ने अपने वंश की धवल कीर्तिपताका की डोरी सरस्वती के हाथ में पकड़ा कर अपने वंश को अत्यन्त पावन और अभिजात्य बना दिया।

सारस्वत पुत्र ने अपने भाई के वत्स को सारी विद्याओं की शिक्षा दी। प्रीतिकूट नामक स्थान पर उनका आवास बनाकर उसे गृहस्थ में दीक्षित कर उसने तपोवन की यात्रा की।

इस प्रकार बाण भट्ट वत्सगोत्रीय कहलाया।

अपनी वंश परम्परा का उल्लेख करता हुआ बाणभट्ट आगे लिखता है कि इसी सोमपायी और वेद-वेदांग की विद्या में निष्णात वंश में कुबेर नाम के एक अत्यन्त मनस्वी ब्राह्मण का जन्म हुआ।

'कादम्बरी' में भी उसे ही इस वंश का जगद्वन्दनीय पूर्व पुरुष कहा गया है[1] :—

बाणभट्ट का वंश वेदविद्या और भौतिक सम्मृद्धि का केन्द्र था। कुबेर वास्तव में धन कुबेर भी था और उसके चरणों की रज को अपने भाल की बिन्दी बनाने के लिए गुप्तवंशी राजागण सदा लालायित रहते थे। उसके आवास में सरस्वती सदा स्मेरमुख होकर निवास करती थी। कुबेर के इस स्वर्णोपम प्रासाद में तोते और मैना वेदपाठी ब्रह्मचारियों की त्रुटियों को पकड़ने के लिए सदा तत्पर रहते थे।

बाण यहाँ कल्पना और स्वप्न के जगत में नहीं पहुँचता, वह वास्तविकता का चित्रण करता है। वह बिना किसी अतिरंजना के अपने वंश की अनन्त सम्मत्ति और ऐश्वर्य का यथार्थ रूप में वर्णन करता है।

इस युग मानव के अनन्तर हर्षचरित और कादम्बरी की वंश परम्परा में कुछ अन्तर सा दिखाई देता है। हर्षचरित कुबेर के चार पुत्रों का उल्लेख करता है, जिनके नाम इस प्रकार हैं :—तस्याभवन्-अच्युत, ईशान, हरः पाशुपतश्चेति चत्वारो पुत्राः। अर्थात् कुबेर ने अच्यत, ईशान, हर और पशुपत नाम क चार पुत्र उत्पन्न हुए। 'तत्र पाशुपतस्यैक-एवाभवत्.....अर्थपतिरिति नाम्ना महात्मा सूनुः' अर्थात् पाशुपत का अर्थपति नामक एक ही पुत्र उत्पन्न हुआ।

कादम्बरी में कुबेर के अनन्तर अर्थ पति का उल्लेख बाण ने किया। इसमें पशुपत का नाम नहीं पाया जाता। इस अन्तर के कुछ कारण ये हो सकते हैं :—

---

[1]बभूव वात्स्यायनवंशसंभवो,
द्विजो जगद्गीतगुणोऽग्रणीः सताम्।

अनेकगुप्तार्चितपादपंकजः,
कुबेरनामांश इव स्वयंभुवः॥

उवास यस्य श्रुति शान्त कल्मषे,
सदा पुरोडाशपवित्रिताधरे।

सरस्वती सोमकषायितोदरे,
समस्तशास्त्रस्मृति बन्धुरे मुखे॥

जगुर्गृहेऽभ्यस्तसमस्त वाङ्मयैः,
ससारिकैः पञ्जरवर्तिभिः शुकैः।

निगृह्यमाणा वटवः पदे पदे,
यजूंषि सामानि च यस्य शंकिताः॥

(कादम्बरी पूर्वभागः १०—१२)

(i) कादम्बरी के कुबेर और अर्थ पति के मध्य के एक या दो श्लोक लुप्त हो गये हों।

(ii) कादम्बरी में सुदीर्घ वंश परम्परा के स्थान में संक्षिप्त वंशावलि देने की चेष्टा की गई हो ।

अर्थ पति के अनन्तर फिर दोनों ग्रन्थों में वंशावलि में कोई भेद नहीं पाया जाता। अर्थ पति के समय में भी इस वंश के वैभव में कोई न्यूनता नहीं आई थी। यह महा-प्रतापी ब्राह्मण राजाओं से किसी प्रकार भी कम ना था। इसने भी अनेकों यज्ञों को करके राजाओं के समान देवालय को जीत लिया था।

अर्थ पति के ११ रुद्रों के समान ११ पुत्र उत्पन्न हुए जिनके नाम इस प्रकार हैं— भृगु, हंस, शुचि, कवि महीदत्त, धर्म, जातवेदस्, चित्रभानु, अक्ष, अहिदत्त तथा विश्वरूप।

इन ११ पुत्रों में से चन्द्रभानु से हमारे चरित नायक का जन्म हुआ। आप की माता का नाम राजदेवी था। बाण शैशव में ही अपनी माता से वियुक्त हो गया था। उस के पिता ने ही माता के समान उसका पालन पोषण किया।

कुछ समय के अनन्तर बाण की शिक्षा आरम्भ हुई। उसका उपनयन संस्कार विधिवत् किया गया। सरस्वती के वंशज होने के कारण संपूर्ण विद्याएं उसे मानों स्वयं ही प्राप्त हो गईं। अभी वह चौदह वर्ष का भी नहीं हुआ था कि पिता ने उसका समा-वर्तन संस्कार भी कर दिया। इस प्रकार पिता के द्वारा उस के श्रुतिस्मृति एवं शास्त्रों में प्रतिपादित सभी आवश्यक संस्कार किये गये। संभवतः शीघ्र आने वाली मृत्यु का ज्ञान उसे पहले ही हो गया था।

यहां बाण ने यह नहीं लिखा कि उस के पिता ने उसका पाणिग्रहण भी कर दिया था। ऐसा प्रतीत होता है कि उसका पिता उसका विवाह नहीं रचा सका और यमराज ने उसे अपूर्णावस्था (आदशमीस्थ) ही अपने पुत्र से छीन लिया।

परन्तु बाद में द्वितीय उच्छ्वास में जब वह सम्राट हर्ष के अधिक्षेप का उत्तर देते हुए कहता है—'दार परिग्रसादाभ्यागारिकोऽस्मि' का मे भुजंगता? तब यह स्पष्ट हो जाता है कि पिता की मृत्यु के अनन्तर जब वह अपने महान पर्यटन से घर वापस आया तब उसका विवाह हुआ होगा।

इस सम्बन्ध में यह भी बताना आवश्यक है कि विवाह के अनन्तर बाण के चरित्र में कोई विशेष दोष नहीं आया।

उस में यदि कुछ उच्छृंखलता आई वह पिता की मृत्यु और विवाह से पहले ही यौवन के प्रथम सोपान पर पैर रखते ही आई होगी।

बाण भट्ट इस प्रसंग में बड़े साहस और निर्भीकता के साथ स्वयं ही उन अपने साथियों तथा नाटक मण्डलियों का उल्लेख करता है, जिन के साथ वह उस आयु में निरंकुश होकर भ्रमण करता रहा।

पिता के देहावसान के अनन्तर बाण भट्ट कुछ समय तक तो अत्यन्त शोक विह्वल होकर किसी न किसी प्रकार अपने घर में ही बन्द होकर अपने दिन व्यतीत करता रहा। परन्तु समय ने पिता की मृत्यु के भारी घाव को भर दिया और वह चढ़ती जवानी की मादकता और अविनयशीलता के कारण एक लापरवाह धूमक्कड सा बन गया।

उस समय उसके सैंकड़ों सहचर और सखा बन गए, जिन में से कुछ का नाम वह इस प्रकार निर्दिष्ट करता है—दो पिता की शूद्रा पत्नी से उत्पन्न उसके भाई—चन्द्रसेन और मातृषेण, भाषा का कवि ईशान जो उसका अत्यन्त प्रिय मित्र था, रुद्र और नारायण नामक दो उसके अत्यन्त प्रशंसक सखा, वारबाण और वासबाण नाम के दो अत्यन्त विद्वान् व्यक्ति, वेणीभारत नाम का वर्ण कवि अर्थात् भाषा-गीतिकार, प्राकृत भाषा में रचना करने वाला कुलपुत्र वायुविकार, अनंगबाण और सूचीबाण नाम के दो भाट, चक्रवासिका नाम की कात्यायनी अर्थात् पचास वर्ष के लगभग आयु वाली कुमारी वृद्धा स्त्री, संभवतः यह बाण भट्ट की पोष्य जननी-धाया होगी, भिषक्-वैद्य मयूरक, ताम्बूलपरिचारक-भण्डक, वैद्यपुत्र मन्दारक, पुस्तक का पाठक सुदृष्टि, कलाद नाम का सुवर्णकार. सुवर्ण तथा रत्न आदि का अध्यक्ष सिन्धुषेण, गोविन्दक नामक लिपिक, चित्रकार-वीरवर्मा, मिट्टी के खिलौने बनाने वाला कुमारदत्त, तबला बजाने वाला जीमूत. सोमिल और ग्रहादित्य नाम के दो गायक, प्रसाधन कला में चतुर कुरंगिका नाम की रमणी, मधुकर और पारावत नाम के दो वंशीवादक, दर्दरक नाम का नृत्य, गायन और नाटक कला का आचार्य, केरलिका नाम की चरण दबाने वाली परिचारिका, युवानर्तक ताण्डविक, द्यूतकार आखण्डल, भीमक नाम का कितव अर्थात् धूर्त विट—ये लोग बड़े लोगों के चाटुकार होते थे और उनकी उचित एवं अनुचित प्रत्येक बात में हाँ मिलाते थे, युवा नृत्यकार शिखण्ड, नर्तकी हरिणिका, पराशरीभिक्षु सुमति, जैन साधु वीरदेव, कथावाचक जयसेन, शैवसाधु वक्रकोण, तान्त्रिक-कराल, असुर-बिवर अर्थात् पाताल में जाने की विधि जानने वाला लोहिताक्ष, ये लोग भूमि और पर्वतों में सुरंगें लगाने का काम करते थे और साधारणतया यवन लोगों थे, रसायन विधि को जानते वाला—विहंगम, घटवाद्य बजाने वाला—दामोदर, घड़ा बजाना भी एक कुशल वाद्यकार का काम है—काश्मीर में यह वाद्य अत्यन्त प्रचलित है, जादू-टूना करने के खेल दिखाने वाला—चकोराक्ष एवं सन्यासी ताम्रचूडक इत्यादि।

इन तथा अन्य साथियों के साथ अबोध अवस्था होने के कारण देशान्तर भ्रमण की अत्युत्कट अभिलाषा से वशीभूत होकर बाण भट्ट अपने घर से निकल पड़ा।

उस अबोध आवस्था में भी बाण भट्ट यह अनुभव करता था कि उस जैसे उच्च वंश के व्यक्ति का इन साधारण लोगों के साथ नाटक मण्डली में सम्मिलित होना सर्वथा अनुचित था और वह यह स्पष्ट कहता है कि हमारे घर में धनधान्य की कोई कमी न थी और पठन-पाठन निर्बाध रूप से चल रहा था। इतना कुछ होने पर भी मैं मस्त हाथी के समान निरंकुश हो गया। यौवन की आन्धी और चञ्चल मन ने मुझे क्षण में ही लोगों का उपहास पात्र बना डाला।

परन्तु इस आत्म-विडम्बना के अन्तस्तल में भी कुछ भलाई प्रच्छन्न रूप से छिपी पड़ी थी। बाणभट्ट ने इन लोगों के साथ रहते हुए भी कई प्रकार के नवीन अनुभव प्राप्त किए। उस ने अनेकों राजकुलों को देखा, जिन के परमोदार आचार-व्यवहार ने उस के मन को आकृष्ट किया, उस ने अनेक प्रकार की विद्याओं के अध्ययन और अध्यापन के केन्द्र, अनेक विद्या पीठों को देखा। बाण विद्वानों की गोष्ठियों में उपस्थित होता रहा। उस ने नैसर्गिक गांभीर्य के अवतार विपश्चिद्वरों की मण्डलियों में भाग लिया। इस प्रकार यौवन के कारण जो उस की विमल बुद्धि पर तमोगुण का पर्दा पड़ गया था, वह स्वयं ही विलुप्त हो गया और वह अपनी जन्मभूमि को वापस आ गया। यहां आकर वह वात्स्यायन वंश की परम्परा के अनुसार अच्छे मित्र और बन्धुओं की संगत में रह कर अत्यन्त सानन्द अनुभव करता हुआ सुख से रहने लगा। बाणभट्ट ने यहाँ अपनी उच्छृंखलता की अस्थायी कथा को छिपाया नहीं। उस ने जो कुछ किया उसे स्पष्ट रूप से बता दिया। यही महान् व्यक्ति की विशेषता होती है। वह अपने अपराधों को स्वीकार करता है और उन के लिए एक प्रकार से प्रायश्चित करता है।

इस पुनरावर्तन के साथ बाणभट्ट के जीवन का एक भाग समाप्त हो जाता है। सम्भवतः इस के अनन्तर उस ने पाणिग्रहण किया और विशुद्ध गृहस्थी के समान अपना जीवन व्यतीत करना आरम्भ कर दिया। वंश की परम्परा को अक्षुण्ण रखने के लिए उस ने अध्ययन और अध्यापन का काम आरम्भ कर दिया।

प्रीतिकूट नामक ग्राम जो ब्राह्मणों का आवास था, बाण के आने से हर्षोन्मत्त हो उठा। बाण अपने सम्बन्धियों के घरों में जाकर घर में वृद्ध पुरुषों और नारियों का अभिनन्दन प्राप्त करने लगा। उस समय यह ग्राम इन वेदपाठी और सदा यज्ञ करने वाले ब्राह्मणों के पावन चरणों से पुनीत था। घर-घर में यज्ञ होते थे। वेदों का पाठ तोता और मैना भी करते थे। सारे भारत से लोग विद्या-अध्ययन के लिए यहाँ आते

थे। उस समय क्षत्रिय ब्राह्मणों के घरों में जो विशुद्ध वातावरण पाया जाता था उस की झलक बाण के इन शब्दों में पाई जाती है—'ब्राह्मणों के घर निरन्तर वेद ध्वनि से मुखरित हो रहे थे। त्रिपुण्ड्र भस्म से मस्तकों को लेपे हुए सोम यज्ञों के इच्छुक सैकड़ों छात्र यहाँ एकत्रित थे। घरों के समक्ष सोम की हरी-हरी क्यारियाँ शोभित होती थीं। कुमारी कन्याएं नीवार—एक प्रकार का धान्य—की पूजा करती थीं। सैकड़ों गायें जो अभिक्षा बनाने के योग्य अनन्त दूध देने में समर्थ थीं, घर-घर के आंगन में बन्धी हुई थीं।

भारत के ग्रामों के वैभव का यह जीवित और जागृत चित्र है। वैभव के साथ चरित्र और विद्या का अध्ययन उस समय चरम सीमा तक पहुँच चुका था।

इस प्रकार अपने ग्राम की चारित्रिक विशुद्धि और वैदिक कर्म काण्डों के प्रति अनन्य निष्ठा का वर्णन करता हुआ, बाण अपने जीवन यात्रा के नवीन अध्याय को प्रस्तुत करता है।

वह वसन्त का वर्णन नहीं करता परन्तु एक नवीन शैली के अनुसार ग्रीष्म के अवतार के साथ उस का वर्णन स्वयं ही हो जाता है। आगे होने वाली आकस्मिक घटनाओं की विभीषिका और आशंकाओं से उस का मन पहले ही विचलित सा होने लगता है।

तभी ग्रीष्म ऋतु में एक दिन जब बाणभट्ट मध्यान्ह का भोजन कर अपने घर में विश्राम कर रहे थे तब उन की शूद्रा विमाता के पुत्र चन्द्रसेन ने उन्हें आकर सूचना दी कि सम्राट हर्षवर्धन के भाई महाराजा कृष्ण का एक अनुचर द्वार पर आप के आदेश की प्रतीक्षा कर रहा है। बाण ने उसे शीघ्र ही अन्दर भेजने को कहा। अन्दर आते हुए उस लेख हारक को देख कर बाण ने सम्राट के भ्राता महाराजा कृष्ण का कुशल समाचार पूछा। 'वे हर प्रकार से कुशलपूर्वक हैं। 'उन्होंने आप के नाम यह पत्र दिया है' यह कह कर वह बाणभट्ट के समीप ही बैठ गया। उस के हाथ से पत्र ले बाणभट्ट ने उसे स्वयं पढ़ा। पत्र का सार इस प्रकार था—'आप स्वयं बुद्धिमान हैं। पत्र में बहुत कुछ नहीं लिखा जाता। लेखलक आप को स्वयं ही सम्पूर्ण समाचार से अवगत कर देगा।' बाण ने पत्र पढ़ कर अन्य सभी उपस्थित लोगों को वहाँ से विदा किया और लेखलक से उस समाचार के सम्बन्ध में अपनी जिज्ञासा प्रकट की।

लेखलक ने कहा—'स्वामी ने आप को इस प्रकार कहा है :—साधारणतया स्नेह के कई कारण होते हैं। परन्तु न जाने मेरे हृदय में तुम्हें बिना देखे ही क्यों तुम्हारे प्रति अपार अनुराग हो गया है। मैं तुम्हें अपना बन्धु न जाने क्यों समझने लगा हूं? तुम्हारी अनुपस्थिति में दुर्जन लोगों ने सम्राट हर्षवर्धन के कान तुम्हारे विरुद्ध भर दिये

हैं। परन्तु कोई चिन्ता की बात नहीं। सज्जनों के भी तो शत्रु और उदासीन व्यक्ति होते ही हैं। सम्भवतः किसी ने तुम्हारी बाल्यावस्था की चपलताओं से तंग आकर तुम्हारे सम्बन्ध में कुछ अनुचित बातें कह दीं हैं। अन्य लोग भी जो सुनते हैं वही सच मान लेते हैं। हम लोगों ने सम्राट के विचारों को बदलने का बहुत प्रयास किया। सम्राट ने अपने विचार तुम्हारे सम्बन्ध में कुछ बना लिये हैं। हमारी प्रार्थना को सुन कर सम्राट ने यह स्वीकार कर लिया है कि ऐसी चपलतायें यौवनारम्भ में हो ही जाती हैं। परन्तु फिर भी सम्राट से मिल कर तुम्हें उनके समक्ष अपने आप को निर्दोष प्रमाणित करना आवश्यक है। इसलिए तुम शीघ्र ही सम्राट के दर्शन करने के लिए प्रस्थान करो। सम्राट हर्ष अत्यन्त उदार चित्त और मनस्वी हैं। उन में अन्य राजाओं के समान दुर्विनीतता और दुःशीलता नहीं पाई जाती।'

मेखलक के चुप होने पर उसने अपने विमातृज भाई चन्द्रसेन को कहा कि अब इनके भोजन आदि का प्रबन्ध कर इन्हें सुखपूर्वक विश्राम करने दो।

सायंकाल को मेखलक चला गया। बाण भट्ट संध्याकालीन उपासना करके अपनी शय्या पर लेट कर इस प्रकार चिन्ता करने लगे। 'सम्राट के मन में मेरे विषय में ऐसे विचार किसने भर दिये ? मेरे अकारण बन्धु कृष्ण ने यह सन्देशा भेजा है। इस लिए मैं इसे मिथ्या नहीं मान सकता। परन्तु राजाओं की सेवा करनी तो बड़ी कठिन है। हमारे पूर्वजों में कभी किसी ने किरीट के आगे सिर नहीं झुकाया। चाटुकारों के समान मुझे चापलूसी नहीं करनी आती। न मुझे धन का प्रलोभन है, न मुझे विद्वानों की गोष्ठियों में मिथ्या विडम्बना पाने की लालसा है। परन्तु जाना मुझे अवश्य ही होगा। भगवान शिव ही मेरी शरण हैं। वे ही सब भला करेंगे।' ऐसा विचार कर उसने यात्रा करने का पूरा प्रबन्ध कर लिया।

अगले दिन ब्रह्म मुहूर्त में उठ कर बाण ने स्नान किया। श्वेत दुकूल पहन कर हाथ में अक्षमाला ग्रहण की। प्रास्थानिक सूक्तों और मन्त्रों का पुनः पुनः उच्चारण किया। फिर भगवान शंकर को दूध से स्नान कराके सुरभित पुष्प माला, गन्ध, ध्वज, अक्षत, भोग, विलेपन और प्रदीप के द्वारा पूजा की। हवन किया। ब्राह्मणों को शक्ति के अनुसार दक्षिणा दी एवं पूर्वाभिमुख खड़ी गौ की प्रदक्षिणा की। श्वेत चन्दन, श्वेत माला और श्वेत वस्त्रों को धारण किया। गोरोचना लगा कर दूब घास में ग्रथित श्वेत अपराजिता के पुष्पों का कर्णफूल कानों में धारण किया। अपनी शिखा में पीली सरसों को रखा। पिता की कनिष्ठा भगिनी मालती ने प्रस्थान के समय में उचित मंगलाचार किया। सभी वृद्धाओं ने उसे आशीर्वाद दिया। श्रद्धेय गुरु चरणों ने प्रस्थान की अनुमति देकर उसके सि र को बड़े स्नेह से सूंघा। हाथ में फल

फूल लेकर ब्राह्मणों द्वारा अनुगत होकर बाणभट्ट ने दाहिना पैर आगे बढ़ा कर प्रीति कूट से प्रस्थान किया।

पहले दिन चण्डिका को पार कर बाण मल्ल कूट नामक ग्राम में ठहरा। वहां उसके परम मित्र और भाई जगत्पति ने उसका स्वागत किया और उसे बड़े प्रेम से अपने पास ठहराया।

अगले दिन भगवती भागीरथी को पार कर बाण ने यष्टि गृहक नामक वन ग्राम में ही रात व्यतीत की। अगली रात अजिरावती (राप्ती) नदी को पार कर उसने राजकीय स्कन्धावार के समीप ही बिताई।

इस प्रकार विश्राम कर और भोजन आदि से निवृत्त हो बाणभट्ट अगले दिन मेखलक को साथ लेकर सम्राट हर्ष वर्धन के दर्शनों के लिए अपने शिविर से चला। मार्ग में स्कन्धावार में पड़े हुए राजाओं के शिविरों को देखता हुआ वह आगे बढ़ने लगा। राज द्वार पर पहुँच कर बाणभट्ट ने उन हाथियों को देखा जिनको उसने पहले कभी नहीं देखा था। बाणभट्ट हाथियों का बड़ा ही शौकीन था। वह हस्ति विद्या में अत्यन्त चतुर था। जहां कहीं हाथियों का उल्लेख आता है उसकी लेखनी में मानो सरस्वती आकर बैठ जाती है।

सम्राट के शिविर के बाहर जो हस्ति सेना खड़ी थी, उसकी चर्चा करता हुआ बाणभट्ट वास्तव में अपने आप को भूल-सा जाता है। वह विभिन्न देशों से लाये गए हाथियों का वर्णन करता नहीं थकता। वह सवारी के हाथी, विनय के लिए लाये गए हाथी और सांग्रामिक हाथियों के आभूषण आस्तरण, कवच आदि की बार-बार चर्चा करता है।

अश्व सेना का वर्णन करता हुआ वह कहता है कि घोड़े लहरों के समान मचल रहे थे। उनके चंचल खुरों की टाप में मृदंग की ध्वनि गूंजती थी। उनकी टांगें हरिणों से भी पतली थीं। वे मानो राजलक्ष्मी का उपहास कर रहे थे। घोड़ों के अनन्तर ऊंटों का वर्णन आता है, जो केवल ऊंटों का सवार ही कर सकता है। ऊंटों के आभूषणों और उनकी वेशभूषा का चित्रण करता हुआ वह अघाता नहीं।

राजद्वार के चारों ओर राजाओं के छत्र ही छत्र दीख रहे थे, जो अकाल समय में शरदारम्भ को सूचित करते थे। राजमार्ग और राजद्वार पर अनेकों फलों के पत्ते लटक रहे थे। दोनों ओर ध्वजायें और मालायें सुशोभित हो रही थीं, उनके मध्य में लहराते हुए क्षौम वस्त्र एवं रंग-बिरंगे हीरे और पन्नों से जड़े हुए यूप खड़े थे। महानील मणियों, पुष्पराग मणियां एवं गरुड़ मणियों के प्रभाव के कारण वहां दिन में ही कई प्रकार के प्रकाश प्रतिबिम्बित हो रहे थे।

एक ओर सम्राट के बल से जीते हुए तथा स्वयं शरण में आए हुए अनेकों सामन्त लज्जा के कारण सिमटे हुए सम्राट के दर्शन की प्रतीक्षा कर रहे थे। दूसरी ओर बौद्ध जैन, शैव, सन्यासी और ब्रह्मचारी एवं समुद्रों के पार के विदेशी लोग वनों में रहने वाले किरात, तथा दूर-दूर देशों के राजदूत भी सम्राट के दर्शनों के लिए उत्सुक खड़े थे। सम्राट के वैभव का वर्णन करता हुआ बाणभट्ट कहता है कि सैकड़ों महाभारत लिखने से भी इसके वैभव का यथार्थ चित्रण संभव नहीं। करोड़ों स्वर्ग और करोड़ों ही राज-लक्ष्मियां भी इसकी शोभा को कम नहीं कर सकती।

मेखलक के साथ आते हुए बाणभट्ट को देखकर प्रतिहार ने उन्हें पहचान लिया। मेखलक ने उन्हें थोड़े समय के लिए खड़े होने के लिए कहा और आप सम्राट को बाणभट्ट के आगमन की सूचना देने के लिए राज द्वार में प्रविष्ट हुआ।

कुछ ही समय के अनन्तर वह अपने साथ प्रतिहारों के मुखिया पारियात्र को अपने साथ लेकर वापस आ गया। परियात्र ने उसे प्रणाम किया और कहा कि महाराज आप पर प्रसन्न हैं। आप उनके दर्शनों के लिए प्रवेश करें। बाण ने उत्तर में कहा—'मैं धन्य हूं'। मुझे महाराज इस प्रकार अपने अनुग्रह के योग्य समझ रहे हैं। यह कह कर बाण उसके पीछे पीछे चल पड़ा।

राज द्वार के अन्दर प्रविष्ट हो पहले उसने राज मन्दुरा को देखा जिसमें विश्व के प्रत्येक भाग से घोड़े लाकर इकट्ठे किए गए थे। इसके बाद उसने हस्तिशाला को देखा, जिसे देखते ही बाणभट्ट का मन भी उछल पड़ा। आकाश के समान ऊंची हस्तिशाला में अनेकों प्रकार के हाथी बंधे थे। उसे देख बाण विस्मित हो मेखलक से सहसा पूछ बैठा कि यहां महाराज क्या करते हैं।

मेखलक ने कहा कि यहां महाराज का परमप्रिय हाथी दर्पशाल है, जिस पर चढ़ कर वे युद्ध में जाते हैं। यह हाथी नहीं है महाराज के मानो प्राण हैं।

बाण ने कहा—मैंने दर्पशाल का नाम सुना है। मैं उसे देखना चाहता हूं।

मेखलक ने कहा—आप बड़ी स्वतन्त्रता से उसे देख सकते हैं।

बाण उसे देख और मन ही मन में उसके आकार का चित्र खींच अपने आप को भुला बैठा। इतने में पारियात्र ने उसे कहा—महाभाग ! इसके देखने के फिर भी अनेकों अवसर आयेंगे। अब महाराज के दर्शन करें। सम्राट राज द्वार के चतुर्थ कक्ष में विराजमान थे। उनके चारों ओर व्यायाम से दृढ़ शरीर वाले अंग-रक्षक सोने के स्तंभों के समान खड़े थे। उनके समीप विशेष स्नेही जन बैठे थे। महाराज स्वयं संग-मर्मर की चौकी पर विराजमान थे, जो हरिचन्दन के रस से धुली हुई थी। उसके पांव हाथी दान्त के बने हुए थे। वे अपनी मांसल भुजा के सहारे लेटे हुए थे।

सम्राट को दूर से ही देखकर बाण अपने मन में सोचने लगा ये समस्त नरेशों में श्रेष्ठ ज्येष्ठ महादेव परमेश्वर हर्ष हैं। इन से पृथ्वी राजन्वती है। देवताओं के साथ इनकी तुलना करनी इनका अपमान करना है। देवताओं में तो कुछ दोष भी हैं, परन्तु इनमें तो कोई भी दोष नहीं। अन्त में विरोधाभास के द्वारा बाण इनके विश्ववन्दनीय गुणों की प्रशंसा करता हुआ कहता है—इनका त्याग इतना महान् है कि पर्याप्त याचक नहीं मिलते। इनकी प्रजा इतनी है कि इसके उचित विषय नहीं मिलते। इस प्रकार इनके कवित्व के समक्ष वाणी, बल के समक्ष साहस के स्थान, उत्साह के समक्ष व्यापार, एवं कौशल के समक्ष कला आदि नहीं ठहरते। यह सोचकर बाण ने दक्षिण भुजा उठाकर स्वस्ति शब्द का उच्चारण किया।

उसी समय राज-आस्थान मण्डप से कुछ दूर पर किसी राजाध्यक्ष ने अपर वक्त्र छन्द में यह श्लोक पढ़ा—अरे हाथी के बच्चे! तू अपनी चंचलता छोड़ दे। सिर नीचा करके नम्रता पूर्वक बैठ। यह अंकुश जो सिंह के नखाग्र के समान टेढ़ा और कठोर है, तेरे दोषों को नहीं सह सकता'।

बाण में स्वाभिमान की मात्रा इतनी अधिक थी कि उसने सम्राट हर्ष की अप्रसन्नता की चिन्ता न करते हुए दूर से ही आशीर्वाद दिया। संभवतः कुछ दरबारियों ने इसमें सम्राट की अवज्ञा अनुभव की। राज्य दरबार के व्यवहार से अनभिज्ञ बाण ने ब्राह्मणत्व के अभिमान में आकर ऐसा किया। उन लोगों को आशंका हो गई कि कहीं बाण और अधिक उद्दण्ड न हो जाये, इस कारण उसे इस श्लोक के द्वारा एक प्रकार की परोक्ष रूप से चेतावनी सी दी गई। परन्तु आगे का व्यवहार बताता है कि बाण इन धमकियों से भयभीत नहीं होने वाला था। सम्राट-हर्ष ने श्लोक को सुनकर और बाण को देखकर पूछा—वही यह बाण है? इस पर दौवारिक ने उत्तर दिया! यह वही बाण है। सम्राट-हर्ष—'मैं जब तक यह पूर्ण शिष्टाचार नहीं सीखता इसे नहीं मिलना चाहता।' यह कहकर महाराज ने अपना मुंह फेर लिया। पीठ की ओर बैठे हुए मालवराज के पुत्र से आपने कहा कि यह बड़ा दुर्विनीत या दुष्ट है। महानयं भुजंग—संस्कृत में 'भुजंग शब्द सर्प के लिये प्रयुक्त किया जाता है और यह इस प्रकार दुष्ट का पर्यायवाची है।

महाराज के ये वचन सुनकर मालवराज पुत्र तथा अन्य राजलोक स्तंभित होकर मौन हो गये। बाण ने कुछ समय मौन रहकर महाराज को इस प्रकार संबोधित किया—'देव! आप मेरे विषय में सब कुछ जानते हुए भी ऐसा क्यों कह रहे हैं? साधारणतया लोग कई प्रकार की मनमानी बातें करते रहते हैं। बड़े लोगों को तो यथार्थवादी होना चाहिए। आप मुझे साधारण व्यक्ति न समझें। सोमपान करने वाले

ब्राह्मणों के वंश में मेरा जन्म हुआ है। उचित समय में मेरे उपनयनादि संस्कार हुए। अंगों सहित चारों वेदों का मैं ने अध्ययन किया। मैंने यथा शक्ति सभी शास्त्रों का भी पारायण किया। पाणिग्रहण के समय से नियमित रूप से गृहस्थी हूं। आपने मुझे में क्या दुष्टता देखी है? मैं यह स्वीकार करता हूं कि शैशव के दोष से मुझ में कुछ चपलता अवश्य आ गई है, परन्तु यह अनैतिक नहीं।'

'इस समय जब आप जैसे शासक इस पृथ्वी पर हैं तो पशु पक्षी भी भयभीत होकर चपलतायें छोड़ रहे हैं। देव! कुछ ही समय में आप मेरे संबन्ध में सब कुछ जान लेंगे। मेधावी लोग किसी भी बात में विपरीत हठ नहीं करते।' इतना कहकर बाण चुप हो गया। सम्राट हर्ष ने कहा—'मैंने ऐसा सुना था।' सम्राट ने बाण को आसन प्रदान आदि से अनुगृहीत नहीं किया। केवल स्नेहमयी सुधारस से परिपूर्ण दृष्टि से उसकी ओर देखते हुए अपने हृदय की प्रीति को प्रकट किया। सूर्यास्त के समय महाराज राजसमूह से विदा लेकर राज प्रासाद के अन्दर चले गये।

शनैः २ रात्री का अन्धकार चारों ओर फैलने लगा और लोगों में निद्रा व्याप्त हो चली। इस समय का वर्णन करता हुआ बाण अत्यन्त यथार्थ वादी हो जाता है। बूढ़ी दादियों की गोद में बैठे हुए पोते भी कहानियां सुनते २ इस समय ऊंघने लग पड़े थे, पर बाण की नींद दूर भाग गई थी। वह इस प्रकार सोच रहा था 'वास्तव में महाराजा हर्ष अत्यन्त उदार हैं। उन्होंने मेरे बचपन के जनापवाद को सुन कर भी मुझे दर्शन देने की कृपा की। यदि वे मुझ से रुष्ट होते तो कैसे दर्शन देने की अनुग्रह करते? वे मुझे गुणी देखना चाहते हैं। बड़े लोगों की यही रीति होती है कि छोटे लोगों को बिना मुख से कहे केवल व्यवहार से ही विनय की शिक्षा देते हैं। मुझ सा जघन्य व्यक्ति कोई भी नही होगा यदि मैं इतने उदार महाराज के प्रति कोई बुरे भाव अपने मन में रखूं। अब मैं सर्वथा वही करूंगा जो वे कहेंगे।'

यह सोचकर अगले दिन प्रातः काल बाण ने स्कन्धावार को त्याग दिया और अपने मित्रों के घर में ठहर गया। कुछ ही समय में महाराज उसके स्वभाव से परिचित हो गये और उन्होंने उसे राजभवन में ही आवास दे दिया। महाराज बाण के गुणों से अत्यन्त प्रसन्न हुए और उन्होंने उसे अपना अन्तरंग मित्र बना लिया। बाण को महाराज ने प्रसन्न होकर जो संपत्ति प्रदान की उसका वर्णन नहीं किया जा सकता।

बाण भट्ट महाराज के स्कन्धावार में कितना समय रहा और फिर उनके साथ ही साथ कान्यकुब्ज होता हुआ स्थाणीश्वर-(थानेसर) कब गया, इनके संबन्ध में कुछ नहीं कहता। अपनी जीवन गाथा को आगे बढ़ाता हुआ वह इस प्रकार कहता है कि मैं महाराज की आज्ञा से एक बार अपने ग्राम ब्राह्मणों के आवास प्रीतिकूट में शरद् ऋतु के आरम्भ में आया।

बाण के ग्राम में आने की चर्चा आग की तरह सब ओर फैल गई। उसे सम्राट हर्ष का अतिशय प्रिय पात्र जान कर वे लोग अत्यन्त प्रसन्न हुए। चारों ओर लोगों का जमघट लग गया। कुछ युवक लोग उसे अभिवादन करने लगे और कुछ स्थविरों को उस ने अभिवादन किया। कुछ लोग उस का आलिंगन कर रहे थे, कुछ लोग उसे ऊँचे स्वर से आशीर्वाद दे रहे थे। उन सब के स्नेह और श्रद्धा को देख कर बाण अत्यन्त हर्षित हुआ। उन से कुशल समाचार पूछ कर कहने लगा कि आप लोग इस समय में आनन्द से तो रहे? आप के यज्ञ कुशलपूर्वक तो चलते रहे? आप की अध्ययन अध्यापन की प्रणाली अक्षुण्ण तो रही? क्या व्याकरण, न्याय और मीमांसा सम्बन्धी आप की शास्त्र चर्चा तो निर्विघ्न चलती रही?

सब लोगों ने प्रसन्न हो कर उसे बताया कि 'महाराज हर्ष के शासन करते हुए और आप जैसे महान् व्यक्ति के उन के पार्श्ववर्ती होते हुए हमारे धार्मिक कार्यों में कभी भी विघ्न नहीं आ सकता।'

इस प्रकार परस्पर आमोद-प्रमोद करते हुए मध्यान्ह हो गया। उस ने अपना नित्य कर्म समाप्त कर भोजनादि किया। उसी समय में उस के सम्बन्धियों ने उसे चारों ओर से घेर लिया। इतने में सुदृष्टि नाम का पुस्तक वाचक वहां उपस्थित हुआ और उस ने 'वायु पुराण' का पाठ आरम्भ कर दिया।

जब पुस्तक वाचक सुदृष्टि इस प्रकार ऊँचे स्वर से पाठ कर रहा था, तभी सूची बाण नामक चारण ने दो आर्य्या छन्दों का गान किया जिन का भाव इस प्रकार था—यद्यपि यह वायु पुराण व्यास का गीत है, अत्यन्त विस्तृत और विश्वविख्यात भी है, तथापि यह हर्षचरित से भिन्न नहीं प्रतीत होता है। दूसरी आर्या में सम्राट हर्ष के राज्य की तुलना इस गीत से की गई है। इन आर्याओं को सुनकर बाण के चचेरे भाई—गणपति, अधिपति, तारापति और श्यामल एक दूसरे की ओर देखने लगे। इन में से श्यामल नाम का सब से कनिष्ठ जो बाण का अत्यन्त स्नेहपात्र था उन का प्रतिनिधित्व करता हुआ कहने लगा—सम्राट हर्ष जैसा शासक इस विश्व पर कभी नहीं हुआ और न होगा। प्राचीन नरेश एवं देवता गण भी अनेक अपराधों के अपराधी थे। यही राजा सर्वथा निष्कलंक है। हम इस के अत्यन्त पावन चरित्र की मन्दाकिनी में स्नान करना चाहते हैं। यह कह कर वह मौन हो गया।

बाण ने हंसते हुए उसे कहा कि आप ने युक्ति संगत बात नहीं कही। मैं एक अकिंचन व्यक्ति हूँ और महाराजा हर्ष का चरित तो सारे विश्व में व्याप्त है। कुछ अल्प अक्षरों वाले मेरे शब्द कहाँ? और देव के असंख्य गुण कहाँ? सर्वज्ञ भी उन के गुणों को नहीं जान सकता। साक्षात् बृहस्पति एवं सरस्वती भी उन के गुणों की

विरुदावलि नहीं गा सकते। शतायु होने पर भी कोई भी व्यक्ति उन के गुणों का बखान नहीं कर सकता। यदि आप उन के चरित के एक भाग में कौतूहल रखते हैं तो मैं उसे सुनाने का प्रयास करता हूँ। यह मेरी छोटी सी जिह्वा उन का गुण गान करने में अपनी सफलता पा सकती है। अब सायंकाल होने वाला है। यह गाथा लम्बी है। इस का आरम्भ अब कल से हो सकेगा।

यह कह कर बाण सन्ध्या वन्दन के लिये शोण नद पर चला गया। वहां से वापस आ कर वह फिर अपने प्रेमी बन्धुओं के साथ गोष्ठी का आनन्द लेता रहा। पहर रात के व्यतीत हो जाने पर वह अपने चचेरे भाई गणपति के घर आकर बिछी हुई शय्या पर लेट गया। वह सारी रात महाराजा हर्ष के गुणों का चिन्तन करता हुआ करवट बदलता रहा। प्रातःकाल के समय उस ने अपने चारणों से गाये हुए ये दो पद्य सुने, जिन में घोड़े का वर्णन किया गया था। अन्योक्ति के द्वारा इन में बताया गया था कि अब प्रातःकाल हो गया है। यहाँ यह बात विचारणीय है कि कुछ लोग बाण के सम्बन्ध में एक इस निराधार पंक्ति के आधार पर यादृक-गद्य विधौ बाणः पद्य-बन्धे न तादृशः अर्थात् बाण गद्य रचना में जितना कुशल है उतना पद्य रचना में नहीं उसे पद्यकार नहीं मानते। वास्तव में यह कथन सर्वथा असंगत है। यहाँ जो दो पद्य दिए गए हैं वे काव्य की दृष्टि से अत्यन्त उत्कृष्ट कोटि के हैं। हर्ष चरित में यत्र-तत्र अनेकों पद्य आते हैं, कादम्बरी के आरम्भ में अत्यन्त सुन्दर श्लोक दिए गए हैं, इन प्रमाणों के होते हुए यह कहना कि बाण केवल गद्य का लेखक ही था पद्य का नहीं सर्वथा अनुचित है।

प्रातःकाल सन्ध्यावन्दन कर वह अपने घर वापस आया और सूर्योदय के अनन्तर ताम्बूल ग्रहण कर अपने आसन पर बैठ गया। इतने में उस के बन्धु बान्धवों ने उसे आ घेरा। वह उन का अभिप्राय जान कर उन्हें सम्राट हर्ष की यशोगाथा सुनाने लगा।

इस के अनन्तर सम्राट के वंश का आरम्भ स्थाण्वीश्वर में उन की राजधानी की स्थापना, प्रभाकर वर्धन का जन्म उस के दो पुत्र राज्य वर्धन एवं हर्ष वर्धन तथा एकमात्र पुत्री राज्यश्री के जन्म का वृत्तान्त, राज्यश्री का कन्नौज के मौखरी वंश के अंकुर ग्रहवर्मा के साथ विवाह आदि का वर्णन तीसरे और चौथे उच्छ्वास में किया गया है। पाँचवें और छठे में प्रभाकर वर्धन की मृत्यु, हर्ष देव की माता यशोमती का पति के जीते ही चितारोहण, राज्य वर्धन का हूणों को पराजित कर वापस आना, ग्रह वर्मा का धोखे से वध, राज्यश्री का बन्दी बनाया जाता, राज्य वर्धन का शशांक द्वारा धोखे से वध और हर्ष वर्धन की प्रतिहिंसा की भावना से युद्ध यात्रा आदि का वर्णन

है। सातवें और आठवें उच्छ्वास में हर्ष की युद्ध यात्रा, उन का बौद्ध भिक्षु दिवाकर मित्र से मिलाप और राज्यश्री का उद्धार इत्यादि घटनाओं का वर्णन है। हर्ष चरित के अन्त में सम्राट हर्ष बौद्ध भिक्षु दिवाकर मित्र से यह प्रार्थना करते हैं—कि आज से लेकर आप मेरी अत्यन्त दुःखिनी बहन को धार्मिक गाथाओं को सुनाकर उस के शोक को भगवान तथागत के चरणों में लगाने की प्रेरणा दें। भदन्त के 'तथास्तु' कहने के साथ हर्ष चरित की कथा समाप्त हो जाती है।

बाणभट्ट ने सम्राट की सेवा स्वीकार करने के अनन्तर अपने सम्बन्ध में कुछ नहीं लिखा। उस ने अपने जीवन की गाथा सम्राट की सेवा में जाना और वहाँ से अपने ग्राम में आने तक ही सीमित की है। इस के अनन्तर हर्ष की यशोगाथा आरम्भ हो जाती है।

उस ने अपने सम्बन्ध में जो कुछ लिखा उस से अधिक जानकारी अभी तक प्राप्त नहीं। कुछ लोगों ने कल्पना के आधार पर उस के सम्बन्ध में कुछ लिखा हैं, परन्तु वह प्रामाणिक नहीं।

बाण के सम्बन्ध में जो एक दो किंवदन्तियाँ चली आती हैं, उन का भी उल्लेख करना यहाँ कुछ आवश्यक सा प्रतीत होता है।

बाण और मयूर

बाण और मयूर को लेकर कुछ विचित्र सी चर्चा संस्कृत साहित्य में पाई जाती है। कोई मयूर को बाण का श्वशुर कहते हैं, कोई उसे उस का श्यालक और बहनोई भी कहते हैं। इन सब जनश्रुतियों का आधार एक श्लोक की चौथी पंक्ति है जो अश्लील होने के कारण यहाँ देनी उचित नहीं। परन्तु अभी तक इस विषय में कोई प्रामाणिक और सर्वसम्मत निर्णय प्राप्त नहीं हो सका।

बाण की अन्य रचनाएं

हर्ष चरित, कादम्बरी का पूर्वार्ध इन दोनों आख्यायिका और कथा के निदर्शन रूप गद्य ग्रन्थों के अतिरिक्त बाण के नाम से ये तीन और ग्रन्थ भी प्रख्यात हैं—चण्डी शतक, पार्वती परिणय, मुकुट ताडितकम्। परन्तु इन की तथ्यता अभी विवादास्पद है।

कुछ लोग मम्मट के इस कथन के आधार पर कि सम्राट हर्ष ने बाणभट्ट जैसे कवियों को धन दिया—यह निश्चय करते हैं कि सम्राट के नाम से 'नागानन्द' 'रत्नावली', प्रियदर्शिका, जो ये तीन नाटक प्रख्यात हैं, उनकी रचना वास्तव में बाण भट्ट ने ही की थी। परन्तु यह भी सर्वथा कल्पना मात्र है।

मातंग और दिवाकर ये दो कवि भी सम्राट हर्ष के दरबारी कवि बाण के सम

कालीन ही थे यह कथन भी अभी तक निश्चय से नहीं बताता कि ये लोग कौन थे ? और इन की कौन सी कृतियां थीं ?

बाण भट्ट के पुत्र भूषण भट्ट

जैसा कि कादम्बरी के उत्तर भाग के श्लोकों से विदित होता है बाण के पुत्र ने उस का उत्तर भाग पूर्ण किया। इस पुत्र का नाम भूषण भट्ट या कोई इसे पुलिन्द भट्ट भी कहते हैं। कवि धनपाल ने अपनी 'तिलक मञ्जरी' में इस पुत्र का नाम पुलिन्द अथवा पुलिन कहा है। कोई इसका नाम निचुल भी कहते हैं। परन्तु सभी विद्वान इस पुत्र का नाम भूषण भट्ट ही मानते हैं।

बाण का पुत्र भूषण अपने पिता का परम आराधक था जैसा कि उसके पद्यों से ज्ञात होता है। इस एक पुत्र के अतिरिक्त बाण के किसी अन्य पुत्र का उल्लेख नहीं पाया जाता।

हे आत्मकथा के आविष्कारक कविवर बाण भट्ट ! तुम्हारी जीवनी को उपरोक्त पंक्तियों में निबद्ध कर तुम्हारे केवल कुछ जीवन सम्बन्धी पक्षों का ही उद्‌घाटन हो पाया है पर इसके अतिरिक्त भी तुम बहुत कुछ थे, और उसका यथार्थ परिचय पाने के लिए तो तुम्हारी कृतियों की निरन्तर परिचिति अनिवार्य है और वे कृतियाँ अपनी रसमयता वर्णनास्फीति एवं शिल्पीयविधान में अद्वितीय हैं।

— :०: —

: २ :

बाण का स्थिति काल

संस्कृत साहित्य के अधिकांश कवियों के स्थितिकाल का प्रश्न प्रायः विवादास्पद रहा है। पर बाणभट्ट इसका अपवाद है, क्योंकि उनके विषय में हमें अपेक्षाकृत पर्याप्त ज्ञान प्राप्त है। बाण सातवीं शताब्दी के पूर्वार्ध में होने वाले महाराज हर्षवर्धन के सभापण्डित थे। महाराज हर्ष ६०६ ई० में राजसिंहासन पर आसीन हुआ था और बाण इस समय से कुछ देर बाद हर्ष के आश्रय में आया। अतः बाण का स्थितिकाल छठी शताब्दी का उत्तरार्ध तथा सातवीं शताब्दी ई० का पूर्वार्ध ही माना जा सकता है।

इसके अतिरिक्त उक्त मत की पुष्टि इस बात से भी हो जाती है कि सबसे प्रथम वामन ७७९-८१३ ई० ने अपने 'काव्यालंकारसूत्र' में कादम्बरी के एक दीर्घ-काय समास बहुला गद्य को उद्धृत किया था जिससे यह स्पष्ट हो जाता है कि बाण, वामन के समय तक पर्याप्त प्रसिद्ध हो चुके थे। अतः उनका स्थितिकाल आठवीं शताब्दी से पूर्व सातवीं सदी में ही निश्चित है।

पर खेद की बात है कि संस्कृत साहित्य के विद्वान् आलोचकों में कुछ ऐसी परिपाटी सी चल पड़ी है कि जब तक वे किसी कवि के जीवन अथवा उसके स्थितिकाल के विषय में कोई विवाद न खड़ा करलें तब तक उन्हें पूर्ण सन्तुष्टि नहीं होती। सो इसी कारण सम्भवतः कुछ विद्वानों ने बाण के निर्णीत स्थितिकाल विषयक प्रश्न को भी जटिलता का रूप प्रदान करने का प्रयास किया है। संस्कृत गद्य साहित्य की रत्नत्रयी में तीन कवि आते हैं—सुबन्धु, दण्डी तथा बाण। इन तीनों गद्य साहित्यकारों की सेवा की सब विद्वानों ने मुक्त कण्ठ से प्रशंसा की है। पर कितनी विडम्बना है कि जहाँ इन कवियों के स्थितिकाल का प्रश्न है वहां विद्वानों में मतैक्य नहीं है। प्रचलित परम्परा के अनुसार सर्वप्रथम सुबन्धु तदनन्तर दण्डी और सबके अन्त में बाण का स्थितिकाल माना जाता है पर कतिपय विद्वान इस से सहमत प्रतीत नहीं होते। अतः इस प्रसंग में यहां उन विद्वानों के मत को देना असंगत न होगा।

कुछ विद्वान् दण्डी को प्रथम स्थान देते हैं तो कुछ सुबन्धु को; और कुछ तो

सुबन्धु को बाण का भी परवर्ती सिद्ध करने में तत्पर दिखाई देते हैं । इसी प्रकार दण्डी तथा बाण में भी कौन पूर्ववर्ती है तथा कौन परवर्ती इस विषय में भी विद्वानों के अपने २ मत हैं । यद्यपि कुछ विद्वानों ने थोड़े बहुत इधर उधर के प्रमाणों के आधार पर दण्डी को बाण का परवर्ती सिद्ध करने का प्रयास किया है पर यदि हम दण्डी तथा बाण की शैली का अध्ययन करें तो बाण ही परवर्ती सिद्ध होते हैं। इसके अतिरिक्त दशकुमारचरित में वर्णित उस समय की सामाजिक, राजनीतिक तथा भौगोलिक अवस्था हर्षवर्धन के राज्यकाल से पूर्व की ही प्रतीत होती है , अतः दण्डी निश्चयपूर्वक बाण से पूर्ववर्ती थे ।

प्रो० कीथ दण्डी की रचना 'काव्यादर्श' को निश्चित रूप से भामह (प्रायः ७०० ई०) के पूर्व की स्वीकार करते हैं। दशकुमार चरित के विषय में इनकी धारणा है कि उसका भूगोल हर्षवर्धन के साम्राज्य से पूर्व की वस्तु स्थिति पर आधारित है। अतः दण्डी का स्थितिकाल बाण से पूर्व का ही प्रतीत होता है। इसके अतिरिक्त दण्डी की शैली की अपेक्षाकृत सरलता भी उन्हें बाण से पहले का हुआ सिद्ध करने में सहायक हुई है। पर विलसन महोदय दण्डी को ११वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध अथवा १२वीं शताब्दी के पूर्वार्ध में हुआ मानते हैं, इसी प्रकार श्री अगाशे भी दण्डी की रचना को ११वीं या १२वीं शताब्दी की मानते हैं और दूसरी ओर बाण को हर्ष के राज्यकाल में हुआ स्वीकार करते हैं। इस प्रकार दण्डी परवर्ती तथा बाण पूर्ववर्ती माने गए हैं—पर स्थिति ऐसी नहीं है। इस मत का काले महोदय ने विशेष रूप से खण्डन किया है। उनका कथन है कि यदि दण्डी बाण के परवर्ती होते तो उनके काव्य पर बाण का प्रभाव अवश्य होता, पर दशकुमारचरित पर ऐसा कोई प्रभाव परिलक्षित नहीं होता। काले महोदय ने बाण तथा सुबन्धु की शैली को अधिक कृत्रिम तथा जटिल माना है और दण्डी की शैली को स्वाभाविक तथा सरल। इस प्रकार यद्यपि काले का यह मत कोई विशेष प्रमाणों पर आधारित नहीं, तो भी वे कादम्बरी, वासवदत्ता तथा दशकुमार चरित—इन तीनों में दशकुमारचरित को सबसे पहले की रचना मानते हैं। पर काले का यह मत भारतीय परम्परा द्वारा पूर्णतया युक्तियुक्त स्वीकृत नहीं किया गया क्योंकि यदि हम सुबन्धु तथा दण्डी के स्थितिकाल की विवेचना करें तो दण्डी को हम बाण के समकालीन अथवा पूर्ववर्ती चाहे मान लें पर सुबन्धु से तो वे निश्चयात्मक रूप से परवर्ती ही सिद्ध होते हैं।

इसी प्रकार सुबन्धु के विषय में भी विद्वानों का मतभेद है। कुछ विद्वान् बाण को सुबन्धु का पूर्ववर्ती मानते हैं तथा सुबन्धु को उनका परवर्ती सिद्ध करते हैं। उनके तर्कानुसार सुबन्धु बाण से कई दिशा में प्रभावित प्रतीत होते हैं। सुबन्धु के काव्य के कई शब्दों, पदों तथा घटनाओं में बाण की कृतियों की छाया परिलक्षित होती है। यथा

'किं बहुना' 'देवा प्रमाणम्', अचिन्तयच्च, आसीच्चास्य मनसि' आदि। चन्द्रापीड़ के अश्व का नाम इन्द्रायुध है और वासवदत्ता में भी इन्द्रायुध शब्द का प्रयोग हुआ है और जो सम्भवतः सुबन्धु ने बाण से ही लिया प्रतीत होता है। इसके अतिरिक्त अपनी प्रेमिका वासवदत्ता के अदृश्य हो जाने पर कन्दर्पकेतु की मनःस्थिति का चित्रण भी प्रायः पुण्डरीक तथा चन्द्रापीड़ की मृत्यु से उत्पन्न क्षोभपूर्ण कादम्बरी तथा महाश्वेता की मनःस्थिति के अनुरूप ही किया गया प्रतीत होता हैं। पर वास्तव में देखा जाए तो ये प्रमाण यदि बाण को पूर्ववर्ती सिद्ध करने में अपनाए जा सकते हैं तो यही प्रमाण इन्हें परवर्ती सिद्ध करने में भी सहायक हो सकते हैं, क्योंकि ऐसा भी तो हो सकता है कि सुबन्धु नहीं अपितु बाण ही इस प्रकार के सादृश्य में सुबन्धु के ऋणी हों। इस प्रकार कुछ विद्वानों को यह मत अधिक युक्तिसंगत सा प्रतीत होता है क्योंकि सुबन्धु की शैली बाण की शैली से अवश्य ही प्राचीन प्रतीत होती है, पर हम तो इतना ही कहेंगे कि बाण ने सुबन्धु का अनुकरण नहीं किया, यद्यपि हमें कहीं२ शब्दों, पदों अथवा घटनाओं की सदृशता मिलती भी है तो भी उनका कोई विशेष कारण न हो कर ऐसा हो जाना स्वाभाविक ही कहा जा सकता है। पर इतना तो निश्चित है कि बाण की शैली सुबन्धु की शैली से बाद की ही है।

इसके अतिरिक्त कुछ विद्वान इस आधार पर कि बाण ने अपने हर्षचरित में सुबन्धु-कृत वासवदत्ता का स्पष्ट उल्लेख किया हैं, बाण को परवर्ती घोषित करते है इस मत के विरोध में कुछ विद्वानों ने उसे सुबन्धु कृत वासवदत्ता स्वीकार न करके पतञ्जलि द्वारा निर्देशित कोई प्राचीन कृति माना है। पर उनकी यह बात स्वीकृत नहीं मानी जाती। क्योंकि म० म० काणे स्पष्ट रूप से यह स्वीकार करते हैं कि हर्षचरित में जिस वासवदत्ता का नाम आया है वह वासवदत्ता सुबन्धु की ही कृति हो सकती हैं कोई अन्य प्राचीन कृति नहीं, क्योंकि ८०० ई० के वामन अपने 'काव्यालंकार' सूत्रवृत्ति में सुबन्धु की वासवदत्ता तथा बाण की कादम्बरी का उल्लेख करते हुए उनके कुछ उदाहरण भी प्रस्तुत करते हैं। इस प्रकार उनके विचार में वासवदत्ता तथा कादम्बरी समसामयिक रचनाएं तो सम्भवतः मानी जा सकती हैं न कि वासवदत्ता तो पतञ्जलि के युग की हो और कादम्बरी छटी या सातवीं ई० की।

बाण को सुबन्धु से परवर्ती सिद्ध करने में कुछ विद्वानों ने यह बात भी उठाई है कि १२०० ई० के कविराज ने अपने राघवपाण्डीय में पहले सुबन्धु का तथा बाद में बाण का नामोल्लेख किया है—

"सुबन्धुर्बाणभट्टश्च कविराज इति त्रयः।
वक्रोक्तिमार्गनिपुणाश्चतुर्थो विद्यते न वा॥"

इसी प्रकार १२वीं, शताब्दी में होने वाले मंख ने अपने 'श्रीकण्ठ चरित' में जो बाण तथा सुबन्धु का नाम लिया है उसमें भी सुबन्धु को ही प्रथम स्थान दिया गया है। अतः इस नामक्रम के आधार पर भी बाण परवर्ती ही प्रतीत होते हैं। दूसरे सम्भवतः ७३६ ई० में रचे जाने वाले 'गौडवहो' में वाक्पतिराज ने उस समय तक प्रसिद्धि अर्जित कर लेने वाले सुबन्धु का तो नाम बड़े आदर से लिया है पर बाण के विषय में उसने कोई उल्लेख नहीं किया। वह सम्भवतः इसलिए, क्योंकि बाण उनसे कुछ वर्ष पूर्व ही हुए होंगे तथा अभी तक उन्होंने बहुत प्रसिद्धि प्राप्त नहीं की होगी।

इस प्रकार उपरोक्त विवेचन से इतना स्पष्ट हो जाता है कि बाण-सुबन्धु तथा दण्डी दोनों से परवर्ती थे।

इसके अतिरिक्त स्वतन्त्र रूप से बाण का स्थितिकाल निश्चत करने के विषय में जो अकाट्य एवं सर्वमान्य प्रमाण उपलब्ध होता है, वह है चीनी यात्री ह्यूनसांग के संस्मरण। ह्यूनसांग भारत में लगभग सोलह वर्ष रहा और उसने महाकवि बाणभट्ट के आश्रयदाता राजा हर्षवर्धन का अपनी भारतयात्रा में स्पष्ट एवं विस्तृत रूप में उल्लेख किया है। हर्षचरित में बाण ने एक ऐसी घटना का उल्लेख किया है जिसमें हर्ष ने अपना समस्त ऐश्वर्य ब्राह्मण तथा बौद्ध भिक्षुओं को भेंट कर दिया था। इस प्रकार के एक उत्सव के समय ह्यूनसांग भी वहाँ उपस्थित था। यही हर्षवर्धन बाण की अमरकृति 'हर्षचरित' का नायक हैं जिसका राज्यकाल सन् ६०६ ई० से सन् ६४२ ई० तक रहा। अतः इस बाह्य प्रमाण से यह स्पष्ट हो जाता है कि महाकवि बाण का स्थितिकाल छठी शताब्दी का उत्तरार्ध एवं सातवीं शताब्दी का पूर्वार्ध रहा होगा, क्योंकि हर्ष की राज्यसभा में बाण का एक सम्मानित कवि के रूप में आदर होता था

इस उपर्युक्त मत की पुष्टि में निम्नलिखित अन्य कई बहिरङ्ग तथा अन्तरंग प्रमाण उद्धृत किए जाते हैं।

१. आचार्य रुय्यक ने अपनी रचना 'अलंकारसर्वस्व' में बाण की कृति हर्षचरित का कई बार उल्लेख किया है।[1]

इसके अतिरिक्त अलंकारसर्वस्व में रुय्यक ने हर्षचरित के यस्तपोवनमिति मुनिभिः—इत्यादि गद्यखंड को भी उद्धृत किया है। साथ ही हर्षचरित पर अपना वार्तिक भी लिखा है।

'अलंकार-सर्वस्व' का समय ११५० ई० है अतः बाण इस काल से पूर्व ही हुए होंगे।

---

(1) "अनुरूपो देव्या इत्यात्मसम्भावना" "यदि बाल इति सुतरामपरित्याज्योऽस्मि" "नमन्तु शिरांसि धनूंषि वा कर्णपूरीकुर्यन्तामाज्ञा मौर्व्यो वा।"

२. क्षेमेन्द्र ने अपनी कृति 'कविकण्ठाभरण' में कई बार बाण का नाम उल्लेख किया है। क्षेमेन्द्र ने अपनी रचना काश्मीर के राजा अनन्तराज के समय में की थी। क्षेमेन्द्र ने बाण की 'कादम्बरी' पर आधारित एक 'पद्यकादम्बरी' की भी रचना की और 'कविकण्ठाभरण' में प्रायः सात बार 'पद्यकादम्बरी' के पद्यों को उद्धृत किया है। इसके अतिरिक्त 'कविकण्ठाभरण' की दूसरी सन्धि में बाण की कादम्बरी की भूमिका में से यह पंक्ति उद्धृत की है—"यथा च भट्टबाणस्य 'कटु क्वणन्तो मलदायकाः।"

इसके अतिरिक्त क्षेमेन्द्र ने 'औचित्यविचारचर्चा' में कादम्बरी के एक पद्य[1] को तथा 'जयत्युपेन्द्रः स चकार दूरतो इत्यादि मंगलश्लोक[2] को उद्धृत किया है। क्षेमेन्द्र का समय १०५० ई० का माना जाता है अतः बाण का स्थितिकाल अवश्य ही इससे पूर्व का रहा होगा।

३. रुद्रट की रचना 'काव्यालंकार' के टीकाकार नमिसाधु ने बाणभट्ट की रचनाओं-हर्षचरित और कादम्बरी को गद्य के दो प्रकार—आख्यायिका और कथा कहा है। नमिसाधु का स्थितिकाल १०६९ ई० है।

४. भोज (१०२५) ने अपनी रचना 'सरस्वतीकण्ठाभरण' में बाण के नाम का उल्लेख किया है। उसने एक स्थान पर बाण के गद्य को पद्य से उत्कृष्ट माना है:—"यादृग्गद्यविधौ बाणः पद्यबन्धे न तादृशः।" इसके अतिरिक्त भोज ने अपनी कृति में बाण की यह पंक्ति भी उद्धृत की है:—"हर इव जितमन्मथः गुह इवाप्रतिहतशक्ति।" राजा भोज का शासनकाल ग्यारहवीं शती का पूर्वार्ध माना जाता है।

५, धनंजय ने अपनी कृति 'दशरूपक' में स्पष्ट उल्लेख किया है:—"यथा हि महाश्वेतावर्णनावसरे भट्टबाणस्य"। धनंजय का आश्रयदाता राजा मुंज था जो कि राजा भोज का चाचा माना जाता है। अतः सिद्ध है कि धनञ्जय का समय १००० के लगभग था, और बाण का इससे भी पहले का।

६. 'ध्वन्यालोक' का रचयिता आनन्दवर्धन (८५० ई०) जोकि काश्मीर के राजा अवन्तिवर्मन (८५५-८८३ ई०) के शासन काल में हुआ, बाण की दोनों गद्यकृतियों का स्पष्टतः वर्णन करता है;—"यथा स्थाणीश्वराख्य जनपदवर्णने

---

(1) "स्तनयुगमश्रुस्नातं समीपतरवर्ति हृदयशोकाग्नेः।
चरति विमुक्ताहारं व्रतमिव भवतो रिपुस्त्रीणाम्॥"

(2) "जयत्युपेन्द्रः स चकार दूरतो बिभित्सया यः क्षणलब्ध-लक्ष्यया।
दृशैव कोपारुणया रिपोरुरः स्वयं भयाद्भिन्नमिवास्रपाटलम्॥

(कादम्बरी पूर्वभाग—२)

भट्टबाणस्य 'यत्र च मत्तमातङ्गगामिन्य' इससे यह सिद्ध हो जाता है कि नवमीं शती के उत्तरार्ध तक बाणभट्ट की प्रसिद्धि फैल चुकी थी।

७. 'काव्यालंकारसूत्रवृत्ति' के कर्ता वामन (८०० ई०) ने बाण की कादम्बरी से निम्न पंक्ति उद्धृत की है :—"अनुकरोति भगवतो नारायणस्य ।" वामन का समय आठवीं शताब्दी का है, अतः इस समय तक बाण की कादम्बरी ने ख्याति प्राप्त कर ली थी।

इस प्रकार बारहवीं शताब्दी से लेकर आठवीं शताब्दी तक के कवियों तथा आलंकारिकों के द्वारा बाण एवं उनकी रचनाओं का स्पष्ट उल्लेख किसी न किसी रूप में अवश्य होता रहा। अतः बाण का स्थितिकाल सातवीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध स्वीकार करने में कोई मतभेद नहीं होना चाहिए।

८. इसके अतिरिक्त अन्तरङ्ग प्रमाणों से भी बाण का समय सातवीं शताब्दी का पूर्वार्ध ही सिद्ध होता है। हर्षचरित के प्रारम्भिक पद्यों में बाण ने—व्यास, वासवदत्ता, भट्टारहरिचन्द्र, सातवाहन, प्रवरसेनकृत सेतुबन्ध, भास, कालिदास, बृहत्कथा तथा आढ्यराज—जिन कवियों तथा कृतियों का उल्लेख किया है[4], उन सबका समय सातवीं शती से पूर्व का ही है।

९—इसके साथ ही साथ बाण ने हर्षचरित में जिस राजनैतिक अवस्था तथा उस समय के राजाओं की पारस्परिक कूटनीति का उल्लेख किया है वह सातवीं शती की राजनीतिक अव्यवस्था का सच्चा परिचायक है।

१०. राजशेखर तथा 'नवसाहसांकचरित' के रचयिता पद्मगुप्त ने मातंगदिवाकर तथा मयूर कवि को बाण का समकालीन स्वीकार किया है[5]। इन दोनों कवियों का समय सातवीं शताब्दी के आस पास का माना जाता है, अतः बाण का समय भी सातवीं शताब्दी का ही होना चाहिए।

इस प्रकार, उपर्युक्त प्रमाणों से यह निःसन्देह सिद्ध हो जाता है कि हर्षचरित एवं कादम्बरी के रचयिता महाकवि बाणभट्ट का स्थितिकाल ईसा की सातवीं शताब्दी का पूर्वार्ध है तथा वे महाराज हर्षवर्धन (६०६ ई० से ६४८ ई०) के राज्यकाल में हुए थे।

---

(4) द्रष्टव्य—हर्षचरित—प्रथम उच्छ्वास: ६-१६।

(5) "अहो प्रभावो वाग्देव्या यन्मातंगदिवाकरः।
श्रीहर्षस्याभवत्सभ्यः समो बाणमयूरयोः॥" (राजशेखर)
"सचित्रवर्णविच्छित्तिहारिणोरवनीश्वरः।
श्रीहर्ष इव संघट्टं चक्रे बाणमयूरयोः॥" (नवसाहसांकचरित २-१८)

: ३ :

बाण का कृतित्व

संस्कृत-साहित्य के महान् लेखक बाणभट्ट की लेखनी से प्रसूत अनेकों ग्रन्थ माने जाते है परन्तु उनमें से उपलब्ध रत्न बहुत कम हैं। सम्भवत: उनके कुछ रत्न काल के कराल-प्रवाह में बह गए हों। और इस प्रकार उनके अवशेष ग्रथों की संख्या बहुत ही कम रह गई है। अलंकार शास्त्र के ग्रन्थों तथा सूक्ति—संग्रहों में बाण के नाम से कितने ही सुन्दर पद्य उद्धृत हुए हैं पर जो, उनकी आज की उपलब्ध रचनाओं में नहीं मिलते। अत: बाण ने अवश्य ही अन्य कई रचनाओं की सृष्टि की थी। उनकी उपलब्ध कृतियों में से नि:सन्देह हर्षचरित तथा कादम्बरी—वैभव-विलास के वर्णन, अलंकारों की रंगीन छटा, प्रकृति-चित्रण के माधुर्य, शैली की सजीवता तथा कल्पना की मौलिकता के कारण—सर्वोत्कृष्ट रचनाएं हैं।

कादम्बरी तथा हर्षचरित की शैलियों की यदि परस्पर तुलना की जाए तो हम सुगमता से इस निष्कर्ष पर पहुंच सकते हैं कि हर्षचरित की रचना बाण ने पहले की थी और कादम्बरी की उसके बाद में। इस बात की पुष्टि हमें अन्तरंग प्रमाणों से भी भली प्रकार हो जाती है, क्योंकि हर्षचरित की अपेक्षा कादम्बरी की शैली अधिक परिष्कृत तथा परिमार्जित है और यह उनकी प्रौढ़ कृति है; उनके जीवन की तप साधना का प्रसाद है। इसके अतिरिक्त बाण ने अपनी दोनों कृतियों में अपना परिचय दिया है। हर्षचरित में यह आत्म-परिचय विस्तारपूर्वक हुआ है और कादम्बरी में उन्होंने आरम्भ के कतिपय श्लोकों में केवल अपने वंशजों का ही नामोल्लेख किया है, क्योंकि कादम्बरी लिखते समय बाण इस बात को भली प्रकार जानते थे कि इससे पहले हर्षचरित में वे अपना तथा अपने वंशजों का सविस्तार वर्णन दे चुके हैं और अब अपनी इस बाद की कृति में फिर से पुरानी बातों की दुहराने का कोई विशेष प्रयोजन नहीं। अत: इस से भी यह सिद्ध होता है कि हर्षचरित बाण की निश्चित रूप से कादम्बरी से पूर्व की कृति मानी जा सकती है।

बाण की प्रसिद्ध उपलब्ध रचना हर्षचरित—इनकी प्रथम गद्य कृति तथा संस्कृत

साहित्य की प्राचीनतम उपलब्ध आख्यायिका है। इसमें आठ उच्छ्वास हैं, जिनमें बाण ने अपने आश्रयदाता और तत्कालीन समय के महान् सम्राट् हर्षवर्धन के जीवन से सम्बद्ध घटनाओं का रोचक पूर्ण वर्णन किया है। प्रथम उच्छ्वास के प्रारम्भिक इक्कीस श्लोकों में बाण ने अपने पूर्ववर्ती कवियों का यशोगान किया है। वे कवि हैं—व्यास, भट्टारहरिचन्द्र, सातवाहन, प्रवरसेन, भास, कालिदास तथा आढ्यराज। इन कवियों के अतिरिक्त उसने वासवदत्ता एवं बृहत्कथा नामक दो प्रशस्त कृतियों का भी उल्लेख किया है। इन कवियों और ग्रन्थों के नामोल्लेख से हमें उनकी स्थिति के विषय में महत्वपूर्ण ज्ञान की उपलब्धि होती है क्योंकि ये सब सातवीं शताब्दी के पूर्व के हैं।

प्रथम दो उच्छ्वासों तथा तृतीय के कुछ भाग में बाण ने आत्म-कथा दी है। इनमें बाण ने अपनी वंशावली, अपने भ्रमण के अनुभव, अपने साथियों का वर्णन और हर्ष के भाई द्वारा बाण का राज्यसभा में बुलाया जाना तथा बाण की हर्ष से भेंट, आदि का विशद वर्णन किया है। इसके पश्चात् बाण का पुनः अपने घर लौटना और चचेरे भाईयों की प्रेरणा से हर्षवर्धन का चरित वर्णन आदि है। तीसरे उच्छ्वास में बाण ने हर्ष के वंश के आदि पुरुष पुष्पभूति का भी उल्लेख किया है।

चतुर्थ उच्छ्वास में हर्षवर्धन के वंश का, प्रभाकर वर्धन एवं उसकी पट्टरानी यशोमती का, राज्यवर्धन के जन्म का, तथा तत्पश्चात् हर्षवर्धन और राज्यश्री के जन्म का विस्तारपूर्वक वर्णन है। और वहीं मौखरी राजा अवन्तिवर्मा के पुत्र ग्रहवर्मा के साथ राज्यश्री के विवाह के वर्णन में बाण ने राजसी ठाठ-बाठ को पूर्ण रूपेण प्रदर्शित किया है। पंचम उच्छ्वास में राज-वंश पर गिरने वाली उन आपत्तियों का वर्णन किया गया है जिनसे महान् पुरुष भी कांप उठता है। हूणों को जीतने के लिए दोनों राज कुमारों का प्रस्थान, हर्ष का मार्ग में ही शिकार खेलने के लिए ठहर जाना, पिता की असाध्य बीमारी का समाचार पाकर मृगया-व्यासक्त हर्ष का वापिस लौटना, यशोमती का पति की मृत्यु से पूर्व ही सती होना, प्रभाकरवर्धन की मृत्यु तथा प्रजा का शोक ग्रस्त होना आदि घटनाओं का बड़ा ही मार्मिक चित्रण प्रस्तुत किया गया है। इस उच्छ्वास में बाण ने प्रभाकरवर्धन की मृत्यु पर किए गए शोक, तथा हर्ष की माता के रौदन तथा विलाप का जो चित्रण किया है, उसे पढ़कर कोई भी सहृदय व्यक्ति प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता।

षष्ठ उच्छ्वास में राज्यवर्धन की वापिसी, उसका राज्य-त्याग, हर्षवर्धन को राज्य ग्रहण करने के लिए अनुरोध तथा हर्ष की मनोद्वेगना का प्रथमतः वर्णन है। कस्मात् मालवा के राजा द्वारा ग्रहवर्मा की मृत्यु और उस द्वारा राज्यश्री का बन्दी बनाया जाना सुनकर राज्यवर्धन एकदम भड़क उठता है और भंडी तथा दसहजार

घुड़सवारों को साथ लेकर मालव नरेश को परास्त करने के लिए प्रस्थान करता है। विजय प्राप्ति के अनन्तर वह गौड़ राजा शशांक द्वारा धोखे से अपने शिविर में ही मार दिया जाता है। हर्ष अपने भाई की हत्या का समाचार सुनकर बदला लेने की प्रतिज्ञा करता है।

सप्तम उच्छ्वास में हर्ष अपनी अजय सेना के साथ दिग्विजय के लिए गौड़ राजा के विरुद्ध प्रस्थान करता है। आसाम नरेश भास्करवर्मा का दूत मैत्री का सन्देश तथा दिव्य आत-पत्र उपहार के रूप में लेकर आता है और इन दोनों में मैत्री स्थापना हो जाती है। हर्ष मालव नरेश पर विजय प्राप्त करता है। राज्यश्री के पलायन का संकेत भी इसी उच्छ्वास में मिलता है।

अष्टम उच्छ्वास में हर्ष अपनी बहिन राज्यश्री की खोज में विन्ध्याटवी में घूमता है। इसमें विन्ध्यटवी के भयानक स्थलों का वर्णन बहुत ही अनुरूप हुआ है। एक शबर युवक की सहायता से हर्ष बौद्ध भिक्षु दिवाकर मित्र के आश्रम में पहुँचता है। वहाँ ग्रहवर्मा के मित्र एक अन्य भिक्षु द्वारा बताये जाने पर हर्ष आग में प्रवेश होने के लिए तत्पर अपनी बहन को बचा लेता है और उसे दिवाकर मित्र के आश्रम में ले आता है। और इस घटना के साथ ही बाण अपूर्ण रूप से यहीं पर हर्ष-चरित को समाप्त कर देता है।

हर्षचरित काव्य के इस प्रकार अपूर्ण रूप से समाप्त होने के विषय में विद्वानों ने अपने कई विचार प्रस्तुत किये हैं। कुछ विद्वानों की धारणा है कि कलान्तर में अपने आश्रयदाता हर्ष को पुलकेशी द्वितीय के हाथों मिलने वाली पराजय के वृत्तान्त का उल्लेख करना बाण ने उचित नहीं समझा और इस प्रकार ग्रंथ को अधूरा ही रहने दिया। और फिर उसका ऐसा करना सम्भव भी था क्योंकि कोई भी व्यक्ति आश्रयदाता के अपकर्ष का चित्रण करने में दुःख का अनुभव करता है। इसके अतिरिक्त कुछ एक विद्वानों का यह विचार है कि उक्त घटना के अनन्तर सम्भवतः बाण का देहान्त हो गया था और इस प्रकार यह कृति अधूरी ही रह गई। इसी प्रकार अन्य और कई मतभेद मिलते हैं पर निश्चयात्मक रूप से इस बारे में कुछ भी नहीं कहा जा सकता। हां इतना अवश्य कहा जा सकता है कि बाण को सम्भवतः इतने ही काव्य की रचना करना अभिप्रेत था।

बाण के हर्षचरित की विषयवस्तु को देखने से पता चलता है कि इसमें बाण की आत्मकथा के साथ ही साथ राजा हर्ष ६०६—६४८ ई० का जीवन चरित भी वर्णित है जो एक प्रसिद्ध ऐतिहासिक व्यक्ति है। इस प्रकार हर्ष चरित एक ऐतिहासिक ग्रन्थ भी माना जाता है। इसके अतिरिक्त हर्षचरित का ऐतिहासिक

महत्त्व इस बात से भी पुष्ट होता है कि इस काव्य में उल्लिखित ऐतिहासिक घटनाओं की सत्यता—तत्कालीन राजनीतिक, सामाजिक तथा धार्मिक परिस्थितियों का ब्यौरा, चीनी यात्री ह्वेनसांग द्वारा प्रस्तुत अपनी भारत यात्रा के विवरण तथा उस समय के उपलब्ध शिलालेखों से पुष्ट हो जाता है। पर यदि हर्षचरित का सूक्ष्म रूप से विश्लेषण किया जाए तो यह कृति ऐतिहासिक ग्रंथ नहीं अपितु ऐतिहासिक काव्य प्रमाणित होती है। दूसरे यह रचना ऐतिहासिक होते हुए भी रोचक शैली में लिखा गया वर्णनात्मक काव्य है क्योंकि इसमें वर्णित ऐतिहासिक तथ्य अपने में अपूर्ण अस्पष्ट तथा क्रमरहित हैं। राज्यश्री के पति ग्रहवर्मा के वध का क्या कारण था ? गौड़ राजा ने कौन से षड्यन्त्र का आश्रय लिया था ? आदि कई महत्व-शाली ऐतिहासिक तथ्यों के विषयों में यह काव्य कुछ संकेत नहीं करता। इसके अतिरिक्त मालव नृपति के वास्तविक व्यक्तित्व का भी हर्षचरित की सहायता से निर्धारण करना अत्यन्त कठिन है। गौड़ नृपति के विषय में भी कोई प्रामाणिक सामग्री इसमें उपलब्ध नहीं होती। असाक्षात् रूप से केवल इतना ही ज्ञात होता है कि वे शशाङ्क थे जिनका नाम ह्वेनसांग ने दिया है। काल अथवा तिथि क्रम के दृष्टिकोण से भी हर्षचरित एक दुर्बल तथा अव्यवस्थित रचना ही कही जा सकती है। इसके अतिरिक्त जिन ऐतिहासिक तथ्यों का इसमें उल्लेख हुआ भी है, उन को व्यक्त करने की भाषा भी प्रायः काव्यात्मक अलंकृत भाषा है। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि हर्षचरित के कथानक में प्रामाणिक घटनाओं, कवित्व एवं कल्पना का अद्भुत संमिश्रण हुआ है।

हर्षचरित के प्रति यह जो दूसरा दोष लगाया जाता है कि इसमें तो चरित-नायक हर्ष के जीवन सम्बन्धी समस्त घटनाओं पर भी पूर्ण प्रकाश नहीं डाला गया ; दूसरे ऐतिहासिक व्यक्तियों के विषय में तो हमें कोई विशेष आशा रखनी ही नहीं चाहिए। पर इस विषय में यह कहा जा सकता है कि सम्भवतः बाण को महाराज हर्ष के सम्पूर्ण जीवन चरित को लिखना अभिप्रेत नहीं था और इस बात का संकेत हमें हर्षचरित के तीसरे उच्छ्वास के इस वाक्य से अवश्य मिल जाता है—'कः खलु पुरुषायुषशतेनापि शक्नुयादविकलमस्य चरितं वर्णयितुम्। एकदेशे तु यदि कुतूहलं वः सज्जा वयम्' अर्थात्—महाराज हर्ष के सम्पूर्ण जीवन चरित का वर्णन क्या सौ पुरुषों की आयु से भी किया जा सकता है। यदि एक अंश के लिए आपको कुतूहल हो तो मैं प्रस्तुत हूँ।' और सम्भवतः इसी कारण सम्पूर्ण हर्षचरित के अध्ययन करने के अनन्तर भी महाराज हर्ष के जीवन सम्बन्धी बहुत सी घटनाओं तथा राज्य-सम्बन्धी बहुत सी राजनैतिक वार्त्ताओं के विषय में पाठकों की ज्ञान-पिपासा शान्त नहीं हो पाती।

इस प्रकार हर्षचरित एक ऐतिहासिक ग्रन्थ चाहे न माना जाए पर इस में तत्कालीन सामाजिक अवस्था एवं राजनीतिक परिस्थितियों का जो अत्यन्त उज्ज्वल, सजीव एवं प्रामाणिक चित्र आंका गया है, इस कारण वश हर्षचरित एक अमूल्य तथा महत्वपूर्ण रचना मानी जाती है। बाण ने अपनी यात्राओं में जिन जिन स्थानों का भ्रमण किया और वहां की जिन जिन प्रथाओं तथा रीति रिवाजों का पर्यावलोकन किया तथा इसी प्रकार जो अन्य अनुभव प्राप्त किए, उन का उल्लेख भी हर्षचरित में बड़े व्यापक, सरस तथा सुन्दर ढंग से हुआ है। राज-प्रासादों, सेना शिविरों, नगरों, वनों, तपोवनों, उपवनों, जनपद, समाज तथा ऋषि आश्रमों आदि का यथातथ्य तथा विशद वर्णन करने में बाण सर्वदा सिद्धहस्त सिद्ध हुए हैं।

कादम्बरी न केवल बाण भट्ट की अपितु समस्त संस्कृत साहित्य की सर्वोत्तम रचना है। इस गद्य काव्य में कादम्बरी तथा चन्द्रापीड़ एवं महाश्वेता तथा पुण्डरीक के प्रेमाख्यान का वर्णन है। इस में पुण्डरीक तथा चन्द्रापीड़ के एक जन्म की नहीं अपितु तीन तीन जन्मों की कहानी है और दूसरी ओर कादम्बरी तथा महाश्वेता अपने पहले जन्म जैसी ही बनी रहती हैं। पहले जन्म का ऋषिकुमार पुण्डरीक किसी कारणवश शरीर त्याग कर अपने दूसरे जन्म में मन्त्री पुत्र वैशम्पायन नाम से उत्पन्न होता है। दूसरी ओर पूर्वजन्म का चन्द्रमा इस जन्म में राजकुमार चन्द्रापीड़ के नाम से अवतरित होता है। भाग्यवश इन दोनों का पुनः शरीर त्याग होता है और चन्द्रापीड़ महाराज शूद्रक बनता है तथा वैशम्पायन—वैशम्पायन तोते का रूप धारण करता है। चन्द्रापीड़ तथा पुण्डरीक के विनाश पर कादम्बरी तथा महाश्वेता अपने प्राण त्यागने के लिए तत्पर होती हैं पर एक आकाशवाणी उन्हें भविष्य में अपने प्रेमियों से मिलने का आश्वासन देती है और इस प्रकार वे अपना शरीर त्याग नहीं करतीं। कुछ समय ऐसे ही बीतता है और एक दिन एक चाण्डाल कन्या वैशम्पायन के रूप में तोता लेकर महाराज शूद्रक की सभा में उपस्थित होती है और वहां वह तोता अपने पूर्व जन्म की कथा, जैसी उस ने जाबालि ऋषि से सुनी थी, वैसी की वैसी शूद्रक को सुनाता है और इस प्रकार शापमुक्त होकर पुनः पुण्डरीक का रूप धारण कर लेता है। दूसरी ओर इस कथा को सुनकर शूद्रक भी शरीर त्याग कर देता है और चन्द्रापीड़ बन जाता है। इस प्रकार जन्म-जन्मान्तरों के प्रेमियों का पुनर्मिलन होता है और उन के विवाह समारोह के अनन्तर काव्य समाप्त हो जाता है।

संक्षेप में कादम्बरी का कथानक इतना ही है पर बाण की उदात्त प्रतिभा, मौलिक उद्भावना तथा विस्तृत वर्णन शैली ने इसे एक व्यापक रूप दिया है। और सम्भवतः इसी कारण यह कथा हमें कादम्बरी में बड़ी जटिल तथा विचित्र सी लगती

है। और यह जटिलता भी प्रायः इस में कथा तथा उपकथा के सम्मिश्रण के कारण ही हुई प्रतीत होती, है अन्यथा बाण ने अपने कथानक का निर्वाह बड़े ही स्वाभाविक तथा सफल ढंग से किया है। इतना अवश्य माना जा सकता है कि बाण ने इस कथा को रहस्यमय बनाने में कोई कसर बाकी नहीं रखी। हम देखते हैं कि कादम्बरी की पहली घटना ही—जिसमें एक चण्डाल कन्या अपने शुक को लेकर सभा में प्रवेश करती है—कितनी रहस्यमय है। इस रहस्य को जानने के लिए प्रत्येक व्यक्ति उत्सुक होता है पर इस घटना का रहस्योद्घाटन कथा के अन्त में ही जाकर होता है।

कादम्बरी में बाण ने इस प्रणय कथा को जिस क्रम से रखा है वह इस प्रकार है—

विदिशा के राजा शूद्रक की सभा में एक चण्डाल कन्या एक विलक्षण शुक ले कर आती है। यह शुक अपने जन्म से लेकर जाबालि मुनि के आश्रम में पहुँचने तक का वर्णन सुनाता है। वहां आश्रम में जाबालि मुनि शुक को उस के पूर्व-जन्म की कथा सुनाता है। वह इस प्रकार है :—

उज्जयिनी के राजा तारापीड़ तथा रानी विलासवती ने तप करके चन्द्रापीड़ नामक पुत्र प्राप्त किया। शिक्षा प्राप्ति के पश्चात् चन्द्रापीड़ अपने साथी वैशम्पायन के साथ दिग्विजय के लिए गया। किन्नर युगल का पीछा करते करते वह अच्छोद सरोवर पर पहुँचा। अच्छोद सरोवर में जलपान करते हुए उसने मधुर संगीत का स्वर सुना और उससे आकृष्ट होकर उसके पीछे ही चल पड़ा। वहाँ एक शिवालय में उसने वीणा-वादन करती हुई महाश्वेता को देखा। चन्द्रापीड़ा के द्वारा पूछे जाने पर महाश्वेता अपना वृत्तान्त सुनाती है। महाश्वेता एक गन्धर्व राजकन्या थी। पुण्डरीक नामक एक तपस्वी तपोधन को देखकर वह उसके प्रति आकृष्ट हो गई परन्तु मिलन से पूर्व ही पुण्डरीक की काम-पीड़ा से मृत्यु हो गई। अतः पुनर्मिलन की आशा किए हुए वह अच्छोद सरोवर के किनारे तपस्या करने लगी। महाश्वेता की प्रिय सखी कादम्बरी ने भी उसी व्रत का पालन करने का निश्चय किया। महाश्वेता से परिचय पाकर चन्द्रापीड़ कादम्बरी के दर्शन करता है। प्रथम साक्षात्कार में ही दोनों में आकर्षण पैदा हो जाता है परन्तु प्रणय पूर्ति के पहले ही चन्द्रापीड़ उज्जयिनी लौट आता है। और वैशम्पायन को पीछे पीछे आने के लिए कह देता है। यहाँ कादम्बरी का पूर्व भाग समाप्त हो जाता है।

वैशम्पायन के वापिस न आने पर चन्द्रापीड़ उसे ढूंढता हुआ पुनः अच्छोद सरोवर पर पहुँचता है। वहाँ महाश्वेता उसे बताती है कि किस प्रकार वैशम्पायन उस पर आसक्त हो गया और उसने उसे शाप देकर तोता बना दिया। अभिन्न हृदय का

यह अन्त सुनकर चन्द्रापीड़ के भी उसी समय प्राण निकल गए। तत्क्षण कादम्बरी भी घटनास्थल पर पहुँच जाती है और अपने प्रेमी को मृत देखकर अपने प्राण छोड़ने के लिए तैयार हो जाती है। परन्तु एक आकाशवाणी उसे ऐसा करने से रोकती है। यहाँ जाबालि की कथा समाप्त हो जाती है।

तब चण्डाल कन्या ने राजा शूद्रक को कहा कि मैं पुण्डरीक (जो उस जन्म का वैशम्पयान है) की माता लक्ष्मी हूँ। अब शुक और आप के मिलने पर शाप की समाप्ति हो जाती है। राजा शूद्रक स्वयं पूर्व जन्म का राजा चन्द्रापीड़ है जो कभी स्वयं चन्द्रमा था, पर शापवश भूतल पर अवतरित हुआ था। इतना बता कर लक्ष्मी अन्तर्हित हो जाती है तथा शूद्रक और शुक का भी शरीरपात हो जाता है। दूसरी ओर चन्द्रापीड़ का पड़ा हुआ मृतक शरीर पुनर्जीवित हो जाता है और पुण्डरीक भी आकाश से उतर आता है और पुण्डरीक से महाश्वेता का और चन्द्रापीड़ से कादम्बरी का मिलन हो जाता है और ये प्रणयी-युगल सुख से अपना जीवन व्यतीत करते हैं।

कादम्बरी हमें दो भागों में उपलब्ध होती है—पूर्वार्द्ध तथा उत्तरार्द्ध। केवल पूर्वार्द्ध को ही बाण की प्रामाणिक रचना माना जाता है। सम्भवतः बाण के स्वर्गवास हो जाने के कारण यह कृति अपूर्ण रह गई अतः उत्तरार्द्ध भाग को बाण के पश्चात् उसके पुत्र भूषण भट्ट या पुलिन ने रचा था। डा० ब्यूलर कादम्बरी के उत्तरार्द्ध का रचयिता भूषण भट्ट को मानते हैं। पर बाण के पुत्र का नाम पुलिन या पुलिन्द भट्ट था। पुलिन अपने पिता का अनन्य भक्त था। अपने पिता की अपूर्ण कृति को पूर्ण करना उसने अपना कर्त्तव्य समझा तभी तो कादम्बरी के उत्तरार्द्ध के आरम्भ में वह स्वयं लिखता है[1] कि पूज्य पिता के स्वर्ग सिधार जाने पर यह कथा प्रबन्ध भी उनके वचन के साथ ही इस संसार में विच्छिन्न हो गया। और फिर मैंने भी इसके समाप्त न होने से, श्रेष्ठ पुरुषों के दुःख को देखकर ही लिखना आरम्भ किया है, कवित्व प्रदर्शनादि के दर्प के कारण नहीं। और फिर यह पिता की ही अनुकम्पा है कि मैं उन जैसा गद्य लिखने में समर्थ हुआ हूँ और फिर कादम्बरी के उत्तम रस का स्वाद लेकर

---

[1] "याते दिवं पितरि तद्वचसैव सार्धं
विच्छेदमाप भुवि यस्तु कथाप्रबन्धः।
दुःखं सतां तदसमाप्तिकृतं विलोक्य
प्रारब्ध एव च मया न कवित्व दर्पात् ॥
कादम्बरी रसमयेन समस्त एव
मत्तो न किञ्चिदपि चेतयते जनोऽयम्।
भीतोऽस्मि यन्न रसवर्ण विवर्जितेन
तच्छेषमात्मवचसाप्यनुसंदधानः ॥" कादम्बरी उत्तरार्द्ध—४-७।

सब लोग कुछ ऐसे उन्मत्त हो उठे हैं कि रसवर्णवहीन अपने वचन उसमें सम्मिलित करते हुए मुझे कुछ भय नहीं, क्योंकि मदहोशी में किसी को कुछ भी पता न चलेगा।"

इस प्रकार पुलिन्द्र भट्ट द्वारा रचित कादम्बरी का उक्त भाग केवल तृतीयांश ही है, और बाण द्वारा रचित कादम्बरी का पूर्वार्द्ध भाग सम्पूर्ण ग्रन्थ का दो तिहाई भाग है।

कादम्बरी का स्रोत गुणाढ्य की बृहद्कथा जान पड़ता है। 'कादम्बरी' बाणभट्ट का ही नहीं अपितु संस्कृत-साहित्य का वह सर्वोत्तम उपन्यास है जिसमें—भाषा और भाव, शब्द और अर्थ का उचित सम्मिलन, वस्तु विन्यास का कौशल एवं विकास, विशद एवं सजीव पात्र-चित्रण, कल्पना के अति उत्कृष्ट चित्र एवं बहुमुखी जीवन के विविध अनुभवों का यथातथ्य चित्रण, वर्णनों की विविधता और तत्कालीन सामाजिक परिस्थितियों का सम्पूर्ण ज्ञान—पूर्ण सफलता से अंकित किया गया है। इन्हीं कारणों से तभी तो यह कहा गया है कि 'कादम्बरी' के रसज्ञों को भोजन भी अच्छा नहीं लगता :—"कादम्बरीरसज्ञानामाहारोऽपि न रोचते"।

बाण को पात्र-चरित्र-चित्रण करने में भी अद्वितीय सफलता मिली है। कादम्बरी के सभी पात्र—तारापीड़, चन्द्रापीड़, वैशम्पायन, कादम्बरी, महाश्वेता, हारीत, शुकनास, रानी विलासवती, पत्रलेखा, कपिंजल आदि—सजीव तथा अपने आप में पूर्ण हैं। इनके चरित्र-चित्रण में बाण ने कोई भी कमी नहीं रहने दी। चन्द्रापीड़ तथा कादम्बरी के प्रथम मिलन पर स्वाभाविक मानव हृदय-चेष्टाओं तथा मनोभावों का अद्वितीय चित्रण बाण ने बहुत ही सूक्ष्म, सरस तथा हृदयग्राही ढंग से किया है। इनके चित्रण में बाण की वर्णन पटुता, कल्पना-वैभव तथा मानव-मनोवृत्तियों का मार्मिक निरीक्षण सर्वथा प्रशंसनीय है। इसी प्रकार कमनीयकाया कादम्बरी तथा शुभ्रवदना तपस्विनी महाश्वेता के विलास-सौन्दर्य के, शूद्रक तथा तारापीड़ के ऐश्वर्य-वैभव के, महर्षि जाबालि के शान्त-पुनीत-पवित्र तथा पावन आश्रम के, विकट तथा भयावह विन्ध्याचल अटवी के तथा अच्छोद सरोवर एवं हिमालय के सुरम्य और रमणीक दृश्यों के वर्णन में बाण ने कोई कसर नहीं उठा रखी। इन्द्रायुध अश्व के सजीव वर्णन के कारण तो लोग बाण को 'तुरंग बाण' के नाम से स्मरण करने लग पड़े थे। इसी प्रकार चन्द्रापीड़ को दिए-जाने वाले शुकनासोपदेश के महत्व को भला क्या कोई विस्मरण कर सकता है।

कादम्बरी का प्रधान रस शृंगार है परन्तु इस शृंगार रस के चित्रण में बाण ने कहीं भी दशकुमारचरित की भांति इसमें अश्लीलता को नहीं आने दिया। इसमें वर्णित विचित्र प्रेम सर्वथा अपने में उदात्त तथा परिष्कृत है तभी तो जब पुण्डरीक महाश्वेता के प्रेम में मदान्ध होकर अपने आपको भी भूल जाता है तो बाण कपिंजल के द्वारा

पुण्डरीक के इस उच्छृंखल तथा असंयत प्रेम की बहुत ही भर्त्सना करता है। इस प्रकार कादम्बरी में उस सात्विक प्रेम का वर्णन है जो इन्द्रियों के विषय-वासनाओं से कहीं ऊपर उठकर है। इसमें उस हार्दिक प्रेम की गाथा है जो सन्तप्त लोहे की भान्ति विरह की अग्नि में जलकर पवित्र हुए दो हृदयों के मिलने से उत्पन्न होता है और फिर सच्चा प्रेम कभी समाप्त भी तो नहीं होता तभी तो कादम्बरी में जन्मजन्मान्तरों के प्रेम को महत्त्व दिया गया है।

कादम्बरी के कथानक का विश्लेषण करते हुए कीथ महोदय लिखते हैं—

'वास्तव में, यह एक विचित्र कहानी है, और उन लोगों के प्रति जिनको पुनर्जन्म में अथवा इस मर्त्य जीवन के अनन्तर पुनर्मिलन में भी विश्वास नहीं है, इसकी प्ररोचना गम्भीररूप से अवश्य ही कम हो जानी चाहिए। उनको यह सारी कथा, निकम्मी नहीं तो असंगत अद्भुत कथा के रूप में ही प्रतीत होती है, जिसके आकर्षण से हीन पात्र एक अवास्तविक वातावरण में ही रहते हैं। परन्तु भारतीय विश्वास की दृष्टि से वस्तु-स्थिति बिल्कुल भिन्न है। कथा को हम औचित्य के साथ मानवीय प्रेम की कोमलता, दैवी आश्वासन की कृपा, मृत्युजनित शोक और कारुण्य, और प्रेम के प्रति अविचल सच्चाई के परिणामस्वरूप मृत्यु के पश्चात् पुनर्मिलन की स्थिर आशा से परिपूर्ण मान सकते हैं।'[1]

पीटरसन ने कादम्बरी की मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की है। उनके मतानुसार इसका संस्कृत साहित्य में ही नहीं अपितु विश्व साहित्य में एक विशेष स्थान है।[2]

क्योंकि हर्षचरित वास्तविक घटनाओं पर आधारित है और कादम्बरी में बाण ने अपनी कल्पनाओं के रंग भरे हैं, अतः कादम्बरी भाव, भाषा, शैली तथा साहित्यिक दृष्टिकोण से उनकी अद्वितीय तथा सर्वोत्कृष्ट रचना है। पर बाण की ख्याति के आधारभूत स्तम्भ—हर्षचरित तथा कादम्बरी दोनों समान रूप से माने जाते हैं इन दोनों कृतियों के अतिरिक्त बाणभट्ट की जिन रचनाओं का नाम लिया जाता है। उनमें चण्डीशतक, पार्वती परिणय तथा मुकुटताड़ितक विशेष उल्लेखनीय है।

---

[1] पृष्ठ ३८३—संस्कृत साहित्य का इतिहास—कीथ, रूपान्तरकार डा० मंगलदेव।

[2] "Kadambari has its place in the world's literature as one more aspiration out of the very heart of genius after that story, which, from the beginning of time, mortal ears have yearned to hear, but which mortal lips have never spoken"—Peterson.

चण्डीशतक बाण का गीतिकाव्य है। इसमें बाण ने सौ श्लोकों में चण्डी देवी की स्तुति की है। इस कृति के विषय में यह लोकधारणा प्रचलित है कि बाण ने सम्भवतः यह स्तोत्र मयूरकवि के शाप से मुक्ति पाने के लिए रचा था।

अनुपलब्ध मुकुटताड़ितक बाण की नाटक कृति है जिसे नलचम्पू के टीकाकार जैन विद्वान् चन्द्रपाल तथा गुण विजयगणि ने बाणभट्ट की रचना बतलाया है, पर इस तथ्य की पुष्टि अन्य किसी भी ग्रन्थ आदि के उल्लेख से नहीं हो पाई, अतः इस कृति के कर्तृत्व के विषय में निश्चयात्मक रूप से कुछ भी नहीं कहा जा सकता। और फिर यह नाटक आज प्राप्य नहीं इसलिए इसके विषयादि से भी हम सर्वदा अनभिज्ञ हैं।

'पार्वती-परिणय' भी बाण की एक नाटक कृति है जिसमें शिव तथा पार्वती के विवाह का रोचक कथानक प्रस्तुत किया गया है। इस कृति पर कालिदास के कुमारसम्भव का प्रभाव प्रत्यक्ष परिलक्षित होता है। म० म० काणे तो इसे बाण की कृति मानते हैं पर डा० कीथ इसे १५वीं शताब्दी के वामनभट्ट बाण की रचना मानते हैं। और कुछ विद्वान् इसे १५वीं शताब्दी की नहीं प्रत्युत १७ वीं शताब्दी के एक बाणभट्ट नामधारी किसी दाक्षिणात्य कवि की रचना मानते हैं। और फिर यदि हम पार्वतीपरिणय तथा बाण की अन्य दोनों कृतियों की, रचना तथा शैली की दृष्टि से तुलना करें तो हम यह कहने में अवश्य बाध्य हो जाएंगे कि कादम्बरी तथा हर्षचरित जैसी उत्कृष्ट रचनाओं का रचयिता बाण 'पार्वती-परिणय' जैसी अप्रौढ़ रचना का लेखक कदापि नहीं हो सकता।

कुछ आलोचक तो महाराज हर्ष के नाम से प्रसिद्ध—रत्नावली, प्रियदर्शिका एवं नागानन्द—इन तीनों नाटकों का रचयिता भी बाण को ही बताते हैं। इन आलोचकों का यह मत है कि महाराज हर्ष ने बाण को बहुत सा धन देकर इन नाटकों को अपने नाम से लिखवाया था पर उनका यह तर्क सर्वथा निराधार तथा व्यर्थ सा प्रतीत होता है। क्योंकि बाण यदि केवल धन प्राप्ति के लिए ही रचना करता होता तो सम्भवतः कादम्बरी को हर्ष के नाम से लिखकर उससे बहुत अधिक धन हस्तगत कर सकता था, पर ऐसा उसने नहीं किया। दूसरे इन नाटकों में बाण की उत्कृष्ट तथा परिष्कृत शैली, कल्पना की ऊँची उड़ान, तथा भाषा सौन्दर्य का सर्वथाभाव है, अतः ये नाटक बाण द्वारा न रचे जाकर महाराज हर्ष द्वारा ही प्रणीत प्रतीत होते हैं।

कुछ विद्वान् क्षेमेन्द्र के 'औचित्य-विचारचर्चा' में उद्धृत कादम्बरी की विरहावस्था से सम्बद्ध एक पद्य के आधार पर यह विचार प्रस्तुत करते हैं कि बाण ने पद्यबद्ध कादम्बरी की भी रचना की थी पर पद्यबद्ध कादम्बरी न तो हमें उपलब्ध ही हुई है और न ही इस विषय में हमें कोई अन्य पुष्ट प्रमाण मिलते हैं अतः पद्यबद्ध कादम्बरी की रचना के विषय में भी संदिग्ध धारणा ही प्रचलित हुई प्रतीत होती है।

इस प्रकार बाण के नाम पर चाहे कई एक रचनाएं प्रचलित है पर साहित्यिक दृष्टिकोण से कादम्बरी तथा हर्षचरित ही इनकी सर्वोत्कृष्ट रचनाएं हैं। भाषा, भाव तथा शैली सभी दृष्टि से इनकी ये दोनों कृतियां संस्कृत साहित्य के दो अमूल्य रत्न हैं। इनमें बाण का कवित्व तथा रसमयता अपनी चरम सीमा पर पहुंची दिखाई देती है। अपने रस परिपाक के कारण ये दोनों अमर कृतियां सैकड़ों वर्षों से जनमानस का मनोरञ्जन कर रही हैं। बाण ने इनमें अपनी कलात्मक चातुरी द्वारा, भिन्न भिन्न समय तथा परिस्थितियों में उठने वाले विविध मनोभावों का बड़ा ही सजीव वर्णन प्रस्तुत किया है। अनेकानेक विद्वानों तथा कवियों ने बाण के अनुपम शब्दभण्डार, सजीव पात्र-चरित्र चित्रण, अलंकृत शैली, विलक्षण स्वर-माधुर्य, अलौकिक कल्पना वैभव, सारगर्भित उक्तियों, मौलिक अर्थों की उद्भावना, मार्मिक-मनोनिरीक्षण, असाधारण पाण्डित्य एवं सन्तुलित शैली की मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की है। गोवर्धनाचार्य ने तो बाणभट्ट को वाणी का साक्षात् अवतार स्वीकार किया है। उनके कथनानुसार जिस प्रकार अधिक प्रगल्भता प्राप्त करने के हेतु पहले जैसे शिखण्डिनी, शिखण्डी बन गई थी, उसी प्रकार पुरुष रूप में अत्यधिक चमत्कार प्राप्त करने की कामना से वाणी बाण का रूप धारण कर बैठी—

"जाता शिखण्डिनी प्राग् यथा शिखण्डो तथाऽवगच्छामि।
प्रागल्भ्यमधिकमाप्तुं वाणो बाणी बभूवेति ॥"

इसी प्रकार धर्मदास भी बाण की रुचिर तथा रसमय वाणी पर मुग्ध होकर उनकी मुक्तकण्ठ से प्रशंसा करते हैं—

"रुचिर-स्वरवर्णपदा रसभाववती जगन्मनो हरति।
सा किं तरुणी ? नहि नहि वाणी बाणस्य मधुरशीलस्य ॥"

गद्य साहित्य और बाण

* संस्कृत गद्य साहित्य एक पर्यवेक्षण
* गद्यं कवीनां निकषं वदन्ति
* संस्कृत साहित्य में कथा एवं आख्यायिका
* गद्य परम्परा और बाण
* बाण का गद्य सौष्ठव
* गद्यकार बाणभट्ट—एक विहंगम दृष्टि

'स्फुरत्कलालापविलासकोमला करोति रागं हृदि कौतुकाधिकम् ।
रसेन शय्यां स्वयमभ्युपागता कथा जनस्याभिनवा वधूरिव ॥'

: १ :

संस्कृत गद्य साहित्य–एक पर्यवेक्षण

सर्वाङ्गपूर्ण महनीय संस्कृत वाङ्मय समस्त विश्व में अपनी विविधता के कारण अपना कोई सानी नहीं रखता। गद्य पद्य में रचे जाने वाले–वेद, वेदांग, ब्राह्मण, उपनिषद्, दर्शन, सूत्र, स्मृतियां, अर्थशास्त्र, पुराण, तन्त्र, शल्य, चिकित्सा, काव्य, नाटक, नाट्यादि ग्रन्थों की संस्कृत साहित्य में बहुलता है। सम्भवतः विश्व की अन्य किसी भी भाषा में इस प्रकार के विविध साहित्य के दर्शन होने दुर्लभ हैं।

विश्व की अन्य समस्त भाषाओं की भांति प्राचीन संस्कृत साहित्य में भी गद्य की अपेक्षा पद्यमय रचनायें अधिक उपलब्ध होती हैं। इसका मुख्य कारण यह था कि जिस काल में अभी लेखन कला आरम्भ नहीं हुई थी उस समय में यद्यपि गद्य बोल चाल के रूप में चाहे प्रयुक्त होती थी पर फिर भी गद्य की अपेक्षा पद्य समरण करना अत्यन्त सुगम माना जाता था और सम्भवतः इसी कारण वश कवि वर्ग ने भी गद्य को छोड़ पद्य को अपनाने में ही अपना हित समझा। क्योंकि ऐसा करने में उनका काव्य मौखिक परम्परा द्वारा अधिक प्रसिद्धि प्राप्त कर सकता था। सो ऐसी स्थिति होने पर भी कई श्रेष्ठ लेखकों ने अपने मनोभावों की अभिव्यक्ति के लिए गद्य शैली को ही अपनाया और इस प्रकार उन द्वारा रचा गया गद्य साहित्य अपनी उत्कृष्टता के कारण किसी भी रूप में कम नहीं कहा जा सकता।

पद्य साहित्य में अपनी कई विशेषताएँ हैं। छन्दोबद्ध रचना होने के कारण इसमें संगीत की प्रधानता रहती है तथा शब्द-विन्यास भी एक विशेष क्रम से होता है और फिर लयबद्धता एवं अधिकतया सौन्दर्यमय होने के परिणामस्वरूप काव्यकारों का ध्यान विशेषरूप से इस विधा की ओर आकृष्ट होना स्वाभाविक ही था और सम्भवतः इसी कारण से हमारे कई शास्त्र-ग्रन्थ भी प्रायः पद्य में ही लिखे गए। इस प्रकार संस्कृत गद्य काव्यों की बहुत ही कम रचनाएं हुई। पर फिर भी जितना भी गद्य साहित्य रचा गया वह अपनी रमणीयता के कारण किसी भी प्रकार अपूर्ण नहीं कहा जा सकता और इसके साथ ही पद्य साहित्य से होड़ लेने में समर्थ है।

"अपि कुछ विद्वान् लैटिन भाषा के गद्य को सब भाषाओं के गद्य से अधिक सुन्दर, प्रौढ़ तथा प्रभावशाली मानते हैं पर वास्तव में यदि हम संस्कृत तथा लैटिन भाषाओं के गद्य का तुलनात्मक अध्ययन करें तो लेटिन भाषा का गद्य संस्कृत भाषा के गद्य के आगे फीका पड़ जाएगा। इसके अतिरिक्त प्राचीनता की दृष्टि से भी संस्कृत गद्य सबसे उत्कृष्ट तथा स्फुट-भावाभिव्यक्ति का अपेक्षाकृत सबसे श्रेष्ठ माध्यम है।

सामान्य रूप से भी देखा जाए तो पद्य की अपेक्षा गद्य शैली—भाव प्रकाशन की सर्वोत्कृष्ट शैली है। इसके अतिरिक्त संस्कृत के विद्वान् आचार्यों ने पद्य की अपेक्षा गद्य को ही अधिक सराहा है—'गद्यं कवीनां निकषं वदन्ति'—गद्य ही कवि की कसौटी है और वास्तव में एक सफल गद्य लेखक ही एक सफल कवि माना जाता रहा है। गद्य लेखक का स्तर बहुत ऊँचा होता है। पद्य में वर्ण एवं मात्राओं के क्रम की ओर ध्यान दिए बिना रचना करना बहुत कठिन है पर वास्तव में सच्ची बात यह है कि गद्य रचना अपनी क्लिष्ट शैली के कारण सचमुच ही बहुत कठिन एवं श्रम-साध्य है। सम्भवतः इसी लिए दण्डी ने समास बहुलता वाले ओज को गद्य का प्राण स्वीकार किया है[1]

इस प्रकार पद्य में लिखना इतना दुष्कर नहीं जितना कि गद्य में। पद्य में लय एवं ताल की प्रधानता होने के कारण कवियों की कई त्रुटियाँ छिप सी जाती हैं पर गद्य में तो बड़ी सूझ-बूझ से शब्द-विन्यास एवं भावगम्य आवश्यक पदों का सन्निवेश करना पड़ता है। अतः केवल विशिष्ट कवि-गण ने ही गद्य में लिखने का साहस किया और सम्भवतः इसी कारण से पद्य की अपेक्षा गद्य का प्रयोग बहुत सीमित रहा।

जहां तक गद्य के उद्भव का सम्बन्ध है, इस विषय में निश्चयात्मक रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता और इसके साथ ही संस्कृत-गद्य काव्यों की परम्परा का आरम्भ कब से हुआ ? इस दिशा में भी कोई अन्तिम निर्णय नहीं दिया जा सकता। हां इतना अवश्य कहा जा सकता है कि विश्व की अन्य भाषाओं की भान्ति संस्कृत गद्य का विकास भी पद्य के विकास के अनन्तर ही सम्पन्न हुआ। पर जहां तक गद्य के क्रमिक विकास के इतिहास का सम्बन्ध है, उसे हम दो भागों में बांट सकते हैं—वैदिक साहित्य का गद्य तथा लौकिक संस्कृत का गद्य। वैदिक साहित्य के गद्य से हमारा अभिप्राय चारों वेदों, ब्राह्मण ग्रन्थों, आरण्यकों, उपनिषदों तथा वेदांगों में प्रयुक्त होने वाले गद्य से है। दूसरी ओर, लौकिक संस्कृत गद्य का रूप—महाभारत, पुराण, व्याकरण, भाष्य, अर्थशास्त्र, नीतिशास्त्र, दर्शन, नाटक तथा नाट्यादि ग्रन्थों एवं-शिलालेख तथा प्रशस्तिओं में उपलब्ध है।

वैदिक गद्य प्रायः सरल तथा बोलचाल की भाषा का गद्य है, दूसरी ओर लौकिक संस्कृत का गद्य सरस, प्रौढ़, समास-बहुल तथा कुछ क्लिष्ट सा है। पर दोनों प्रकार के

(1) ओज : समासभूयस्त्वमेतद् गद्यस्य जीवितम्"—(काव्यादर्श-१-८०)

गद्यों में अपना अपना विशिष्ट सौन्दर्य एवं अनुपम मनोहारिता है। वैदिक गद्य में सरल शब्दों तथा छोटे छोटे वाक्यों के दर्शन होते हैं। समासों का इसमें बहुत ही कम रूप से प्रयोग हुआ है फिर भी वैदिक गद्य की कमनीयता सर्वदा सराहनीय है।

पद्य में लिखा गया संस्कृत का ही नहीं अपितु विश्व का सबसे प्राचीन ग्रन्थ ऋग्वेद माना जाता है। पद्य की भाँति गद्य साहित्य इतना पुराना तो नहीं परन्तु जर्मन विद्वान् ओल्डनबर्ग ने इसको भी पर्याप्त प्राचीन सिद्ध करने का प्रयत्न किया है। उनकी धारणा है कि ऋग्वेद के संवादात्मक सूक्तों में कहीं कहीं गद्य का समावेश भी अवश्य रहा होगा, जो कालान्तर में स्मरण-शक्ति के क्षीण हो जाने के कारण लुप्त हो गया। अपने इस मत की पुष्टि में वे आपरिश और सकन्डेनेवियन काव्यों के उद्धरण भी प्रस्तुत करते हैं। पर उनकी इस विचार धारा से अन्य विद्वान् सहमत प्रतीत नहीं होते और इस प्रकार उनका यह मत सर्वमान्य नहीं रहा। अतः हम गद्य साहित्य को ऋग्वेद कालीन चाहे न मानें परन्तु इतना अवश्य कहा जा सकता है कि गद्य साहित्य भी पद्य की तरह नितान्त प्राचीन है।

इसका प्राचीनतम रूप हमें यजुर्वेद विशेषकर कृष्ण यजुर्वेद में उपलब्ध होता है। कृष्ण यजुर्वेद की तैत्तिरीय तथा मैत्रायणी आदि शाखाओं एवं अथर्ववेद संहिता का गद्य सरल तथा सुगम होने के कारण अपनी प्रारम्भिक अवस्था में दिखाई देता है। क्योंकि इस गद्य का प्रयोग केवल मात्र मन्त्रों के विनियोग एवं यज्ञ सम्बन्धी क्रियाओं की व्याख्या प्रस्तुत करने में प्रयुक्त हुआ है। इस कारण से इसका स्वरूप इन संहिताओं में कृत्रिमता तथा अलंकृति से सर्वथा अछूता रहा।

वेदों के इन मूल ग्रन्थों के अनन्तर इनके टीकारूप ब्राह्मण-ग्रन्थों में गद्य का अधिकांश रूप में प्रयोग हुआ है। यद्यपि इनमें कहीं कहीं यज्ञ-क्रिया सम्बन्धी व्याख्या प्रस्तुत करने वाला गद्य क्लिष्ट तथा अस्पष्ट सा है पर फिर भी इनके गद्य की भाषा सरल तथा सुबोध है और वैदिक संहिताओं के गद्य की अपेक्षा अधिक विकसित तथा परिष्कृत है। इसी प्रकार यज्ञों की रहस्यात्मक व्याख्या प्रस्तुत करने वाले आरण्यकों में भी प्रायः ब्राह्मण ग्रन्थों जैसे गद्य का ही प्रयोग हुआ है। इन में भी कहीं कहीं यद्यपि कठिन गद्य के दर्शन होते हैं पर इन की भाषा प्रायः सरल ही है। इस के अतिरिक्त ब्राह्मण ग्रन्थों की भान्ति इन में भी पाणिनि-व्याकरण के नियमों का पालन नहीं मिलता पर फिर भी इन का गद्य ब्राह्मण ग्रन्थों के गद्य की अपेक्षा लौकिक संस्कृत के गद्य से बहुत मिलता जुलता है।

ब्राह्मणों के अनन्तर वैदिक गद्य का संवर्धित तथा आकर्षक रूप हमें भाव-गाम्भीर्य के कोष उपनिषदों—विशेषकर बृहद्, छान्दोग्य, तैत्तिरीय तथा कौषीतकी आदि में प्राप्त

होता है। सरल तथा सुबोध भाषा शैली वाले इन ग्रन्थों का गद्य भी ब्राह्मण ग्रन्थों की तरह ही बड़ा सजीव तथा सुगम है।

वैदिक गद्य तथा लौकिक गद्य के सन्धिकाल के सूत्रग्रन्थों का गद्य प्राय: इन दोनों में एक कड़ी का सा काम देता है। गम्भीर भावों को भी अत्यल्प शब्दों में व्यक्त करने वाले इन श्रौतसूत्र तथा गृह्यसूत्र ग्रन्थों का गद्य प्राय: क्रियापदों का अभाव रहने के कारण व्याख्यागम्य, दुर्बोध, अस्पष्ट तथा जटिल सा है। लगभग ७०० ई० पू० यास्क का निरुक्त तथा पाणिनि के सूत्र प्राय: इसी शैली में लिखे गए हैं।

कुछ विद्वान् पौराणिक गद्य को वैदिक गद्य तथा लौकिक गद्य का सम्मिश्रण मानते हैं। इस बात की पुष्टि श्रीमद्भागवत तथा विष्णु पुराण के गद्य को देखने से स्पष्ट रूप में हो जाती है। इन के गद्य में साहित्यिक गद्य का सौन्दर्य तथा अलंकारों की छटा भी देखने में आती है। और कहीं-कहीं तो प्रौढ़ तथा अलंकृत गद्य विशेष आकर्षक बन पड़ा है। इस प्रकार देखा जाए तो पुराणों का गद्य कहीं-कहीं सुन्दर अवश्य है पर इन का गद्य अधिकतर घिसा पिटा ही है। जहाँ दार्शनिक तथ्यों का विवेचन हुआ है, वहाँ का गद्य तो विशेष रूप में आडम्बर पूर्ण एवं जटिल सा है।

जहाँ तक लौकिक संस्कृत के गद्य का सम्बन्ध है, उस से हमारा अभिप्राय प्राय: उस गद्य से है जिस में पाणिनि व्याकरण सम्बन्धी नियमों का पालन किया गया है। ऐसे लौकिक गद्य का प्रयोग दर्शन, व्याकरण, अर्थशास्त्र आदि शास्त्रीय ग्रन्थों तथा टीका-टिप्पणियों के कई ग्रन्थों में हुआ है। इन शास्त्रीय ग्रन्थों में तो गद्य का सर्वत्र साम्राज्य सा दिखाई देता है। पर स्वाभाविक छटा से सुशोभित, रोचक, सुरुचिपूर्ण तथा सुन्दर एवं मनोरम गद्य के दर्शन हमें महाभारत के बाद में रचे जाने वाले ग्रन्थों में होते हैं। महाभारत में भी कहीं-कहीं अलंकृत गद्य शैली को अपनाया गया है पर इस का गद्य अधिकांशत: अनलंकृत शैली का गद्य ही माना जाता है।

महाभारत की तरह अनलंकृत शैली के गद्य में हमें सर्वप्रथम पतञ्जलि का व्याकरण ग्रन्थ महाभाष्य (१५० ई० पू०) मिलता है। महाभाष्य का प्रतिपाद्य विषय यद्यपि बड़ा ही नीरस तथा शुष्क है तथापि पतञ्जलि ने अपनी सरल तथा प्रांजल भाषा द्वारा इसे बहुत ही रोचक बना दिया है। इस की भाषा बोलचाल की भाषा है और शैली भी कथनोपकथन प्रधान है। पतञ्जलि न तो सूत्रशैली के चक्र में पड़े और न ही उन्होंने लम्बे-लम्बे समासों में अपना विश्वास प्रकट किया, अलंकरण की ओर भी विशेष रुचि नहीं रखी तथापि इन का महाभाष्य गद्य की एक श्रेष्ठ कृति है।

कौटिलीय अर्थशास्त्र की गद्य-शैली भी प्राय: सूत्रात्मक ही है। अर्थशास्त्र में

मुख्य विषय का प्रतिपादन इसी गद्य शैली में हुआ है। यद्यपि कौटिल्य कहीं-कहीं जहाँ अपने मत को पुष्ट करना चाहते हैं, अथवा जिस बात पर वह अधिक बल देना चाहता है, वहाँ उस ने अवश्य पद्य का सहारा लिया है पर कौटिलीय अर्थशास्त्र का अधिक भाग गद्य में ही रचा गया है।

संस्कृत साहित्य के प्रायः सभी दर्शन-ग्रन्थ गद्य में ही रचे गए हैं। महाभाष्य की तरह षड्दर्शनों के सूत्र-ग्रन्थों पर जो भाष्य लिखे गए वे भी गद्य के उत्कृष्ट निदर्शन हैं। यद्यपि दर्शन शास्त्र के ग्रन्थों में शब्द-सौन्दर्य तथा भाषा का चमत्कार चाहे हमें न मिले पर दार्शनिक गद्य के कुछ ग्रन्थ तो विशुद्ध साहित्यिक गद्य के समान सरस, अलंकृत तथा भावाभिव्यञ्जक हैं।

दार्शनिकों में कालक्रम से—शबर स्वामी, वात्स्यायन, शंकराचार्य तथा जयन्त भट्ट द्वारा क्रमशः मीमांसा, न्याय, वेदान्त और योगसूत्रों पर किए गए भाष्यों का गद्य यद्यपि दार्शनिक गाम्भीर्य से ओत प्रोत है पर फिर भी इनकी गद्य शैली बड़ी सरल-स्पष्ट तथा प्रांजल है। विशेषरूप से प्रौढ़ मीमांसक शबरस्वामी का कर्म-मीमांसा के सूत्रों पर लिखा गया भाष्य तो बहुत ही सरल तथा रोचक है। इस दार्शनिक गद्य शैली में अपेक्षाकृत अर्वाचीन होते हुए भी शंकराचार्य के उपनिषदों पर लिखे गए भाष्य तो गद्य साहित्य के अनमोल रत्न हैं और इनमें गद्य साहित्य का चरम परिपाक स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। इनकी शैली तर्कप्रधान, सारगर्भित तथा प्रौढ़ होने पर भी अपने में एक मन-मोहकता लिए हुए है। और देखा जाए तो इसी बात में इनकी विशिष्टता है कि गाम्भीर्य विषयों का विवेचन करते हुए भी इन्होंने अपनी भाषा में अस्पष्टता तथा क्लिष्टता को नहीं आने दिया।

पर खेद की बात है कि विशेषतः शंकराचार्य द्वारा प्रचलित इस सरल तथा स्पष्ट शैली का स्थान कालान्तर में रचे गए दार्शनिक गद्य की जटिलता एवं अस्पष्टता ने ले लिया। और सम्भवतः इसीलिए इनके अनन्तर संस्कृत की दार्शनिक गद्य शैली जटिल तथा क्लिष्ट पदावली से आक्रान्त हो उठी। इस प्रकार बाद के काल के दार्शनिकों के द्वारा लिखे गए गद्य में रोचकता तथा सरसता कम है और जटिलता तथा पारिभाषिकता अधिक।

शंकराचार्य की भान्ति ही अन्य दार्शनिकों में न्यायशास्त्र के आचार्य जयन्त भट्ट द्वारा न्याय-दर्शन पर लिखा गया 'न्यायमंजरी' नामक ग्रन्थ भी अपनी व्यंग्यपूर्ण, रोचक तथा सरल शैली के कारण पर्याप्त प्रसिद्ध है। यद्यपि इन द्वारा प्रतिपादित विषय बड़ा ही कठिन तथा रूक्ष है तो भी जयन्तभट्ट ने अपनी सरस तथा रोचक शैली के माध्यम से इसे बहुत ही सुन्दर प्रांजल तथा हृदयगम बना दिया है।

इसके अतिरिक्त संस्कृत भाषा की उत्कृष्टता से प्रभावित होकर जिन बौद्ध लेखकों ने पाली भाषा को छोड़कर संस्कृत का आश्रय लेकर लिखा, उनके गद्य में हमें भाषा की ढील तथा पुनरुक्ति दोषादि चाहे मिल जाएं पर उनका गद्य वास्तव में भाव-पूर्ण तथा सुन्दर शैली का निदर्शन माना जाता है। इसी प्रकार अलंकार-शास्त्र आदि शास्त्रीय ग्रन्थों में प्रयुक्त गद्य भी अपने अपने समय की प्रचलित गद्य शैली से विशेष प्रभावित दिखाई देता है, पर इन समस्त ग्रन्थों का गद्य अनलंकृत गद्य की कोटि में ही रखा जाता है।

इसी प्रकार नाटकों, आख्यानों तथा चम्पू आदि काव्यों में यद्यपि गद्य का प्रयोग बड़ी सफलता से हुआ है और इनके गद्य की गणना—सरल, रोचक तथा मधुर होने के कारण अलंकृत शैली के गद्य में की जा सकती है, पर क्योंकि इनमें गद्य को सारे काव्य में स्थान नहीं मिला इसीलिए इनका गद्य श्रेष्ठ गद्य-काव्य की कोटि में नहीं आ सकता और इसके साथ ही क्योंकि लेखकों का ध्यान इन काव्यों की रचना करते समय पद्य-सौन्दर्य की ही ओर अधिक रहा, गद्य का विन्यास तो सामान्य-रूप में ही किया गया प्रतीत होता है।

शिलालेखों में प्रयुक्त होने वाला गद्य अत्यन्त परिष्कृत, रमणीय तथा हृदयावर्जक है। अपनी समास-बाहुल्य, सरस, अलंकृत शैली का उत्कृष्ट नमूना है। यही बात प्रशस्तियों के विषय में भी लागू होती है। रुद्रदामन (१५० ई०) तथा वत्सभट्टी (४३६ ई०) के शिलालेख एवं हरिषेण (३४५ ई०) की प्रशस्ति अलंकृत गद्य-शैली की उत्कृष्ट प्रतीक है। रुद्रदामन के गिरिनार-शिलालेख अनुप्रासादि शब्दालंकारों तथा अर्थालंकारों के प्रयोग के कारण एवं समास-बहुला भाषा की दृष्टि से उदात्त अलंकृत गद्य का उत्कृष्ट निदर्शन है। हरिषेणकृत समुद्रगुप्त की प्रयाग-प्रशस्ति में प्रयुक्त दीर्घ-काय समासों, श्लेष तथा अनुप्रासादि अलंकारों एवं सरस पदविन्यास ने इसे प्रौढ़ एवं अलंकृत गद्य का प्राण बना दिया है—और अगर यह कहा जाए कि कालान्तर में रची जाने वाली सुबन्धु, बाण तथा दण्डी की प्रौढ़ रचनाएं भी सम्भवतः इनसे प्रभावित हुई थी तो इसमें कोई अत्युक्ति न होगी। बाण की शैली तो सचमुच ही इन दोनों शिलालेखों की शैली से बहुत मिलती जुलती है। वास्तव में देखा जाए तो इसी विकासोन्मुख अलंकृत गद्य शैली ने बाण तथा सुबन्धु आदि में पहुंचकर अपनी चरम-सीमा को छू लिया है।

इस प्रकार साहित्यिक गद्य में हमें दो प्रकार की शैलियों के दर्शन होते हैं—पहले प्रकार की गद्य-शैली स्वाभाविक, सरल तथा अनलंकृत शैली कही जाती है और

जिसका स्वरूप हमें पंचतंत्र, हितोपदेश, शुकसप्तति, सिंहासनद्वात्रिंशत्पुत्तलिका, वेतालपंचविंशतिका, भोजप्रबन्ध तथा पुरुष-परीक्षादि कृतियों में उपलब्ध होता है। और दूसरी ओर अलंकृत गद्य शैली का स्वरूप सर्वप्रथम हमें प्रशस्तियों तथा शिलालेखों में मिलता है जो अवान्तरकालीन संस्कृत गद्य काव्य के श्रेष्ठतम प्रतिनिधि—सुबन्धु तथा बाण की कृतियों में प्रतिबिम्बित है।

सुबन्धु दण्डी तथा बाण की प्रौढ़ तथा उत्कृष्ट अलंकृत गद्य शैली में रचे जाने वाले काव्यों से पूर्व भी कई काव्य लिखे गए होंगे जो सम्भवतः किसी कारणवश आज उपलब्ध नहीं, परन्तु उनका उल्लेख हमें यत्र तत्र अवश्य मिलता है। बाण स्वयं अपने पूर्ववर्ती गद्य लेखकों—भट्टार हरिचन्द्र, तथा आढ्यराज का नामोल्लेख करते हैं। उनके ग्रन्थ आज प्राप्य नहीं और इसी प्रकार उनके स्थिति काल के विषय में भी निश्चयपूर्वक हम चाहें कुछ न कह सकें पर इतना निश्चित है कि भट्टारहरिचन्द्र आदि की अलंकृत शैली से सुबन्धु तथा बाणादि कवि विशेषरूप से प्रभावित हुए थे। ३०० ई० पू० कात्यायन ने अपने वार्तिक में आख्यायिका का उल्लेख किया है जो सम्भवतः गद्य में ही रची गई थी। इसके अतिरिक्त पतञ्जलि के महाभाष्य में वासवदत्ता, सुमनोत्तरा तथा भैमरथी—इन तीन गद्य-ग्रन्थों का, जिनमें प्रथम दो आख्यायिकाएं हैं, तथा भोज के शृङ्गारप्रकाश में 'मोनवती' तथा 'सातकर्णीहरण'—दो गद्य कृतियों का उल्लेख हुआ है। इसी प्रकार वररुचि ने 'चारुमती' गद्य ग्रन्थ की रचना की और हाल के राजकवि पालित ने 'तरङ्गवती' की कथा लिखी, इसका संकेत हमें तिलकमञ्जरी' में मिलता है। जल्हण कवि—'सौमिल-रौमिल' को शूद्रक-कथा का प्रणेता मानते हैं।

इस प्रकार अलंकृत गद्य साहित्य का इतिहास भी एक विस्तृत पुरानी परम्परा लिए हुए है। पर वास्तव में देखा जाए तो इस परम्परा का सुविकसित, संवर्धित, सुसम्बद्ध तथा सर्वोत्कृष्ट रूप हमें सुबन्धु, दण्डी तथा बाण की ही कृतियों में उपलब्ध होता है। और वास्तव में यही तीनों कलाकार गद्य-जगत् के रत्नत्रयी भी माने जाते हैं।

पूर्व इसके कि हम इनके गद्य का विवेचन करें, हमें इस तथ्य की ओर ध्यान देना भी अत्यन्तावश्यक है कि साहित्य की इस उपरोक्त क्रमिक विकास परम्परा में यद्यपि साधारण अथवा अनलंकृत गद्य के विषय में हमें लक्षण-ग्रन्थों में कहीं भी उसके स्वरूप का विवेचन उपलब्ध नहीं होता परन्तु अलंकृत गद्य के स्वरूप के विषय में लक्षण ग्रन्थों में विस्तार से विवेचन हुआ है। अलङ्कारशास्त्र में इस अलंकृत गद्य के चार भेद

किए गए हैं। विश्वनाथ ने गद्य के इन्हीं चार भेदों का अपने साहित्यदर्पण[1] में इस प्रकार उल्लेख किया है।—

मुक्तक, वृत्तगन्धि, उत्कलिकाप्राय तथा चूर्णक—गद्य के ये चार प्रकार हैं। मुक्तक समासरहित गद्य रचना होती है यथा—'गुरुर्बचसि पृथुरसि' इत्यादि। वृत्तगन्धि में पद्य के अंश विद्यमान रहते हैं, अर्थात् इसमें छन्द का प्रयोग तो नहीं होता, अपितु छन्दों की पुट सी रहती है, यथा—'समरकण्डूलनिबिडभुजदण्डकुण्डलीकृतकोदण्डशिञ्जिनीटंकारोऽजागरितवैरिनगर' इत्यादि। इसमें कुण्डलीकृतकोदण्ड में अनुष्टुप् छन्द का रूप स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है अर्थात् इसमें अनुष्टुप् छन्द के लक्षण घटते तो हैं पर पूरा छन्द नहीं बनता। दीर्घ समास युक्त रचना को उत्कलिकाप्राय कहते हैं यथा—'अणिसविसुमरणिसिदविसरविदलिदसमरपरिनदपवरपरबल' इत्यादि। चूर्णक में इसके विपरीत बहुत छोटे छोटे समास होते हैं यथा—'गुणरत्नसागर जगदेकनागर, कामिनी मदनजनरञ्जन' इत्यादि।

विश्वनाथ से बहुत पूर्व दण्डी ने भी 'वृत्तबन्धोज्झितं गद्यम्'—से मिलती जुलती ही गद्य की परिभाषा दी है। उन्होंने अपद्यबद्ध रचना को गद्य कहा है।[2] पर दण्डी मुक्तक भेद को नहीं मानते और सम्भवतः इसीलिए उन्होंने अपने दशकुमारचरित में अधिकतर चूर्णक गद्य का प्रयोग किया है। उनके मतानुसार वैदर्भी रीति का आधार लेकर जो गद्य कोमलाक्षरों तथा अल्प समासों वाला होता है वह चूर्णक कहलाता है। दण्डी के गद्य में उत्कलिकाप्राय गद्य के भी दर्शन होते हैं। उनके अनुसार गौड़ी रीति पर आश्रित एवं जिसमें कठोराक्षर तथा समासों से संकीर्ण गद्य हो वह उत्कलिकाप्राय गद्य होता है। वृत्तगन्धि का प्रयोग दण्डी ने बहुत ही कम किया है। वृत्तगन्धि गद्य के कुछ भागों में दण्डी के अनुसार कहीं कहीं वृत्त के लक्षण स्पष्ट दृष्टिगोचर हो जाते हैं। इस प्रकार इन्हीं पारिभाषिक स्वरूप को लेकर चलने वाले अलंकृत गद्य के दर्शन हमें दण्डी की भान्ति सुबन्धु तथा बाण के ग्रन्थों में भी हो जाते हैं।

---

(1) वृत्तब (ग)न्धोज्झितं गद्यं मुक्तकं वृत्तगन्धि च।
मवेदुत्कलिका प्रायं चूर्णक च चतुर्विधम्॥
आद्यं समासरहितं वृत्तभागयुतं परम्।
अन्यद्दीर्घसमासाढ्यं तुर्यं चाल्पसमासकम्॥"
(साहित्यदर्पण—६-३३०-३३२)

(2) "अपादः पदसन्तानो गद्यम्"—काव्यादर्श—१-२३।

यद्यपि कुछ विद्वान् सुबन्धु तथा दण्डी के स्थितिकाल में मतभेद रखते हैं। कोई सुबन्धु को पहले का मानते हैं और कुछ लोग दण्डी को प्रथम स्थान देते हैं और कुछ तो सुबन्धु को बाण का भी परवर्ती सिद्ध करने में तत्पर दिखाई देते हैं इस प्रकार इन गद्य काव्यकारों का स्थिति काल चाहे कुछ भी रहा हो पर इनकी गद्य-साहित्य के प्रति की गई अमूल्य-सेवाओं को कोई भी झुठला नहीं सकता। इस पर भी कुछ विद्वानों ने अपने अकाट्य तथा प्रबल प्रमाणों के द्वारा यह निश्चित सा ही कर दिया है कि सुबन्धु ही सब से पहले हुए हैं।

पाँचवीं अथवा छठी शताब्दी के महाकवि सुबन्धु की कल्पना के आधार पर रची गई 'वासवदत्ता' गद्य साहित्य का एक उत्कृष्ट उदाहरण है, रचना-शैली का सरस तथा परिपक्व फल है। सुबन्धु की इस 'वासवदत्ता' का सम्बन्ध न तो पतञ्जलि द्वारा उल्लिखित वासवदत्ता आख्यायिका से ही है और न ही संस्कृत जगत् में ख्यात उदयन वासवदत्ता की कथा से ही। यह 'वासवदत्ता' सुबन्धु की मौलिक उद्भावना है। इस में उन्होंने राजा चिन्तामणि के पुत्र राजकुमार कन्दर्पकेतु तथा राजा शृंगारशेखर की राजकुमारी वासवदत्ता के प्रणय का सरल तथा सफल चित्रण प्रस्तुत किया है। स्वप्न में कन्दर्पकेतु वासवदत्ता के दर्शन करता है और फिर उसकी ओर आकृष्ट होकर उसकी खोज में चल पड़ता है एवं अन्त में बहुत सी बाधाओं के अनन्तर उसे हस्तगत कर लेता है। संक्षेप में इस काव्य का कथानक इतना सा ही है पर सुबन्धु ने इसमें अपनी वर्णनात्मक शैली के द्वारा वासवदत्ता तथा कन्दर्पकेतु के उत्कृष्ट रूप-सौन्दर्य वर्णन में, उनके वियोग तथा संयोग की अवस्थाओं के चित्रण में जिस अपनी श्लेष तथा विरोधाभासादि अलंकारों की छटा का, प्रकाण्ड पाण्डित्य-प्रदर्शन का, दीर्घकाय समासों, पौराणिक संकेतों तथा सूक्ष्म वर्णन प्रतिभा का जो चमत्कार दिखाया है वह सदा सर्वदा प्रेक्षणीय तथा सराहनीय है।

इस प्रकार वर्णनात्मक शैली में लिखा गया यह गद्य-काव्य-श्लेष, विरोधाभासादि अलंकारों तथा लम्बे लम्बे समासों के प्रयोग के कारण यद्यपि बहुत क्लिष्ट तथा जटिल बना दिया गया है और सम्भवतः इसी दुरूह शैली के कारण ही कहीं कहीं इस काव्य में सरसभावाभाव तथा कथावस्तु के प्रवाह में बाधा सी खटकने लग पड़ती है, पर फिर भी यह कृति अपने में एक प्रौढ़ कृति है और इसमें किया गया कवि का श्लेष निर्माण कौशल सर्वथा सराहनीय है। कथा वर्णन के साथ साथ सुबन्धु ने अपनी अलंकृत शैली का कौशल कलात्मक वर्णनों में भी सर्वत्र दिखाया है। इसके अतिरिक्त 'प्रत्यक्षर-श्लेषमय-प्रबन्ध' की रचना करने में सुबन्धु की सिद्धहस्तता तथा वैचक्षण्य की भला कौन अवहेलना कर सकता है। सुबन्धु कहीं कहीं तो

शब्दी तथा आर्थी क्रीड़ा के चक्र में इस प्रकार फंसे दिखाई देते हैं कि उन्हें फिर बस किसी और वस्तु का ध्यान ही नहीं रहता।

इस प्रकार सुबन्धु की गद्यशैली अपने में सर्वथा एक विलक्षण शैली है जिसकी अमिट छाप स्वतः ही पाठकों के हृदयों पर अंकित हुए बिना नहीं रहती। दूसरे इनके काव्य का कथानक सरस होने पर भी सुबन्धु ने प्रायः विविध वर्णनों की ओर ही अपना विशेष ध्यान केंद्रित रखा, भावाभिव्यक्ति की ओर बहुत कम। पर यह भी नहीं कहा जा सकता कि सुबन्धु ने केवल क्लिष्ट तथा कठोर गद्य का ही सृजन किया अपितु इनके काव्य में कहीं कहीं उत्कृष्ट भावप्रधान कोमल शब्द रचना के दर्शन भी हो जाते हैं। इसके अतिरिक्त उपरोक्त गद्य के चारों प्रकार—मुक्तक, वृत्तगन्धि, उत्कलिकाप्राय तथा चूर्णक भी सुबन्धु की कृति--'वासवदत्ता में सर्वथा प्राप्य हैं।

सुबन्धु के बाद दण्डी की तीन रचनाएं—काव्यादर्श, दशकुमारचरित तथा अवन्तिसुन्दरी कथा हमें उपलब्ध होती हैं। अन्तिम कृति के कर्तृत्व के विषय में विद्वानों में पर्याप्त मतभेद है। पर इस की कथा तथा 'दशकुमारचरित' के कथानकों में कई स्थलों पर समानता दृष्टिगोचर होती है अतः श्री एम. आर. कवि तो इसे ही दण्डी की तीसरी रचना घोषित करते हैं। अवन्तिसुन्दरी कथा एक अपूर्ण रचना है। इसी प्रकार कुछ विद्वान् दशकुमारचरित को भी पूर्णरूप से दण्डी की रचना स्वीकार नहीं करते। दशकुमारचरित का वर्तमान स्वरूप हमें तीन भागों में उपलब्ध होता है—पूर्व पीठिका जिसमें ५ उच्छ्वास हैं, मूल दशकुमारचरित जिसमें ८ उच्छ्वास हैं तथा अन्त में एक छोटी सी उत्तरपीठिका है। सो कुछ विद्वान् पूर्व-पीठिका तथा उत्तरपीठिका को दण्डी की स्वरचना नहीं मानते क्योंकि इन भागों में दण्डी जैसी सशक्त शैली के दर्शन दुर्लभ हैं। और फिर ऐसा विचार किया जाता है कि ये भाग बाद में किसी ने मूलग्रन्थ के साथ जोड़ दिए हैं।

कुछ भी हो, कोमल-कान्त एवं सरसपदावली में लिखा गया दशकुमारचरित तथा अलंकार-ग्रन्थ-'काव्यादर्श' निश्चय से ही दण्डी की गद्य साहित्य-जगत् को अमूल्य भेंट हैं। दशकुमारचरित की रचना करते समय दण्डी गुणाढ्य की बृहत्कथा से प्रभावित हुए होंगे—ऐसा मानने में हमें संकोच नहीं होना चाहिए। 'दशकुमारचरित' में राजवाहन तथा उसके अन्य मित्र राजकुमारों की देशदेशान्तरों में भ्रमण करने से प्राप्त हुए अपने अपने अनुभवों तथा दुस्साहसों की मनोहर कथा वर्णित है। इस प्रकार दशकुमारचरित में एक मुख्य कहानी के साथ अन्य कई कहानियां आबद्ध हैं पर खूबी की बात यह है कि उन कहानियों की इसमें एक शृंखला सी बन गई है। सम्पूर्ण रचना में कहीं भी विशृंखलता नहीं मिलती, कहीं अवरोध नहीं खलता।

वास्तव में देखा जाए तो दशकुमारचरित में दण्डी ने भिन्न भिन्न प्रकार के चरित्रों का मुग्धकारी चित्रण खींच कर सहृदयों को रिझाने का एक सफल प्रयास किया है। इसके अतिरिक्त दण्डी ने इस काव्य में तत्कालीन समाज में प्रचलित प्रायः समस्त दोषों को पाठकों के समक्ष अनावृत कर दिया है और सम्भवतः ऐसा करने में इसमें कहीं कहीं अश्लीलता भी आ गई है। अतः यदि हम दशकुमारचरित को उस समय की एक यथार्थवादी रचना कहें तो इसमें अत्युक्ति न होगी इसमें दण्डी ने हृदयहीन वेश्याओं की निर्लज्जता कामी-जनों के अवैध-प्रेम, दम्भियों तथा तपस्वियों की कपटता तथा धूर्तता का बहुत ही सजीव चित्रण हमारे समक्ष प्रस्तुत किया है। इस प्रकार कथावस्तु, चरित्रचित्रण, रचना कौशल तथा सरस एवं रोचक शैली की दृष्टि से यदि हम इस कृति की परख करें तो यह रचना अपने में एक अद्वितीय तथा उत्कृष्ट रचना सिद्ध होगी।

दण्डी की शैली सुबन्धु तथा बाण की शैली की तरह जटिल, कृत्रिम तथा बोझिल सी न होकर स्वाभाविक, सरस, स्पष्ट तथा अभिव्यञ्जनात्मक प्रायः है। दूसरे, उनकी वर्णन-शैली सुबन्धु की प्रत्यक्षरश्लेषमयी तथा अलंकारों के आडम्बरों से आक्रान्त न होकर वैदर्भी शैली पर आधारित होने के कारण अत्यन्त सरल तथा प्रसाद गुणमय है। इस प्रकार देखा जाए तो श्रुतिसुखद अनुप्रास तथा यमकादि अलंकारों के प्रयोग, भावाभिव्यञ्जक शब्दावली के विन्यास तथा पद-लालित्य के सफल निर्वाह द्वारा दण्डी ने अपने काव्य को बहुत ही रोचक बना दिया है। दण्डी का पदलालित्य तो सर्वत्रसिद्ध ही है - 'दण्डिनः पदलालित्यम्'। और सम्भवतः आपके इसी पदलालित्य के कारण ही आपके प्रशंसकों ने केवल आपको ही कवि माना है—'कविर्दण्डी कविर्दण्डी कविर्दण्डी न संशयः।' और कुछ आलोचक तो आपको वाल्मीकि के स्थानापन्न के रूप में मानते हैं। इस प्रकार दण्डी की लोकप्रियता स्वतः सिद्ध है।

दण्डी के अनन्तर अलंकृत गद्य-शैली का विकसित, प्रौढ़, सरस तथा स्निग्ध रूप हमें बाण की कृतियों—हर्षचरित तथा कादम्बरी में उपलब्ध होता है। बाणभट्ट की दोनों भावपूर्ण, रसमय रचनाएं, संस्कृत गद्य काव्य-जगत् के दो बेजोड़ रत्न हैं, गद्य काव्य कला के उत्कृष्टतम उदाहरण हैं। इनके अतिरिक्त 'चण्डीशतक' को भी बाण की रचना माना जाता है। पर बाण की पहली दो कृतियां ही इनकी लोकप्रियता तथा इनके एक सफल कलाकार होने की द्योतक हैं।

'हर्षचरित' एक ऐतिहासिक काव्य माना जाता है और बाण ने इसे स्वयं आख्यायिका का नाम दिया है। इस प्रकार यह एक शुद्ध ऐतिहासिक कृति ही नहीं अपितु इसमें कल्पना का रंग भी चढ़ा हुआ है। इसके आठ उच्छ्वासों में बाण ने अपनी आत्मकथा तथा महाराज हर्षवर्धन के जीवन सम्बन्धी बहुत सी सामग्री प्रस्तुत

की है। इनकी दूसरी कृति 'कादम्बरी' पूर्वार्द्ध तथा उत्तरार्द्ध —दो भागों में उपलब्ध होती है जो पूर्णतः काल्पनिक है तथा चन्द्रापीड़ और पुण्डरीक एवं कादम्बरी तथा महाश्वेता के तीन तीन जन्म की प्रणय कथा पर आधारित है। विद्वान् आलोचक केवल पूर्वार्द्ध को ही बाण की रचना स्वीकार करते हैं और उत्तरार्द्ध को बाण के पुत्र भूषण अथवा पुलिन्द द्वारा लिखित मानते हैं।

बाण का गद्य—वैदर्भी तथा गौड़ी के समन्वयात्मक रूप पर आश्रित पाञ्चाली शैली का सर्वश्रेष्ठ गद्य माना जाता है। सुबन्धु का गद्य जहां भावहीन तथा रूक्ष सा है वहां बाण का गद्य भावपूर्ण तथा सरस है। बाण का सजीव प्रकृति चित्रण भावना तथा कल्पना का विचित्र सामञ्जस्य, प्रणय उल्लेख तथा विरह वर्णन, शब्द सम्पत्ति, स्वाभावोक्ति तथा अलंकारप्रियता एवं सहज स्वाभाविक तीव्र पर्यवेक्षण शक्ति सर्वथा प्रशंसनीय है।

इन रचनाओं में भी यद्यपि वर्णनों की बहुलता पाई जाती है पर बाण की इसमें यह विशेषता है कि उन्होंने पद-योजना सर्वथा पूर्णरूप से भावानुकूल तथा प्रसंगानुकूल की है। आपकी ये दोनों कृतियां अपने में पूर्ण हैं और सम्भवतः इसीलिए बाण को सर्वश्रेष्ठ गद्य लेखक माना गया है और इसके साथ ही उनकी प्रशंसा में कही गई यह उक्ति —'बाणोच्छिष्टं जगत् सर्वम्'—भी अपने आप चरितार्थ हो जाती है।

इन विशुद्ध गद्य काव्यों के अतिरिक्त हमें चम्पू काव्यों में भी गद्य के दर्शन होते हैं। चम्पू-काव्य यद्यपि गद्य-पद्य मिश्रित कृतियां हैं तो भी इनका गद्य अलंकृत गद्य शैली की कोटि में रखा जा सकता है। चम्पूकाव्यों में त्रिविक्रमभट्ट का 'नल-चम्पू', भोज का 'रामायण-चम्पू' और वेङ्कटाध्वरि का 'विश्वगुणादर्शचम्पू' विशेष उल्लेखनीय हैं।

इन चम्पू काव्यों के अतिरिक्त बाण के पश्चात् भी गद्य काव्य लिखा जाता रहा, चाहे उसमें उदात्त प्रतिभा के दर्शन बहुत ही कम होते हैं और इन काव्यों पर अधिकतर दण्डी तथा बाण की शैली की छाप स्पष्ट दिखाई देती हैं, तो भी इस परम्परा की रचनाएं हमें ईसा की १८वीं १९वीं शती तक उपलब्ध होती हैं।

यद्यपि बाण के परवर्ती कुछ कवियों की कृतियां हमें आज प्राप्त नहीं होतीं, पर जो उपलब्ध हुई हैं उनमें धनपाल (१००० ई०) की 'तिलकमञ्जरी'—जिसमें तिलकमञ्जरी तथा हरिवाहन समरकेतु की प्रणयगाथा चित्रित है—विशेषोल्लेखनीय है। इस पर बाण की 'कादम्बरी' का प्रभाव स्पष्ट लक्षित होता है। यही नहीं धनपाल ने तो इसमें कादम्बरी का अनुकरण करने का प्रयास किया है, यद्यपि उसे इसमें पूर्ण सफलता नहीं मिली। इसके अतिरिक्त तत्कालीन भारत में प्रचलित—चित्रकला प्रस्तर-कला तथा अन्य विविध कला-कौशलों का भी 'तिलकमञ्जरी' में बड़ा सजीव वर्णन हुआ है। इस कारण से इस कृति का महत्व और अधिक बढ़ गया है।

ओड्यदेव वादीभसिंह (१००० ई०) की 'गद्य चिन्तामणि' भी एक सफल तथा श्रेष्ठ कृति मानी जाती है। इसमें ११ लम्बक हैं और जीवन्धर नामक एक राजकुमार की जीवन गाथा इसमें वर्णित है जो बाद में सन्यासी बन गया था। क्योंकि इसमें जीवन्धर को जो उपदेश दिया गया है वह कादम्बरी के चन्द्रापीड़ को शुकनासोपदेश के अनुकरण पर हुआ है अत: यह विश्वास किया जाता है कि इसकी कथावस्तु भी प्राय: 'कादम्बरी' के ही अनुरूप है और ऐसा भी प्रतीत होता है कि वादीभसिंह ने अपनी इस कृति में बाण की शैली को ही अपनाया है।

इसी समय ११वीं शताब्दी में सोड्ढल ने भी 'उदयसुन्दरी' नामक एक गद्य काव्य की रचना की थी। १५वीं शताब्दी में वामनभट्ट बाण द्वारा रचित 'वेमभूपाल-चरित' की रचना भी 'हर्षचरित' के अनुकरण पर ही हुई प्रतीत होती है। 'वेमभूपाल-चरित' वीरनारायणचरित नाम से भी प्रसिद्ध है। इसमें वामनभट्ट बाण ने सम्भवत: कालिदास के रघुवंश की अनुकृति में तथा बाण के हर्षचरित से प्रभावित होकर अपने आश्रय दाता वेमभूपाल नृपतियों की वंशावलि का उल्लेख किया है। अनन्तशर्मा (१६५० ई०) ने 'मुद्राराक्षसपूर्वसंकथानक' नामक एक गद्य रचना भी की थी जो सम्भवत: विशाखवदत्त के नाटक मुद्राराक्षस की कथा पर आधारित है।

इस प्रकार बाण के बाद के गद्य में कोई विशेष मौलिकता नहीं दिखाई देती, अत: हम इस गद्य को ह्रासोन्मुखी गद्य कह सकते हैं।

ग्यारहवीं शताब्दी के बाद में लिखा जाने वाला गद्य-काव्य आधुनिक काल का गद्य काव्य माना जाता है। क्योंकि इसमें प्राचीन गद्य-काव्यों जैसी सजीवता तथा सरसता नहीं मिलती। इस काल की सर्वश्रेष्ठ कृति अम्बिकादत्त व्यास (१८५८-१९०० ई०) का 'शिवराजविजय' है। शिवा जी के जीवन-चरित पर गद्य शैली में लिखा गया यह एक ऐतिहासिक उपन्यास है। इसमें क्योंकि व्यास ने प्राचीन तथा आधुनिक शैलियों का विचित्र समन्वय प्रस्तुत किया है इस कारण यह काव्य मनोरम शैली का एक उत्कृष्ट निदर्शन है। इतिहास तथा कल्पना का इसमें विचित्र संमिश्रण प्राप्त होता है। रोचक तथा चुस्त संवाद, सजीव तथा सरस वर्णन-दृश्य, कोमल एवं शिष्ट शब्दरचना तथा ओज, प्रसाद और माधुर्यादि गुणों एवं व्यंग्य तथा हास्य रस से ओत-प्रोत इनकी यह कृति आधुनिक युग की सर्वश्रेष्ठ रचना मानी जाती है। मुगलदरबार के ठाठ-बाठ, मराठों के शिवरों तथा उन द्वारा किलों के घेरों का चित्रण इस में बहुत ही लासानी रूप में हुआ है। इसी कारण से कई विद्वान् तो इन्हें 'अभिनव बाण' कहते हैं।

अम्बिकादत्तव्यास के अनन्तर 'प्रबन्धमञ्जरी' के नाम से संगृहीत पण्डित हृषीकेश-भट्टाचार्य के व्यंगशैली में लिखे गए निबन्ध आधुनिक युग को संस्कृत साहित्य की एक

45231

अमूल्य देन है क्योंकि संस्कृत साहित्य में यह कृति लेखनकला की एक नवीन विद्या का प्रयोग है। प्राचीन काल में हमें निबन्ध की कोई भी संस्कृत रचना उपलब्ध नहीं होती। यद्यपि हृषीकेषभट्टाचार्य की शैली बाण से प्रभावित दिखाई देती है तो भी इसमें विशेष प्रवाह है, गति है।

इसी प्रकार 'कथामुक्तावली' के नाम से प्रसिद्ध तथा सरल और मधुर संस्कृत भाषा में रचित पण्डिता क्षमाराव की कहानियां भी आधुनिक युग के संस्कृत गद्य साहित्य को एक सुन्दर भेंट है। आज के युग के प्रगतिवाद का प्रतिबिम्ब इन कहानियों में सर्वत्र झलकता है। इन कहानियों की भाषा बड़ी ही मीठी, प्रभावशाली तथा आकर्षक है। प्रसाद तथा माधुर्य गुण इनकी शैली की विशिष्टिता है।

इनके अतिरिक्त आधुनिक युग के कई अन्य गद्य लेखकों ने भी अपनी कृतियों द्वारा संस्कृत मां भारती को समृद्ध तथा अलंकृत किया है। इनमें पण्डित मेधाव्रत कविरत्न का—'कुमुदिनी चन्द्र' तथा श्रीमती राजम्मा का 'चन्द्रमौली' उपन्यास एवं श्री नारायण शास्त्री की 'विद्वच्चरित्र-पञ्चकम्' श्री व्यासराय शास्त्री की 'कालिदास नाट्य कथा मञ्जरी', पं० टी० के० गणपति शास्त्री की 'सेतुयात्रानुवर्णनम्' तथा म० म० पं० रामावतार शर्मा की 'भारतानुवर्णनम्' विशेष उल्लेखनीय कृतियां हैं।

इसके अतिरिक्त आधुनिक भाषाओं की पत्रिकाओं से संख्या में कुछ कम होती हुई भी संस्कृत पत्रिकाओं में गद्य का अत्यन्त प्रचुर प्रयोग गद्य की समृद्धि तथा उज्ज्वल भविष्य का द्योतक है। इन पत्रिकाओं में—मञ्जूषा, भारती, संस्कृतम्, भविष्यम् सरस्वती-सुषमा, ब्रह्मविद्या, भारतोदय, दिव्यज्योतिः आदि के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। इन पत्रिकाओं में आज के युग की बढ़ती हुई परिस्थितियों के अनुरूप भाषा का कसा हुआ तथा स्पष्ट, भाव बोधक प्रयोग, संस्कृत के पुनर्प्रचार और प्रसार की दिशा में भी अत्यन्त सहायक है।

———

: २ :

गद्यं कवीनां निकषं वदन्ति

गद्य कवियों की कसौटी है, इस कथन में नितान्त सत्यता प्रतीत होती है। क्योंकि कविता तो प्रायः भावावेश में ही लिखी जाती है, शृंगार रस वर्णन में कोमलकान्त पदावली ही निर्मित होगी, वीररस के विराट शब्द उसमें प्रवेश नहीं कर सकते और करुणा के चित्रण में भयानक शब्दों का आगमन असम्भव है क्योंकि कवि उसी मुद्रा में बैठा है। परन्तु गद्य लिखते समय मनुष्य की प्रायः गम्भीर मुद्रा ही हुआ करती है, उसमें वीररस के उद्रेक के लिए तदनुसार शब्दों का चयन, शृंगार-वर्णन के समय कोमल सुकुमार शब्दमाला ग्रथित करना और करुण दृश्य के वर्णन में करुण रस का उद्रेक करना विशेष महत्व रखता है।

इस तथ्य की पुष्टि के लिए समूचे विश्वसाहित्य में सर्वथा सुन्दर और सरल उदाहरण बाण की शैली का है जैसे किसी विद्वान् ने लिखा है—

"श्लेषे केचन शब्दगुम्फविषये केचिद्रसे चापरेऽ-
लङ्कारे कतिचित्सदर्थविषये चान्ये कथावर्णने।
आः सर्वत्र गभीरधीरकविता विन्ध्याटवीचातुरी-
सञ्चारी कविकुम्भिकुम्भभिदुरो बाणस्तु पञ्चाननः॥"

बाण के समय में गद्य का आदर्श यह था—'ओजः समासभूयस्त्वमेतद् गद्यस्य जीवितम्' अर्थात् एक तो ओजगुण तथा दूसरे समासों की अधिकता। लम्बे लम्बे समासों और श्लेष के अधिक प्रयोग के कारण विदेशी विद्वानों ने बाण की कटु आलोचना भी की। जैसे वेबर ने कहा कि "बाण का गद्य एक भारतीय जंगल है जहाँ बड़े-बड़े भयंकर पशुओं से पाठक को मुठभेड़ करनी पड़ती है; उनसे यदि वह बच जाए तो रस का स्वाद ले सकता है।"

परन्तु बाण की दृष्टि से नव-नव कल्पनाएँ, उज्ज्वल वर्णों का प्रयोग, सरल श्लेष और सुगमता से प्रतीति होने योग्य रस और विकट वर्णों की योजना उत्कृष्ट रचना के लिए आवश्यक है—

नवोऽर्थो जातिरग्राम्या श्लेषोऽक्लिष्टः स्फुटो रसः ।
विकटाक्षरबन्धश्च कृत्स्नमेकत्र दुष्करम् ॥८॥[1]

ये सभी विशेषताएँ बाण के काव्य में खरी उतरती है। इसका पता हमें निम्नलिखित उद्धरणों से मिलता है—

(i) प्रकटकलङ्कमुदयमानं विशङ्कटविषाणोत्कीर्णपङ्कसङ्करशङ्करशकुरशक्करककुदकूटसङ्काशमकाशताकाशे शशाङ्क मण्डलम् ।[2]

(ii) "कुलिशशिखरखरनखरप्रचयप्रचण्डचपेटापाटितमत्तामातङ्गोत्तमाङ्गमदच्छटाच्छुरितचारुकेसरभारभास्वरमुखे केसरिणि ।[3]

(iii) 'पितृवधरुषितरामरागरचितः पृथुविकटकातंवीर्यासकूटकुट्टाककुठारतुण्डतष्टदुष्टक्षत्रियकण्ठकुहररुधिरकुल्याप्रणाल सहस्रपूरितो ह्रद इव दूररोधी रौधिरः ।[4]

इस प्रकार से ये गद्यांश अवसरानुकूल शब्दचयन और विकटाक्षरबन्ध के सुन्दर उदारण हैं। प्रत्येक शब्द अपनी ध्वनि देता और उछलता-कूदता दिखाई देता है यही विकटता की परिभाषा है --'विकटत्वं पदानां नृत्यप्रायत्वम्'।

बाण की सरल शैली का उदाहरण भी जरा देखिये :—

(i) "अचिन्त्यो हि महात्मनां प्रभावः। बहुप्रकाराश्च संसारवृत्तयः। चित्रं च दैवम्। आश्चर्यातिशययुक्ताश्च तपः सिद्धयः। अनेकविधाश्च कर्मणां शक्तयः।[5]

(ii) "लुप्तविवेको यौवनमदो मदयति मदनो वा। यतस्तिमिरोपहतेव यूनां दृष्टरल्पमपि कालुष्यं महत्पश्यति। स्नेहलवोपि वारिणेवयौवनमदेन दूर विस्तार्यते।"[6]

परन्तु किसी आलोचक ने बाण पर यह आरोप लगाया है कि बाण की प्रतिभा का जैसा विकास गद्य में हुआ, वैसा पद्य में नहीं—

"यादृक् गद्यविधौ बाणः, पद्यबन्धे न तादृशः।"

परन्तु हर्षचरित के आरम्भ में दिए गए श्लोक इस उक्ति की शिथिलता सूचित

---

1. हर्ष. चरि. प्रथम उच्छ० P. I. P.V. Kane Ist Ed. 1918.
2. हर्ष. च. षष्ठ ३०, P. 38. P. V. Kane Ist Ed. 1918.
3. हर्ष. च. षष्ठ ३० P. 40. P. V.Kane Ist Ed. 1918.
4. हर्ष च. अष्टम् ३० P. 86. P. V. Kane Ist Ed. 1918.
5. कादम्बरी P. 175 Bombay Ed. 1900.
6. कादम्बरी P. 199. Bombay Ed. 1900.

करते हैं। सुकुमार पद-रचना बाण की निजी विशेषता है। वह पद्यों में भी दृष्टि-गोचर होती है। पांचाली रीति इसीलिए उनकी रचना में सर्वाधिक बतलाई जाती है। कादम्बरी का यह पद्य कितना भाव-व्यंजक है —

'स्फुरत्कलालापविलासकोमला, करोति रागं हृदि कौतुकाधिकम्।
रसेन शय्यां स्वयमभ्युपागता, कथा जनस्यभिनवा वधूरिव'॥[7]

पुण्डरीक का यह संदेशपद्य—

"दूरं मुक्तालतया बिससितया विप्रोलोम्यमानो मे।
हंस इव दर्शिताशो मानसजन्मा त्वया नीतः॥[8]

कितना भावव्यंजक है।

बाण रससिद्ध कवि हैं। साहित्य में रस को ही सर्वप्रमुख स्थान दिया गया है, अतः उसका परिपाक करने में बाण ने बड़े कौशल से काम लिया है। उन की दोनों रचनाओं में जहां तहां अनेक रसों का परिपाक दृष्टिगोचर होता है। कादम्बरी क्योंकि एक प्रणयकथा है उसका मुख्य रस करुण-विप्रलम्भ है। इसके अतिरिक्त चन्द्रापीड़ के जन्म-प्रसंग में वात्सल्य की अत्यन्त आकर्षक व्यंजना हुई है। पाठशाला से लौटते हुए चन्द्रापीड़ को देखने के लिए उत्सुक उज्जयनी की नागरिक-रमणियों के परिहास में, गर्भवती विलासवती के साथ राजा तारापीड़ा के नर्मालाप में तथा बूढ़े द्रविड़ धार्मिक के प्रसङ्ग में हास्य का अच्छा परिपाक मिलता है। कीथ के विचार से तो कादम्बरी की अधिकांश कथा तोते के मुँह से कहला कर भी बाण ने परिहास ही किया है। हर्षचरित में स्कन्दगुप्त के वर्णन 'नृपवेशदीर्घं नासावंश दधानः' कहला कर भी स्कन्दगुप्त की लम्बी नाक पर फबती ही कसी है। हर्ष-चरित के प्रथम उच्छ्वास में सरस्वती और दधीचि के प्रणय का प्रसंग संभोग शृंगार का अच्छा स्थल है। प्रभाकरवर्धन की रुग्णावस्था से लेकर राज्यवर्धन के लौटने तक सारा प्रसंग करुणरस और बीच बीच में भयानक रस की व्यंजना से भरा पड़ा है। महाश्वेता-प्रसंग में तथा गन्धर्वलोक के वर्णन में अद्भुत रस की अपूर्व छटा है। संभव है वहाँ के कल्पनातीत वर्णन को देखकर ही किसी ने कहा था— 'बाणोच्छिष्टं जगत्सर्वम्।'

राज्यवर्धन और हर्षवर्धन की उक्तियों में तथा सिंहनाद के उपदेश में वीररस का उत्तम परिपाक है। वहीं पर रौद्ररस की भी व्यंजना है। शांत रस भी जहां तहां अल्पमात्रा में ही सही पर व्यक्त अवश्य पाया जाता है।

बाण के गद्य की तुलना यदि हम पूर्ववर्ती कवियों से करें तो हमें यह कहना

7. काद० श्लोक, द. P. 2. Bombay Ed. 1900.
8. काद० 20. P. 149 Bombay Ed. 1900.

होगा कि उसका गद्य न तो सुबन्धु की तरह प्रत्यक्षरश्लेषमय है और न दण्डी की तरह सर्वत्र पदलालित्य से परिपूर्ण। उसमें स्थलानुरूप दोनों गुण मिलते हैं अर्थात् गद्यशैली की पराकाष्ठा को हम बाण में देख सकते हैं। जब वे शब्दों का अकाण्ड ताण्डव प्रस्तुत करते हैं तो मानों वाणी अधिक प्रगल्भता प्राप्त करने के लिए साक्षात् बाण बन जाती है जैसे शिखण्डिनी ने प्रागल्भ्य के लिए शिखण्डी का रूप धारण किया था जिसका वर्णन हमें महाभारत के अनुशासनपर्व में मिलता है। किसी आलोचक ने ठीक ही कहा है—

"जाता शिखण्डिनी प्राक् यथा शिखण्डी तथावगच्छामि।
प्रागल्भ्यमधिकमाप्तुं वाणी बाणो बभूवेति॥"

और जब वे ललित-मधुर शब्दों का प्रयोग करते हैं तो वाणी मानों एक रसपेशल सुन्दर तरुणी के समान नाच गा कर संसार के मन का हरण करने लगती है—

"रुचिरस्वरवर्णपदा रसभाववती जगन्मनो हरति।
सा किं तरुणी? नहि नहि वाणी बाणस्य मधुरशीलस्य॥"

———

: ३ :

संस्कृत साहित्य में कथा एवं आख्यायिका

अग्निपुराण[1] में गद्य के—आख्यायिका, कथा, खण्डकथा, परिकथा तथा कथनिका आदि पांच भेदों का उल्लेख तो अवश्य मिलता है पर प्राचीन आलंकारिकों के मतानुसार संस्कृत साहित्य में गद्य के प्रधानतः दो प्रकार ही उपलब्ध होते हैं—कथा तथा आख्यायिका। इन दोनों—कथा तथा आख्यायिका—की चर्चा अत्यन्त प्राचीन काल से संस्कृत साहित्य में होती चली आई है। यद्यपि बहुत सा साहित्य काल-कवलित हो गया है तो भी इस साहित्य की प्राचीनता में कोई मत भेद नहीं। इस बात की पुष्टि हमें पाणिनी की 'अष्टाध्यायी' के —'**ऋतूक्थादि सूत्रान्तट्ठक**'—सूत्र पर ३०० ई० पूर्व में कात्यायन द्वारा किए गए वार्तिक में उल्लिखित आख्यायिका द्वारा अवश्य हो जाती है।[2] पतञ्जलि के महाभाष्य में भी आजकल अनुपलब्ध—वासवदत्ता, सुमनोत्तरा तथा भैमरथी—इन तीन आख्यायिकाओं का स्पष्ट उल्लेख हुआ है।[3] इसके अतिरिक्त पतञ्जलि ने यवक्रीत, पियङ्गव तथा ययाति आदि आख्यानों का भी अपने महाभाष्य में उल्लेख किया है। जहां तक कथा का सम्बन्ध है, इसके विषय में रोमिल-सोमिल की 'शुद्रक-कथा' तथा वररुचि की 'चारुमति' की प्राचीन काल में पर्याप्त ख्याति थी।

इस प्रकार गद्य की ये दोनों विधाएं भामह तथा दण्डी आदि आचार्यों से पूर्व विद्यमान थीं। और सम्भवतः इन्हीं कृतियों के आधार पर विभिन्न आचार्यों ने अपने अपने लक्षण-ग्रन्थों में इनके भिन्न-भिन्न लक्षण प्रस्तुत किए हैं। यद्यपि कुछ आचार्यों ने कथा तथा आख्यायिका में विशेष पार्थक्य स्थापित करने के प्रयत्न तो अवश्य किए हैं पर इन दोनों में वास्तविक भेद क्या है, इस विषय में किसी भी आचार्य का मत

---

1 द्रष्टव्य अग्निपुराण (३६६।१२)

2 '**आख्यानाख्यायिकेतिहासपुराजेन्यष्टग् वक्तव्यः**'—वार्त्तिक।

3 '**अधिकृत्य कृते ग्रन्थे बहुलं लुम्वक्तव्यः। वासवदत्ता सुमनोत्तरा। न च भवति। भैमरथी**'—महाभाष्य—३—८७।

अन्तिम नहीं माना जा सकता। और ऐसा होना उचित भी है, क्योंकि वास्तव में देखा जाये तो मूलतः इनमें हमें कोई विशेष अन्तर भी तो नहीं दिखाई देता। और फिर प्रायः किसी भी संस्कृत गद्य लेखक ने इनके भेदक तत्वों का अक्षरशः निर्वाह, आज उपलब्ध होने वाली अपनी किसी भी कृति में नहीं किया।

जहां तक कथा तथा आख्यायिका की परिभाषा का सम्बन्ध है, सर्वप्रथम अग्नि-पुराण में हमें इन के लक्षण उपलब्ध होते हैं। अग्निपुराण के अनुसार[4] आख्यायिका में 'कर्तृ-वंश प्रशंसा व वर्णन का गद्य में होना अनिवार्य है। अथवा इस में नायक के चरित्र तथा वंश का विस्तारपूर्वक वर्णन एवं प्रशंसा होनी चाहिए। कन्याहरण, संग्राम, नायक-नायिका का परस्पर वियोग तथा नायक की अन्य विपत्तियों का वर्णन होना चाहिए। रीतियों तथा वृत्तियों का समुचित प्रयोग अति प्रदीप्त शैली में होना चाहिए। विषय उच्छ्वास या परिच्छेद में विभाजित होना चाहिए। इसके अतिरिक्त वक्त्र एवं अपरवक्त्र नामक छन्दों का प्रयोग तथा चूर्णक शैली के गद्य का बाहुल्य भी आख्या-यिका में होना अनिवार्य है।

इसके विपरीत कथा के आरम्भ में कवि के वंश का संक्षिप्त वर्णन अथवा प्रशंसा कुछ श्लोकों में होनी चाहिए। मुख्य कथा का प्रारम्भ करने वाली दूसरी गौण कथा भूमिका रूप (पताका-स्थान) में कही जानी चाहिए। कन्याहरण, संग्राम आदि आख्या-यिका के मुख्य विषयों का इस में अभाव होता है। इसके अतिरिक्त कथा में परिच्छेद भी नहीं होते, पर हां, कहीं कहीं लम्बक अवश्य रहता है और प्रत्येक गर्भ स्थान में चतुष्पदी पद्यों का प्रयोग भी सम्भव है।[5]

---

4 "कर्तुर्वंशप्रशंसा स्याद् यत्र गद्येन विस्तरात्।
कन्याहरणसंग्राम विप्रलम्भविपत्तयः॥
भवन्ति यत्र दीप्ताश्च रीतिवृत्ति प्रवृत्तयः।
उच्छ्वासैश्च परिच्छेदो यत्र सा चूर्णिकोत्तरा।
वक्त्रं चापरवक्त्रं वा यत्र साऽऽख्यायिका मता॥"
(अग्नि० ३३६।१३–१५।)

5 "श्लोकैः स्ववंशं संक्षेपात् कविर्यत्र प्रशंसति।
मुख्यार्थस्यावताराय भवेद् यत्र कथान्तरम्॥
परिच्छेदो न यत्र स्याद् भवेद् वा लम्बकैः क्वचित्।
सा कथा नाम तद्गर्भे निबध्नीयात् चतुष्पदीम्॥"
(अग्नि० ३३६।१५–१७।)

यद्यपि कुछ संस्कृत साहित्यकारों ने अग्निपुराणोक्त कथा तथा आख्यायिका के इन लक्षणों को स्वीकार तो अवश्य किया है पर इसके साथ ही साथ कथा तथा आख्यायिका में और अधिक अन्तर बतलाने के हेतु इन उक्त लक्षणों में समयानुसार कई परिवर्तन भी कर दिये हैं। ऐसे आचार्यों में भामह तथा रुद्रट के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। परन्तु दण्डी ने इन में विशेष अन्तर मानना उचित नहीं समझा। वे कथा तथा आख्यायिका में केवल नाम का भेद मानते हैं अतः उन्होंने अपने से पूर्व आचार्यों द्वारा प्रस्तुत कथा और आख्यायिका के लक्षणों का विशेषरूप से खण्डन किया है।

कथा तथा आख्यायिका में विशेष अन्तर मानने वाला प्राचीनतम सिद्धान्तवादी भामह को ही माना गया है। अग्निपुराण के अनुरूप ही भामह ने इन दोनों प्रकार की गद्य-विधाओं में कई प्रकार से अन्तर माना है। भामह के मतानुसार[6] कथा तथा आख्यायिका में से आख्यायिका एक ऐसी ऐतिहासिक साहित्यिक रचना है जिस में कथावस्तु वास्तविक होती है और इसके विपरीत कथा की कथावस्तु कवि-कल्पना प्रसूत। इसके अतिरिक्त आख्यायिका में श्रुति मधुर शब्द चयन होता है और गद्य प्रकृति के अनुकूल। इसी प्रकार आख्यायिका वह रचना है जिस में वक्त्र और अपरवक्त्र छन्दों का समुचित समन्वय हो तथा ये छन्द भविष्य में घटने वाली घटनाओं की ओर समयानुसार संकेत करते हों। आख्यायिका के विषय-विवेचन में कन्याहरण, संग्राम, नायक, और नायिका का परस्पर विप्रलम्भ, नायक के अन्य कष्ट तथा अन्त में नायक की विजय—इन सब का यथोचित वर्णन हो। नायक द्वारा अपने कृत्यों का स्वयं वर्णन किया गया हो तथा विषय क्रम को कई भागों में विभाजित किया गया हो जिन्हें

---

6 "प्रकृतानुकूलश्राव्यशब्दार्थपदवृत्तिना (ता)।
गद्येन युक्तोदात्तार्था सोच्छ्वासाऽऽख्यायिका मता॥
वृत्तमाख्यायते तस्यां नायकेन स्वचेष्टितम्।
वक्त्रं चापरवक्त्रं च काले भाव्यर्थशंसि च॥
कवेरभिप्रायकृतैरङ्कैः कैश्चिदङ्किता।
कन्याहरणसंग्रामविप्रलम्भोदयान्विता॥
न वक्त्रापरवक्त्राभ्यां युक्ता नोच्छ्वासवत्यपि।
संस्कृतं संस्कृता चेष्टा कथाऽपभ्रंशभाक्तथा॥
अन्यैः स्वचरितं तस्यां नायकेन तु नोच्यते।
स्वगुणाविष्कृतिं कुर्यादभिजातः कथं जनः॥"

(काव्यालङ्कार—१।२५-२९)

उच्छ्वास कहा जाता है । और फिर आख्यायिका की रचना केवल संस्कृत मे ही होती है ।

दूसरी ओर कथा में वक्त्र और अपरवक्त्र छन्द नहीं होते । उच्छ्वासों में उसे विभाजित नहीं किया जाता । नायक अपनी कथा स्वयं न कह कर किसी अन्य व्यक्ति द्वारा कहलवाता है । और फिर कथा संस्कृत, प्राकृत या अपभ्रंश—किसी में भी लिखी जा सकती है ।'

भामह द्वारा प्रस्तुत इन लक्षणों की यदि समीक्षा की जाए तो इतनी बात तो बड़ी सुगमता से कही जा सकती है कि भामह द्वारा गद्य के कथा तथा आख्यायिका—ये दो भेद मुख्यत: शैली तथा वक्ता की दृष्टि से किए गए प्रतीत होते हैं । और दूसरे यह भी कहा जा सकता है कि भामह से पूर्व ही कथा तथा आख्यायिका की सत्ता विद्यमान थी । इसके अतिरिक्त और कोई अन्य विशेष तथ्य हमें भामह के इन लक्षणों से उपलब्ध नहीं होता ।

इस प्रकार हम यह कह सकते हैं कि भामह के इस कथा तथा आख्यायिका के वर्गीकरण को उनके बाद के आलंकारिकों तथा कवियों में से किसी ने भी पूर्ण रूप से स्वीकार नहीं किया, अत: उनका यह मत कोई विशेष महत्व नहीं रखता । और फिर दण्डी के समय तक भामह द्वारा प्रस्तुत—कथा तथा आख्यायिका की यह भेद-रेखा तो बिल्कुल ही समाप्त प्राय:सी हो गई तभी तो हम देखते हैं कि कालान्तर के कवियों ने इन रूढ़-नियमों की ओर कोई विशेष ध्यान नहीं दिया ।

यद्यपि डा० कीथ आदि कुछ विद्वान् भामह को दण्डी का परवर्ती मानते हैं पर वास्तव में देखा जाये तो भामह दण्डी से पूर्ववर्ती ही हैं, परवर्ती नहीं । और सम्भवत: दण्डी ने भामह के ही कथा और आख्यायिका के इन लक्षणों का पूर्णतया खण्डन करते हुए उनकी कटु आलोचना की है । अगर हम ऐसा न भी माने तो भी इतना तो निश्चित ही है कि दण्डी ने भामह की नहीं तो अपने किसी अन्य पूर्ववर्ती आचार्य की तो अवश्य ही आलोचना की है । दण्डी के मतानुसार कथा एवं आख्यायिका वास्तव में एक ही गद्य काव्य के दो भिन्न भिन्न नाम-मात्र हैं । वास्तव में इन मे मौलिक अन्तर कोई भी नहीं । ''**तत्कथाख्यायिकेत्येका जातिः संज्ञाद्वाङ्किता** ।''

दण्डी की यह दृढ़ धारणा है कि प्राचीन आचार्यों द्वारा दिए गए कथा एवं आख्यायिका के विभिन्न लक्षण कहीं भी पूरे रूप से नहीं घट सकते और फिर यदि सावधानतया देखा जाए तो आख्यायिका में कथा के और कथा में आख्यायिका के लक्षण भी दृष्टिगोचर हो सकते हैं । इस प्रकार गद्य काव्य के इन दोनों भेदों में

निश्चित रूप से कोई भी विभाजक रेखा नहीं डाली जा सकती। इस विषय का उन्होंने अपने काव्यादर्श में स्पष्ट विवरण दिया है।[7]

इस प्रकार दण्डी के मतानुसार कुछ साहित्यकार कथा और आख्यायिका में केवल इसलिए अन्तर मानते हैं कि आख्यायिका में नायक स्वयं अपने कृत्यों का वर्णन करता है, जबकि कथा में कोई दूसरा व्यक्ति नायक के कृत्यों का उल्लेख करता है—'**नायकेनैव वाच्याऽन्या नायकेनेतरेण वा**' पर दण्डी इस विचार से सहमत नहीं प्रतीत होते और विचार प्रस्तुत करते हैं कि वर्णन कर्ता चाहे नायक हो या कोई अन्य व्यक्ति उससे कथा अथवा आख्यायिका में कोई विशेष अन्तर नहीं पड़ता। और फिर यह नियम प्रायः प्रचलित भी नहीं है। क्योंकि कई स्थानों पर नायक इतर कोई अन्य व्यक्ति भी आख्यायिका में वर्णन करता हुआ देखा गया है। दूसरे वक्त्र और अपरवक्त्र छन्दों का प्रयोग केवलमात्र आख्यायिका में होना ही आवश्यक है, यह कोई निश्चित नियम नहीं। इन्हीं के समान आर्या या कोई अन्य छन्द कथा में भी प्रयुक्त किया जा सकता है। इस के अतिरिक्त आख्यायिका में किए गए विभाजन उच्छ्वास के समान कथा में

---

7 ''अपादः पदसन्तानो गद्यमाख्यायिका कथा।
इति तस्य प्रभेदौ द्वौ तयोराख्यायिका किल॥
नायकेनैव वाच्याऽन्या नायकेनेतरेण वा।
स्वगुणाविष्क्रियादोषो नात्र भूतार्थशंसिनः॥
अपि त्वनियमो दृष्टस्तत्राप्यन्यैरुदीरणात्।
अन्यो वक्ता स्वयं वेति कीदृग्वा भेदलक्षणम्॥
वक्त्रं चापरवक्त्रं च सोच्छ्वासं चापि भेदकम्।
चिह्नमाख्यायिकायाश्चेत् प्रसङ्गेन कथास्वपि॥
आर्यादिवत्प्रवेशः किं न वक्त्रापरवक्त्रयोः।
भेदश्च दृष्टो लम्बादिरुच्छ्वासो वाऽस्तु किं ततः॥
तत्कथाऽऽख्यायिकेत्येका जातिः संज्ञाद्वयाङ्किता।
अत्रैवान्तर्भविष्यन्ति शेषाश्चाख्यानजातयः॥
कन्याहरणसंग्रामविप्रलम्भोदयादयः।
सर्गबन्धसमा एव नैते वैशेषिका गुणाः॥
कविभावकृतं चिह्नमन्यत्रापि न दुष्यति।
मुखमिष्टार्थसंसिद्धौ किं हि न स्यात् कृतात्मनाम्॥''

(काव्यादर्श—१,२३–३०)

भी लम्बक उपलब्ध होते हैं। कन्याहरण, संग्राम, वियोग तथा नायकोदयादि विषयों का होना केवल आख्यायिका के लिए ही अनिवार्य नहीं है अपितु वे तो सर्ग-बन्ध महाकाव्यों में भी उपलब्ध होते हैं। दण्डी इस बात पर भी विशेषतया जोर देते हैं कि कथा संस्कृत तथा अन्य सभी भाषाओं में लिखी जा सकती है क्योंकि बृहत्कथा को भूतभाषा में लिखी गई माना जाता है।[8]

दण्डी के ये विचार पर्याप्त युक्तिसंगत प्रतीत होते हैं, क्योंकि उनके मतानुसार आख्यायिका में किसी एक बात का होना और कथा में किसी दूसरी का होना कोई विशेष महत्व नहीं रखता। विभिन्न छन्दों के प्रयोग, अध्यायों के अलग अलग नाम तथा केवलमात्र वक्त्र के भेद से इन दोनों में पृथकता स्थापित नहीं की जा सकती। इस प्रकार दण्डी का यह निष्कर्ष कि ये दो संज्ञाओं की एक जाति है सर्वथा उपयुक्त है, और सम्भवतः उन्होंने ऐसा अपने समय के प्रचलित गद्य काव्यों के आधार पर ही किया होगा।

इस प्रकार दण्डी ने भामह द्वारा प्रस्तुत भेदक तत्त्वों का पूर्णतया खण्डन किया है। दण्डी भामह के केवल एक ही मत से सहमत प्रतीत होते हैं कि सचमुच आख्यायिका की कथावस्तु ऐतिहासिक, वास्तविक तथा प्रख्यात होती है और कथा की कथावस्तु कवि-कल्पना प्रसूत।

अमरकोश में भी हमें दण्डी तथा भामह के इस मौलिक भेद-तत्त्व की व्याख्या मिलती है। "**आख्यायिकोपलब्ध्यर्था, प्रबन्धकल्पना कथा।**"[9] अलंकार संग्रहकार भी कथा में कल्पित वस्तु तथा आख्यायिका में वास्तविक घटनाओं को उनके विषय का आधार मानता है। "**कथा कल्पितवृत्तान्ता सत्यार्थाख्यायिका मता।**"

भामह तथा दण्डी के परवर्ती आचार्यों ने भी गद्य काव्य की इन दोनों विधाओं के लक्षण देने की चेष्टा की है। इनमें 'काव्यालंकार' के रचयिता रुद्रट, ध्वन्यालोककार आनन्दवर्धन एवं साहित्यदर्पण के निर्माता विश्वनाथ के नाम प्रमुख हैं।

आचार्य रुद्रट ने कथा तथा आख्यायिका की परिभाषा में अन्य कई परिवर्तन प्रस्तुत किए हैं। और उनका मत विशेषरूप से बाणभट्ट की दोनों अमर कृतियों—हर्षचरित तथा कादम्बरी पर ही आधारित है। ऐसा प्रतीत होता है कि रुद्रट ने

---

8 "कथा हि सर्वभाषाभिः संस्कृतेन च बध्यते।
भूतभाषामयीं प्राहुरद्भुतार्थां बृहत्कथाम्॥" (काव्यादर्श)

9 द्रष्टव्य—अमरकोष १५।५६।

सम्भवत: इन दो ही कृतियों को अपने समक्ष रख कर उन्हीं के नियमों को सार्वभौम बना दिया। उनके मतानुसार कथा के प्रारम्भ में गुरु तथा देवताओं की नमस्क्रिया पद्य में होती है और रचयिता के परिवार का वर्णन भी इस में रहता है। पर वास्तविक कथा का प्रारम्भ सानुप्रास लघ्वक्षर गद्य के द्वारा ही किया जाता है। कथा में पुर-वर्णन, चन्द्रोदय, सूर्योदय आदि का वर्णन होना भी आवश्यक है। प्रारम्भ कथान्तर से होता है जो शीघ्र ही मुख्य कथा में मिल जाता है। कन्यालाभ इसका मुख्य विषय होता है और शृंगाररस की प्रधानता रहती है। कथा संस्कृत में गद्य के द्वारा तथा अन्य भाषाओं में पद्य के द्वारा कही जानी चाहिए।[10]

दूसरी ओर आख्यायिका की कथावस्तु का प्रारम्भ कथा की ही तरह किया जाए, परन्तु उस में रचयिता और उसके वंश का वर्णन गद्य में अवश्य होना चाहिए। गुरु और देवताओं की नमस्क्रियादि पद्य में ही की जाती है। इस के साथ ही प्राचीन कवियों की प्रशंसा तथा रचयिता की स्व-रचना करने में असामर्थ्य प्रकट किया जाता है। रचना करने का अभिप्राय प्राय: किसी भी राजा की प्रशंसादि का प्राप्त होना होता है। इसका विभाजन उच्छ्वासों में होना चाहिए और प्रथम उच्छ्वास के अतिरिक्त अन्य सभी उच्छ्वासों के प्रारम्भ में दो ऐसे आर्या छन्दों का होना अनिवार्य है जो भविष्य में घटने वाली घटनाओं की ओर संकेत करें।

रुद्रट के परवर्ती आनन्दवर्धन ने आख्यायिका में प्रयोग किए जाने वाले समासों के विषय में अपने ध्वन्यालोक में कुछ विशेष नियम प्रस्तुत किए हैं—

"आख्यायिका तु भूम्ना मध्यमसमासा दीर्घ समासे एव संघटने। अतिदीर्घसमासरचना न विप्रलम्भशृङ्गारकरुणयोः आख्यायिकायामपि शोभते।"

---

10 "श्लोकैर्महाकथायामिष्टान् देवान् गुरु नमस्कृत्य।
संक्षेपेण निजं कुलमभिदध्यात् स्वं च कर्तृतया॥
सानुप्रासेन ततो लघ्वक्षरेण गद्येन।
रचयेत् कथाशरीरं पुरेव पुरवर्णकप्रभृतीन्॥
आदौ कथान्तरं वा तस्यां न्यस्येत् प्रपञ्चितं सम्यक्।
लघु तावत् संधानं प्रक्रान्तकथावताराय॥
कन्यालाभफलां वा सम्यक् विन्यस्य सकलशृङ्गारम्।
इति संस्कृतेन कुर्यात् कथामगद्येन चान्येन॥"

(रुद्रट :—काव्यालंकार १६।२०–२३)

विश्वनाथ द्वारा प्रस्तुत कथा तथा आख्यायिका के लक्षणों में यद्यपि कोई विशेष नवीनता दिखाई नहीं देती तो भी इनका मत विशेषरूप से मान्य है। कथा का उल्लेख करते हुए वे कहते[11] हैं कि 'कथा साहित्य में प्रायः कल्पित कथावस्तु को अपना आधार मान कर लम्बे लम्बे वर्णनों के द्वारा सरस एवं मनोरम वस्तुओं का निर्माण होता है। इस में कहीं कहीं आर्या छन्द और कहीं वक्त्र तथा अपवक्त्र छन्द का प्रयोग होता है। आदि में कुछ पद्यों के द्वारा गुरु नमस्कार तथा खलादिकों के चरित एवं व्यवहारों का उल्लेख रहता है। कथा के उदाहरण के रूप में विश्वनाथ कादम्बरी का नाम प्रस्तुत करते हैं।

विश्वनाथ के अनुसार आख्यायिका की रचना[12] भी प्रायः कथा के समान ही होती है। पर इस में कथा से अधिक कविवंश वर्णन भी होता है और इसके साथ ही अन्य कवियों का वृत्तान्त भी प्रायः किया जाता है। कहीं कहीं पद्यों का प्रयोग भी रहता है। इस में कथा के अंशों के विभागों का नाम आश्वास रखा जाता है और उच्छ्वास के आरम्भ में आर्या, वक्त्र या अपवक्त्र छन्द के माध्यम से किसी व्याज द्वारा अन्योक्ति से आगामी कथा अथवा वृत्तान्त की सूचना की जाती है। और इसमें प्रायः किसी नृपति के चरित्र के विषय में वर्णन विशेष रहता है। विश्वनाथ द्वारा प्रस्तुत आख्यायिका का यह लक्षण हमें 'हर्षचरित' में देखने में आता है।

कुछ एक आचार्यों का जो यह मत है कि आख्यायिका की कथा, नायक के मुख से ही कहलवाई जानी चाहिए—सो यह मत कुछ उपयुक्त प्रतीत नहीं होता। आचार्य दण्डी ने तो इस विषय में स्पष्ट कहा है कि :—"अपि स्वनियमो दृष्टस्तत्राप्यन्यैरुदीरणात्।" विश्वनाथ भी इसी मत को पुष्ट करते हुए कहते हैं—"अन्यापदेशेनाश्वासमुखे भाव्यर्थसूचनम्।" इस प्रकार आख्यायिका में केवल नायक ही के नहीं अपितु अन्य

---

11 "कथायां सरसं वस्तु गद्यैरेव विनिर्मितम्॥
क्वचिदत्र भवेदार्या क्वचिद्वक्त्रापवक्त्रके।
आदौ पद्यैर्नमस्कारः खलादेर्वृत्तकीर्तनम्॥"
(साहित्य० ६.३२२-३३)

12 "आख्यायिका कथावत्स्यात्कवेर्वंशानुकीर्तनम्।
अस्यामन्यकवीनां च वृत्तं पद्यं क्वचित्क्वचित्॥
कथांशानां व्यवच्छेद आश्वास इति बध्यते।
आर्यावक्त्रापवक्त्राणां छन्दसा येन केनचित्॥"
(साहित्य० ६.३३४-३५)

लोगों के भी वचन हो सकते हैं। इस प्रकार ऊपर का नियम कोई दृढ़ नियम नहीं है। इसके अतिरिक्त यह जो कहा जाता है कि आख्यायिका में प्राय: किसी नृपति के चरित्र का उल्लेख रहता है, इसकी पुष्टि एक तो बाणभट्ट के 'हर्षचरित' से दूसरे वामनभट्ट बाणकृत 'वेमभूपालचरित' से होती है।

विश्वनाथ का मत यद्यपि अन्तिम माना जाता है पर यदि हम उनकी विचार-धारा का विश्लेषण करें तो हमें इन द्वारा प्रस्तुत लक्षणों में भी कोई विशेष नवीनता दिखाई नहीं देती प्रत्युत 'आश्वास' शब्द का क्योंकि प्राय: किसी भी काव्य में प्रयोग नहीं हुआ, अत: कथांशों के विभाग के लिए आश्वास शब्द का प्रयोग बतलाना व्यर्थ सा प्रतीत होता है। यहां तक कि हर्षचरित में भी आश्वास की जगह उच्छ्वास शब्द का ही प्रयोग हुआ है। पर विश्वनाथ की यह उक्ति :—"**आख्यायिका कथावत् स्यात्**" दण्डी के मत के सर्वथा अनुकूल सिद्ध होती है।

इस प्रकार उपर्युक्त सभी आलंकारिकों के मतों का यदि विश्लेषण किया जाए तो हम इसी निष्कर्ष पर पहुँचेंगे कि वास्तव में कथा तथा आख्यायिका में कोई मौलिक अन्तर नहीं। कहने को चाहे कोई यह कह दे कि आख्यायिका का कथानक बहुधा ऐतिहासिक अथवा अर्द्ध-ऐतिहासिक होता है तथा कथा कवि के ऊर्वर मस्तिष्क की उपज होती है। और दूसरे कथा एवं आख्यायिका में शास्त्रीय दृष्टिकोण से चाहे हम कुछ भेद मान लें पर व्यावहारिक रूप में इस में कोई विशेष आन्तरिक भेद नहीं। मूलत: ये दोनों गद्य काव्य के दो भिन्न नाम मात्र हैं। इन में कोई तात्विक भेद की रेखा नहीं डाली जा सकती। और फिर यह भी तो एक तथ्य है कि यदि हम इन आचार्यों द्वारा प्रस्तुत कथा तथा आख्यायिका के विभिन्न लक्षणों की मीमांसा करें तो हम इस निष्कर्ष पर स्वत: ही पहुँच जाएंगे कि वास्तव में उनके समक्ष कोई विशिष्ट लक्ष्य-ग्रन्थ नहीं थे और सम्भवत: उन्होंने केवल सैद्धान्तिक पक्ष की पूर्ति के लिए ही ऐसी व्याख्याएं प्रस्तुत की हैं। क्योंकि विभिन्न आलंकारिकों ने जहां कथा को वर्णना-त्मक प्राय: मानकर उसमें सूर्योदय, सन्ध्या, चन्द्रोदय तथा रजनी आदि का विशेष रूप से वर्णन माना है और आख्यायिका में ऐसे वर्णनात्मक दृश्यों के अभाव का निर्देश किया है और साथ ही कथा में कुछ ऐसे विशिष्ट सांकेतिक शब्दों (Catch words) का विधान बतलाया है जो इसको आख्यायिका से पार्थक्य बतलाने में सहायक सिद्ध होते हैं और दूसरी ओर आख्यायिका में ऐसे शब्दों के प्रयोग का अभाव मानकर उसे भावात्मक शैली में लिखा गया स्वीकार किया है, वह वास्तव में केवल शास्त्रीय परिभाषा के लिए ही किया गया प्रतीत होता है, अन्यथा इनके अन्तर

का पालन प्राय: कहीं भी नहीं हुआ। सो इस प्रकार कथा तथा आख्यायिका को एक ही गद्य शैली के अन्तर्गत मान लेना युक्ति संगत ही प्रतीत होता है।

अब यदि हम संस्कृत साहित्य में उपलब्ध कथा और आख्यायिका साहित्य का पर्यवेक्षण इन उपर्युक्त लक्षणों के आधार पर करें तो बाणभट्ट की दोनों कृतियों-हर्षचरित तथा कादम्बरी—क्रमश: आख्यायिका एवं कथा की श्रेणी में आ जाती हैं। बाण ने स्वयं भी तो हर्षचरित को आख्यायिका कहा है—"करोम्याख्यायिकाम्भोधौ।" तथा कादम्बरी को, वासवदत्ता तथा बृहत्कथा को तिरस्कृत कर देने वाली कथा कहा है—"धियानिबद्धेयमतिद्वयीकथा।" इसके अतिरिक्त 'काव्यालंकार' के टीकाकार नमिसाधु (१०६९ ई.) ने भी बाणभट्ट की इन दोनों रचनाओं को गद्य के दो प्रकार माना है। उनके मतानुसार हर्षचरित आख्यायिका की तथा कादम्बरी कथा की श्रेणी में आती है।

बाण ने स्वयं भी श्रेष्ठ आख्यायिका के लिए सरल शब्द रचना तथा मधुर एवं ललित अक्षर विन्यास का होना आवश्यक माना है। उनके अनुसार[13] आख्यायिका बिना किसी आयास के सुखपूर्वक समझ में आ जाने से सुन्दर लगने वाली और आकर्षक रचना वाले एवं विवक्षित अर्थ को व्यक्त करने वाले शब्दों से युक्त उस शय्या के समान सुशोभित लगती है, जिस पर सुखपूर्वक निद्रा ली जा सके तथा जो सुवर्ण से मढ़े पावों से चमकती है।'

हर्षचरित की कथावस्तु ऐतिहासिक है जिस में महाराज हर्षवर्धन के जीवन पर पर्याप्त प्रकाश डाला गया है। यह रचना बीस श्लोक या अनुष्टुप् छन्दों से प्रारम्भ होती है। और जगती छन्द से इस भाग की समाप्ति होती है। कवि ने उसमें अपने वंश का परिचय देने के अतिरिक्त व्यास, भट्टार हरिचन्द्र, सातवाहन तथा भासादि कवियों की स्तुति भी की है। तत्पश्चात् कवि राजा हर्ष—जो उसका आश्रयदाता था—की प्रशंसा करता है। इसके बाद गद्य में हर्षचरित प्रारम्भ होता है। जिस के आठ उच्छ्वास उपलब्ध हैं।

प्रथम के अतिरिक्त शेष सभी उच्छ्वास दो श्लोकों से प्रारम्भ होते हैं जिन में आने वाली घटनाओं की ओर संकेत मिलता है। इन श्लोकों के छन्द सभी उच्छ्वासों

---

13 सुखप्रबोधललिता सुवर्णपटनोज्ज्वलैः।
शब्दैराख्यायिका भाति शय्येव प्रतिपादकैः॥"
(हर्ष० प्रथम उच्छ्वास—२०)

में समान ही हैं, केवल तीसरे उच्छ्वास में आर्या छन्द को छोड़ कर श्लोक छन्द का प्रयोग किया गया है। वास्तविक विषय-वस्तु तीसरे उच्छ्वास से आरम्भ होकर आठवें उच्छ्वास तक चलती है। इसमें वक्ता स्वयं बाणभट्ट है।

इस प्रकार यदि हम ध्यानपूर्वक देखें तो यह स्पष्ट हो जाता है कि भामह द्वारा दिए गए आख्यायिका के लक्षणों को हर्षचरित पूरा नहीं करता। कृति सरल गद्य में लिखी गई है परन्तु इसमें आए वक्त्र और अपरवक्त्र छन्द अभीष्ट की सिद्धि नहीं करते हैं। उच्छ्वासों के आरम्भ में आए आर्या छन्द आने वाली घटाओं की ओर संकेत करते हैं। महान् सम्राट की गाथा होने के कारण कथावस्तु उदात्तार्थ है। इस में कन्याहरण का वर्णन नहीं और न ही नायक अपनी कहानी स्वयं कहता है। अतः इस से स्पष्ट है कि भामह का आख्यायिका का लक्षण बाणभट्ट की कृति हर्षचरित पर आधारित नहीं।

जहां तक कादम्बरी का सम्बन्ध है इस में लाक्षणिकों द्वारा दिए गए कथा के प्रायः सभी लक्षण दृष्टिगोचर होते हैं, यद्यपि कादम्बरी का कथानक कथा सरित्सागर के आधार पर रचा गया है फिर भी इस में कवि की कल्पना सर्वत्र परिलक्षित होती है। रचना के आरम्भ में ब्रह्मा, विष्णु, महेश तथा गुरु की स्तुति नमस्कारादि तथा उसके बाद खल निंदादि का भी सफल विनियोग हुआ है। वंशस्थ श्लोकों में परिचय भी दिया गया है। शृंगार रस मुख्य रस है। क्योंकि कथा में उच्छ्वास नहीं होते अतः इस में भी विभाजनों का उच्छ्वासादि कोई विशेष नाम नहीं दिया गया। संग्राम आदि का भी कोई संकेत नहीं है। मुख्य कथा को प्रस्तुत करने के लिए क्षुद्रक रूप कथान्तर का प्रयोग भी बड़ी सफलता से किया गया है।

इस प्रकार यदि हम बाण की इन दोनों कृतियों का ध्यानपूर्वक विश्लेषण करें तो यह बात स्वतः स्पष्ट हो जाएगी कि अग्निपुराण में दिए गए कथा आख्यायिका के लक्षणों का इन दोनों कृतियों पर अत्याधिक प्रभाव पड़ा है। और फिर रुद्रट का लक्षण भी प्रायः अक्षरशः इन दोनों कृतियों में घटित हो जाता है। इस प्रकार ये दोनों कृतियां अपने स्वरूप के लिए चाहे किसी भी लक्षण पर आश्रित हों पर इतनी बात तो इन से स्पष्ट हो जाती है कि आख्यायिका का आधार इतिहास होता है और कथा प्रायः कवि कल्पना प्रसूत होती है।

कथा का एक अन्य उदाहरण सुबन्धु की 'वासवदत्ता' भी है। कथा के लक्षण इस में प्रायः उपलब्ध होते हैं। सुबन्धु ने भी इस में कथा के मुख्य लक्षण के ही अनुसार कल्पित कथावस्तु का आश्रय लेकर दीर्घ वर्णनों के द्वारा अपनी उदात्त शैली का प्रदर्शन

किया है। यह कृति बारह आर्या छन्दों से प्रारम्भ होती है। विषय वस्तु में कोई विराम नहीं है और न ही इस में अध्याय हैं। वक्त्र तथा अपरवक्त्र छन्दों का प्रयोग भी नहीं किया। शृंगार रस प्रधान है। संग्राम या कन्याहरण का कोई उदाहरण नहीं। केवल वासवदत्ता का विन्ध्याचल पर्वत में छुपा देना ही कन्याहरण का उदाहरण कहा जा सकता है। इस प्रकार वासवदत्ता एक सफल तथा मनोरम प्रेम कथा है।

जहां तक दशकुमार चरित के कथा अथवा आख्यायिका होने का प्रश्न है, वहां यह कृति कथा के अन्तर्गत भी आ सकती है और आख्यायिका के अन्तर्गत भी क्योंकि इस में न तो कथा के ही लक्षण पूरे उतरते हैं और न आख्यायिका के ही। इसमें वक्त्र तथा अपवक्त्र छन्दों का प्रयोग नहीं हुआ और न ही कवि के वंश का इसमें वर्णन हुआ है, और इसके विपरीत नायक के साथ ही दूसरे पात्रों के द्वारा कथा का वर्णन हुआ है अतः यह कृति कथा मानी जा सकती है। और दूसरी ओर कथावस्तु के आधार पर, तथा कथांशों के नाम उच्छ्वास होने के कारण यह आख्यायिका की परिपाटी में भी सम्मिलित की जा सकती है। पर देखा जाए तो इस प्रकार अन्तिम रूप से कोई यह नहीं कह सकता कि यह केवल कथा ही है अथवा आख्यायिका।

: ४ :

गद्य-परम्परा और बाण

संस्कृत के गद्य साहित्य की प्राचीनता ऋग्वैदिक-काल तक चाहे न दिखाई जा सके, परन्तु यजुर्वेद और अथर्ववेद में निश्चय ही गद्य के सुन्दर निदर्शन हमें उपलब्ध होते हैं। यद्यपि इन दो संहिताओं में प्राप्त गद्य-वाक्य कदापि अलंकृत और परिपक्व गद्य नहीं कहे जा सकते तथापि उन में वाक्य की सम्पूर्ण विशेषताएं मिलती हैं। क्रिया को अन्त में रखने का, तथा कर्म और कर्ता को उस से पूर्व रखने का वाक्यगत वैशिष्ट्य इन संहिताओं में सैंकड़ों स्थानों पर मिलता है। यजुर्वेद से कुछ एक उदाहरण नीचे दिए जाते हैं—

'वरुणस्त्वा धूपयतु, विष्णुस्त्वा धूपयतु ॥' (यजु० अ० ११ कं० ६०)

'गायत्रेण त्वा छन्दसा सादयामि, त्रैष्टुभेन त्वा छन्दसा सादयामि ॥'

(यजु० अ० १३ कं० ५३)

राष्ट्रे राजन्यः शूर इषव्योऽतिव्याधी महारथा जायतां (यजु० अ० २२ कं० २२)

उपर्युक्त उद्धरणों से स्पष्ट है कि यजुर्वेदीय गद्य में वाक्य सामन्यतः समास रहित और संक्षिप्त हैं। छन्दों की ही भान्ति उदात्तानुदात्तादि स्वरों का अंकन इन पर किया गया है। विकसित अलंकृत गद्य के असदृश इन में दुरुहता का अभाव एवं सरलता और सुगमता का आधिक्य है। अधिकांश गद्य याचनामय उक्तियों के रूप में ही है।

अथर्ववेद के भी कुछ एक उदाहरण नीचे उद्धृत हैं—

स उत्तमां दिशमनु व्यचलत्	(कां–१५–सू ६ मं–७)
एता अश्वा आ प्लवन्ते	(कां–२०–सू १२८ मं–१)
वनिष्ठा नाव गृह्णन्ति	(२० । १३१ । ८)
क एषां दुन्दुभिं हनत्	(२० । १३२ । ६)
त्रीण्युष्ट्रस्य नामानि	(२० । १३२ । १३)
हिरण्यं इत्येके अब्रवीत्	(२० । १३२ । १४)

उपर्युक्त उद्धरणों से भी स्पष्ट है कि अथर्ववेद का गद्य भी सरलता और सुगमता

लिए हुए है । वस्तुत: काण्ड २० के १२६, १३०, १३१ और १३२ सूक्त तो इतने सुन्दर गद्य में लिखे गए हैं कि पाठक को उन के विन्यास-सम्बन्धी विकास पर आश्चर्य होता है ।

संस्कृत गद्य के विकास का द्वितीय चरण ब्राह्मण ग्रन्थों का गद्य है । ब्राह्मण प्राय: गद्य में ही लिखे गए हैं । यद्यपि ब्राह्मण ग्रन्थों में संहिताओं के मन्त्रों की व्याख्या, शब्दों की यत्र तत्र निरुक्ति, यज्ञ में प्रयुक्त विधानों का उल्लेख, उनकी वेदसम्मत सार्थकता एवं पुष्टि तथा मन्त्रनिर्दिष्ट आख्यानों का ही विवरण है और उसे कदापि साहित्यिक श्रेणी में नहीं रक्खा जा सकता तथापि वह गद्य तत्कालिक अर्थाभिव्यंजना की सक्षमता का परिचायक अवश्य है । अर्थवाद इस गद्य की सामान्य विशेषता है और उस में यज्ञ से सम्बद्ध किसी उपकरण अथवा कर्मकाण्ड को वैदिक देवता से सम्बद्ध करने के लिए जिस वाक्यशैली का आश्रय लिया गया है वह सरल, सुगम और प्रभावी है । उदाहरणत:

'तद्दश । दशाक्षरा वै विराट् । विराड् वै यज्ञः । तद्विराजमेवैतद् यज्ञमभि-संपादयति । तस्य यानि शुक्लानि च कृष्णानि च लोमानि तान्यृचां च साम्नां च रूपम् ।' (शतपथ ब्राह्मण १ अ, १ ब्र, २२)

ऐतरेय ब्राह्मण के आख्यान भी अपनी मार्मिकता और भावों की मधुरता के लिए प्रसिद्ध हैं ।

ब्राह्मणों का गद्य बहुत मात्रा में संहिताओं के गद्य जैसा ही है—पर उसकी अभिव्यंजना शैली में बल अवश्य दृष्टिगोचर होता है जिस का कारण कदाचिद् अर्थवाद और मन्त्र निर्दिष्ट आख्यान थे ।

संस्कृत-गद्य के विकास-क्रम में अगला स्थान उपनिषदों का है । उपनिषदों की भाषा में यद्यपि ब्राह्मणकालीन गद्य की विशेषताओं के चिह्न जीवित दिखाई देते हैं तथापि इस काल तक संस्कृत गद्य में उन विशेषताओं का कुछ कुछ समावेश होना आरम्भ हो गया था जो बाद के साहित्यिक गद्य में प्रचुरता से मिलती हैं । सादृश्य-मूलक अलंकारों का प्रयोग भी उस काल में होने लगा था । जैसे—

'ते ह यथैवेह बहिष्पवमानेन स्तोष्यमाणाः संरब्धा सर्पन्तीत्येवमाससृप्सुस्ते ह समुपविश्य हिं चक्रु'—अर्थात् जिस प्रकार कर्म बहिष्पवमान स्तोत्र से स्तवन करने के लिए उद्गाता परस्पर मिलकर भ्रमण करते हैं उसी प्रकार उन कुत्तों ने भ्रमण किया और वहां बैठ कर हिंकार करने लगे । परन्तु इस काल तक भी साहित्यिक अलंकृत गद्य की सर्वाधिक महत्वपूर्ण विशेषता समस्त पदों की बहुलता का आरम्भ नहीं हुआ था ।

बाद के सूत्र साहित्य ने ही संभाव्यत: समास-बहुलता को गद्य की अनिवार्य विशेषता के रूप में प्रतिष्ठित किया। भाषा को संक्षिप्त रूप देने के लिए समस्त पदों का प्रयोग अनिवार्य था।

पतंजलि का महाभाष्य, अर्थशास्त्र, चरक संहिता, दार्शनिक-ग्रन्थों की व्याख्याएं तथा अन्य पारिभाषिक और विज्ञान-परक साहित्य यद्यपि अलंकृत नहीं है पर साहित्यिक अवश्य है और गद्य की अन्य सभी विशेषताएं उस में मिलती हैं। कहीं-कहीं तो उस साहित्य में भी ललित गद्य के दर्शन होते हैं। अलंकृत गद्य की विशेषण-बाहुल्य की विशेषता भी कदाचिद् इसी साहित्य से गृहीत है।

गद्य-लेखन की उपर्युक्त परम्परा ने अलंकृत गद्य को जन्म कब दिया—इस विषय में तो किसी भी साहित्यिक कृति की उपलब्धि के अभाव में निश्चय के साथ नहीं कहा जा सकता, तो भी रुद्रदामा के १५० ईस्वी के गिरनार अभिलेख की भाषा से स्पष्ट है कि अलंकृत और साहित्यिक-गद्य तब तक विकास के सारे सोपान पार कर चुका था। रुद्रदामा के 'नासिक अभिलेख' की रचना चाहे काव्य-सृजन के उद्देश्य से नहीं की गई तथापि एक तड़ाग के संस्कार के समय पर लिखी गई कृति में भी लम्बे-लम्बे समासों का प्रयोग, क्रियारूपों की न्यूनता, शब्दालंकारों का प्रयोग, विशेषण बाहुल्य और स्फीत वर्णन—आदि गद्य की सम्पूर्ण विशेषताएं मिल जाती हैं। कुछ उदाहरण नीचे दिये जाते हैं।

समास बहुल पद एवं स्फीत वर्णन :—

'प्रमिथतसलिलविक्षिप्तजर्जरीकृतावदीर्णविक्षिप्ताश्मवृक्षगुल्मलताप्रतानं'
'गिरिशिखरतरुतटाट्टालकोपतल्पद्वारशरणोच्छ्रयविध्वंसिना'
'मृत्तिकोपलविरतारायामोच्छ्रयनि:सन्धिबद्धदृढ़सर्वपालीकत्वात्'

अनुप्रास :—

'अभ्यरतनाम्नो रुद्रदाम्नो, यथावत्प्राप्तधर्मार्थकामविषयाणां विषयाणां, अविधेयानां यौधेयानां, दानमानानवमानशीलेन, प्रमाणमानोन्मान, प्राप्तदाम्ना रुद्रदाम्ना न्यायाद्यानां विद्यानां।'

उपमा :--

नि:सृत सर्वतोय मरुधन्वकल्पम्

उत्प्रेक्षा :—

एकार्णवभूतायां पृथिव्यां कृतायां

क्रियापद :—

इतने विस्तीर्ण अभिलेख में क्रियापद केवल चार बार प्रयुक्त हुआ है।

इस अभिलेख में रुद्रदामा को स्फुटलघुमधुर चित्रकान्त शब्द समयोदारालंकृत गद्य-पद्य काव्य विधान में प्रवीण कहा गया है। अतः स्पष्ट है कि ईसा की दूसरी शती के मध्य तक अलंकृत गद्य की रचनाएं अवश्य ही लोकप्रिय हो चुकी थी। २०१ शक संवत् अथवा १०२ कल्चूरी चेदि संवत् का शक श्रीधर वर्मा का सांची प्रस्तर अभिलेख यद्यपि आकार में लघु है तो भी गद्य लेखन के प्रचार का प्रबल प्रमाण है।

चतुर्थ शती के द्वितीय अथवा तृतीय चरण में हरिषेण रचित समुद्रगुप्त की प्रयाग प्रशस्ति भी अलंकृत गद्य का सुन्दर निदर्शन है। इस में भी अलंकृत गद्य की सम्पूर्ण विशेषताएं मिलती हैं।

समास बहुल पद :—

आत्मनिवेदनकन्योपायनदानगरुत्मदंकस्वविषयभुक्तिशासनयाचनोपायसेवाकृत-बाहुवीर्य प्रसर धरणि बन्धस्य।

उत्प्रेक्षा :—

त्रिदशपतिभवन गमनावाप्तललितसुखविचरणमाचक्षाण इव भुवो बाहुरयमुच्छ्रितः स्तम्भः।

क्रियापद :—

इतने विस्तीर्ण गद्य खण्ड में केवल एक बार क्रियापद का प्रयोग हुआ है।

इसी प्रकार समुद्रगुप्तोत्तर-काल के राजाओं के अभिलेख भी बहुत मात्रा में गद्य में मिलते हैं। यद्यपि उन्हें काव्य कृतियां तो कभी नहीं कहा जा सकता तथापि उनमें साहित्यिक गद्य की सब विशेषताएं मिलती हैं। चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य, कुमार गुप्त, स्कन्दगुप्त, बुधगुप्त और मैत्रक—नृपतियों के अभिलेख इस के साक्ष्य हैं। कुछ उदाहरण अप्रासंगिक न होंगे।

'सर्वराजोच्छेत्तुः पृथिव्यामप्रतिरथस्य चतुरुदधिसलिलस्वादित यशसो'

(स्कन्दगुप्त का भीतरी स्तम्भाभिलेख)

'स्वयंवरयेव राजलक्ष्म्याधिगतेन, चतुःसमुद्रपर्यन्तप्रथित यशसा'

(वैन्यगुप्त का दामोदरपुर लेख)

'शिरोवनतशत्रुचूडामणि प्रभाविच्छुरित पादनख पंक्ति दीधितिद्दीनानाथकृपणजनोपजीव्य मानविभवः—'

(मैत्रक धरसेन का मलियाभिलेख)

गुप्त एवं गुप्तोत्तर काल के भूमि-दान-सम्बन्धी अभिलेखों की भाषा यद्यपि सर्वत्र काव्यमयी नहीं तथापि अभिव्यंजना शक्ति और प्रांजलता से युक्त सधे हुए वाक्यों में लिखा गया उनका गद्य, गद्य साहित्य के गौरवपूर्ण विकास का परिचायक है।

तीन शतकों से भी अधिक लम्बी अभिलेखात्मक-गद्य की परम्परा के दाय को लेकर दण्डी ने अपने दशकुमार चरित की रचना की। दण्डी ने गद्य जगत् में पदलालित्य का ऐसा स्रोत बहाया कि आलोचकों को बरबस 'दण्डिनः पदलालित्यम्' कहने के लिए बाध्य होना पड़ा। दण्डी का यह पद लालित्य ही गद्य के विकास में उसका योगदान है। दण्डी का कथा कहने का ढंग भी अनूठा और प्रभावी है। दण्डी की गद्य शैली कहीं कहीं पर समास बहुल अवश्य है और वह भी संदिग्ध कर्तृत्व वाली पूर्वपीठिका में अधिक मात्रा में मिलती है—परन्तु उसकी प्रवृत्ति लम्बे समासों के प्रयोग की ओर कदापि नहीं थी। वर्णनों का विस्तार भी उसने उतनी मात्रा में ही किया है जहां तक कि वह कथानक के प्रवाह में व्यवधान नहीं बनता।

अलंकृत गद्य के दूसरे सशक्त लेखक सुबन्धु ने दण्डी की शैली को न अपना कर लम्बे समासों से युक्त गौड़ी रीति का आश्रय लिया। श्लेष, अनुप्रास, परिसंख्या और विरोधाभास के मोह में पड़ कर सुबन्धु ने कथा प्रवाह की उपेक्षा की है। ऋजुता व सादगी को उस के काव्य में स्थान नहीं। सुबन्धु के लिए अलंकृति और चमत्कृति ही काव्य का सर्वस्व था। कदाचित् तात्कालिक विद्वद्समाज की अपेक्षाओं से बाध्य होकर ही उसे ऐसा करना पड़ा हो। यही कारण है कि उस के काव्य में नगण्य स्थानों पर ही स्वभावोक्ति और अनलंकृत वर्णन मिलते हैं। सर्वत्र अलंकार और चमत्कार का साम्राज्य है। पर सुबन्धु के महत्व के विषय में इस तथ्य से इन्कार नहीं किया जा सकता कि अपेक्षाकृत श्रेष्ठ कवि बाण ने भी सुबन्धु से प्रेरणा ली थी और बाण सुबन्धु का ऋणी भी था। कई स्थलों पर तो बाण ने सुबन्धु की शैली तथा भाषा का अनुकरण तक किया है। उदाहरण के रूप में स्वप्नवासवदत्ता का वह प्रसंग लिया जा सकता है जिस में कंदर्पकेतु को देखकर कामविह्वल हुई वासवदत्ता के सखियों को लक्ष्य करके किए गए सम्बोधन है और हर्षचरित का वहप्रसंग जिसमें मरणासन्न प्रभाकर वर्धन के अपनी विभिन्न प्रेयसियों के प्रति कहे गए सम्बोधन है।

हा प्रियसख्यनङ्गलेखे ! वितर हृदये मे पाणिपद्मम्, दुःसहो विरह सन्तापः। मग्धे मदनमञ्जरि ! सिञ्चाङ्गानि चन्दनवारिणा। सरले वसन्तसेने ! संवृणु केशपाशम्। तरले तरङ्गवति। विकिराङ्गेषु कंतकधूलिम्। वामे मदनमालिनि। कलय वलयं शैवाल कलापेन। चपले चित्रलेखे। चित्रपटे विलिख चित्तचोरजनम्। भामिनि

विलासवति ! विक्षिपावयवेषु मुक्ताचूर्णनिकरम् । रागिणि रागलेखे ! स्थगय नलिनीदल निचयेन पयोधर भारम् । सुकान्ते कान्तिमति । मन्दं मन्दमपनय वाष्पबिन्दून् । यूथिकालंकृते यूथिके । संचारय नलिनीदलवृन्तेनार्द्रवातान् । (सुबन्धु वासवदत्ता)

बाहो महान् आहर हारान्हारिणि । मणिदर्पान्मे देहे देहि वैदेहि । हिमलवैर्लिम्प ललाटं लीलावति । घनसारक्षोद धूलीनिधेहि धवलाक्षि । निक्षिप चक्षुषि चन्द्रकान्तं कान्तिमति । कपोले कलय कुवलयं कलावति । चन्दन चर्चां रचय चारुमति । पाटय पटमारुतं पाटलिके । मन्दय दाहमिन्दुमति । तरलय तालवृन्तमावन्तिके आदि ।

(बाण हर्षचरित पञ्चमोच्छ्वास)

उपरोक्त दोनों उद्धरणों में न केवल शैली गत अपितु भाषा गत साम्य भी है जो स्पष्ट ही बाण के ऊपर सुबन्धु के प्रभाव का द्योतक है । अन्य कई स्थलों पर भी सुबन्धु का बाण पर प्रभाव स्पष्ट लक्षित होता है ।

अलंकृत गद्य साहित्य का तृतीय और सर्वोत्कृष्ट कलाकार बाण है । जिस समय बाण ने साहित्य जगत् में पदार्पण किया उस समय तक सुबन्धु की वासवदत्ता पर्याप्त लोकप्रिय हो चुकी थी, जैसा कि बाण ने स्वयं हर्षचरित में कहा है ।

"कवीनामगलद्दर्पो नूनं वासवदत्तया
शरत्येव पाण्डुपुत्राणां गतया कर्णगोचरम् ।"

इस लिए बाण ने सुबन्धु को मात करने के लिए जहां कहीं कहीं चमत्कृति तथा श्लेष, परिसंख्या, विरोधाभास और अनुप्रास आदि को अपने काव्य में स्थान दिया है—वहां एक श्रेष्ठ कलाकार की भान्ति भावपक्ष को भी अक्षुण्ण रखा है । कथा प्रवाह तो बाण का भी शिथिल है—परन्तु वर्णनों की पूर्णता, स्फीतता और विविधता, पर्यवेक्षण की अद्भुत क्षमता, पात्रचित्रण की सजीवता, शैली की विषयानुरूपता, सम्पूर्ण मानवीय भावों की अभिव्यक्ति, अनुभूतिपुष्ट पाण्डित्य और अनुभवजन्य सूक्तियां, शब्दों का सुगुम्फन, अलंकारों का औचित्य, सजीव प्रकृति वर्णन तथा रस का परिपाक, आदि विशेषताओं में संस्कृत के गद्य साहित्य क्या सम्पूर्ण संस्कृत वाङ्मय में बाण सर्वातिशायी सिद्ध होता है ।

बाण के वर्णन पूर्ण एवं स्फीत है । हर्षचरित का धवलगृह वर्णन, कादम्बरी का उज्जयिनी और जाबाल्यश्रम वर्णन तथा अनेकों अन्य वर्णन इस वैशिष्ट्य से युक्त हैं । उदाहरणार्थ जाबाल्याश्रम वर्णन लिया जा सकता है ।

सर्वप्रथम बाण ने आश्रम के पार्श्वस्थ काननों, तदवस्थितवृक्षों, प्रान्त भागों एवं उपकण्ठों का वर्णन किया है ।

फिर दीर्घिकाओं, वनलताओं, पादपों, विटपों, उटजों, एवं फलों का वर्णन किया है ।

तत्पश्चात अध्ययनतत्पर ब्रह्मचारियों, बालशुकशारिकाओं, अरण्यकुक्कुटों कलहंसों एवं एणीमृगों का वर्णन किया है ।

इस के बाद में तोड़े गए नारियल से स्निग्ध शिलातल, वल्कल, भोजनभूमि, वानरों की सहायता से निष्क्रमण और प्रवेश करते अन्धतापस, मृणाल शकल, हरिणों द्वारा सींगों से उत्खनित कन्दमूल, विटपो के आलवाल भरते हुए हाथी, शालूक युक्त वराह, पंखों से अग्नि प्रज्वलित करते हुए मोर, अमृत चरु की गन्ध, अर्धपक्व पुरोडाश की गन्ध, आज्यदीप्त अग्नि की हुंकार, अतिथि सेवा, पितृपूजन, हरिहर पितामह पूजन, श्राद्ध कल्प का उपदेश, यज्ञविद्या की व्याख्या, धर्मशास्त्र की आलोचना, पुस्तक वाचन, शास्त्रार्थ विचारण, पर्णशाला निर्माण, प्रांगणलिम्पन, उटजाभ्यन्तर-संमार्जन, ध्यान-बन्धन, साधना, योगाभ्यास, देवबलि का उपहरण, मौञ्जमेखला का निष्पादन, वल्कल का प्रक्षालन, समिधाओं का संग्रह, कृष्णमृग की खाल का संस्कार, धान्यों का निग्रहण, पुष्कर बीजों का सुखाना, अक्षमालाओं का गूम्फना, वेत्रदण्डों की स्थापना, परिव्राजकों का सत्कार एवं कमण्डलुओं का भरना आदि वर्णित है—

उपरोक्त वर्णन से स्पष्ट है कि बाण ने एक सफल चित्रकार की भांति आश्रम के रेखाचित्रों और सीमाओं को पहले खींचा है । इसके बाद धीरे-धीरे वह आश्रम के भीतर घुसता चला गया है और ब्योरेवार आश्रम के कृत्यों को चित्रित किया है । आश्रम से सम्बद्ध कोई ऐसी वस्तु व क्रिया नहीं जो बाण की दृष्टि से ओझल हुई हो या बाण की तूलिका ने जिसे उभारा न हो । वर्णन के अन्त में चित्र को रंगीनी प्रदान करने के लिए श्लेष, उत्प्रेक्षा और परिसंख्या अलंकारों की सज्जा भी प्रस्तुत की है ।

अब यदि हम सम्पूर्ण गद्य साहित्य पर दृष्टिपात करें तो हमें पता चलेगा कि न तो दण्डी ने इतने पूर्ण एवं स्फीत वर्णन किये है और न ही सुबन्धु ने । सुबन्धु आरम्भ में ही अलंकारों की ओर झुक जाता है—पर बाण एक सच्चे कलाकार की भान्ति पूरी प्रामाणिकता से वर्णन कर चुकने के उपरान्त ही अलंकारों का आश्रय लेता है । गद्य लेखक क्या, सम्पूर्ण संस्कृत साहित्य में एक भी ऐसा कवि नहीं जिस ने इतने पूर्ण एवं स्फीत वर्णन किए हों ।

बाण के वर्णन जितने स्फीत और पूर्ण है उतने ही विविध भी हैं । विन्ध्याटवी हो या उज्जयिनी नगरी, राजद्वार हो या शिवसिद्धायतन, भुक्तास्थान मण्डपस्थ हर्ष का वर्णन हो या भैरवाचार्य का वर्णन, राजभवन हो या दिवाकर मित्र का आश्रम,

मन्दाकिनी हो या अच्छोदसर, घुड़साल हो या दर्पशात गजराज का वर्णन हो, संध्या का वर्णन हो या रात्रि का, मध्याह्न हो या प्रभात, ग्रीष्म हो या शरद्—अश्वारूढ़ मालती हो या चाण्डालकन्या, श्रीकण्ठ जनपद हो या वनग्राम, सूतिकागृह हो या गुफा हो, शव यात्रा हो या विवाह् मंगल आसर्वत्रगम्भीर और कविता विन्ध्याटवी चातुरी संचारी पंचानन बाण अव्यवहित गति से बढ़ता ही जाता है । वर्णनों की स्फीति के सदृश ही वर्णनों की विविधता में भी बाण गद्य साहित्य ही नहीं सम्पूर्ण संस्कृत साहित्य में अप्रतिम है ।

बाण की पर्यवेक्षण शक्ति भी अनुपम है । सूक्ष्म से सूक्ष्म बातें भी बाण की दृष्टि से नहीं बची । पर्यवेक्षण में बाण दण्डी व सुबन्धु से तो अधिक पैना है ही शेष संस्कृत साहित्य में भी वह किसी से कम नहीं । यदि अजगर के स्वेद द्रव को पीते हुए प्रति-सूर्य्यको के वर्णन, तथा वृक्ष की छाया में बैठे पक्षियों द्वारा कीड़ों के निष्कोषण आदि भवभूति के वर्णन उसकी पर्यवेक्षण शक्ति के उदाहरण के रूप में प्रस्तुत किए जाते हैं तो बाण ने भी इस जैसे अनेकों उदाहरण अपनी कृतियों में प्रस्तुत किए हैं । ग्रीष्म ऋतु में दावाग्नि ताप से फूटे हुए चिड़ियों के अण्डों में संलग्न कीड़ों के पुटपाक सदृश गन्ध का वर्णन एवं जरद्द्रविड़ धार्मिक के गुप्त कृत्यों का उद्घाटन बाण जैसा निरीक्षक ही कर सकता है ।

पात्रों के चरित्र का चित्रण भी बाण ने अद्भुत क्षमता से किया है । हर पात्र का व्यक्तित्व इतनी चातुरी से उभारा है कि वह हमारी आंखों के आगे सजीव हो उठता है । परिणत प्रगुणसाल प्रकाण्ड-प्रांशु अर्थात् पके हुए और सीधे साल वृक्ष के स्कन्ध के सदृश उन्नत सिंहनाद का व्यक्तित्व एवं स्वाभाविक गर्व से उत्पन्न गम्भीर्य से युक्त होते हुए भी मानो आदेश दे रहे स्कन्दगुप्त का व्यक्तित्व केवल एक स्थान पर सीमित होते हुए भी पाठक के ऊपर अपनी सजीवता की छाप लगा देता है । नारी पात्रों में तप:पूतवैधव्य की साकोश साकार प्रतिमा महाश्वेता और मुग्धता में मदालस कादम्बरी के चरित्र-गत भेद और अन्तर को बाण ने इतना उभार कर प्रस्तुत किया है कि उनके नखशिख के वर्णन मात्र से ही यह व्यक्तित्व का पार्थक्य पाठक को स्पष्टत: प्रतीत होने लगता है । महाश्वेता, कादम्बरी और चाण्डालकन्या के केशों का वर्णन उदाहरणार्थ लिया जा सकता है—

महाश्वेता :—स्कन्धावलम्बिनीभिश्चयतटगतार्कबिम्बावुद्धृत्य बालरश्मिभरित निर्मिताभिरुन्मिषत्त्रिवलततेजरताभिरचिरस्नानावस्थितविरलवारिकणतया प्रणाम-लग्नपशुपतिचरणभस्मपूर्णाभिरिव जटाभिरुद्भासितशिरोभागाम् ।

कादम्बरी :—सीमन्तचुम्बिनश्चूडामणेः क्षरतांशुजालेन मदिरारसेनेव प्रक्षाल्यमान-दीर्घकेशकलापाम् ।

इसी प्रकार चाण्डालकन्या के केशों के विषय में—**प्रावृषमिव धनकेशजालाम्** कहा है ।

महाश्वेता के गीले केशों में लगी भस्म की संभावना जहां श्रद्धा के भाव उत्पन्न करती है वहां चूड़ामणि की प्रभा रूपी मदिरा जल से प्रक्षालित कादम्री का केश कलाप मादकता झलकाता है और चाण्डाल कन्या के केश कलापों में वर्षाकालीन निबिड़ता और मलिनता झलकती है ।

चरित्र-चित्रण में भी बाण किसी से कम नहीं । चरित्र-चित्रण के लिए दण्डी की प्रशंसा की जाती है परन्तु दण्डी के पात्र प्रायः एक ही तरह का आचरण करते हैं—प्रायः वर्ग प्रतिनिधि के रूप में उनका चित्रण है और वह भी पुनरावृत्त है—दण्डी के नारी पात्रों का आचरण भी सर्वत्र एक ही तरह का मिलता है । व्यक्तित्व के पार्थक्य का विकास दण्डी ने कहीं किया ।

इसी प्रकार पात्रों की विविध मनोदशाओं को बाण ने बड़ी स्वाभाविकता से चित्रित किया है । योग हो या वियोग, आशा हो या निराशा, हर्ष हो या विषाद, हास्य हो या रुदन—कोई भी—ऐसा भाव नहीं जिसे बाण ने पूरी तन्मयता से चित्रित न किया हो । प्रेम की विभिन्न दशाओं का वर्णन तो बाण ने अत्यन्त मार्मिक ढंग से किया है । पुण्डरीक को देखने पर विह्वल हुई महाश्वेता की प्रतिक्रिया तथा चन्द्रापीड को देखने पर हुई कादम्बरी की मनोदशा का अलंकृत वर्णन संस्कृत साहित्य में अनूठा है ।

बाण ने प्रकृति के विविध रूपों को—सजीवता, स्वाभाविकता, कलात्मकता, अलंकरण, सौंदर्य, वैचित्र्य, आदर्शीकरण तथा अकौकिकता प्रदान की है । कादम्बरी में तो कथावस्तु की घटनास्थली भी अधिकांशतः प्रकृति की गोद ही है । इसलिए बाण को विस्तार से प्रकृति-वर्णन करने का अवसर वहां मिला है । वन, ग्राम, वृक्ष, अटवी, सरोवर, आश्रम, प्रभात, मध्याह्न, सन्ध्या, रात्रि, चन्द्रोदय, अन्धकार, ग्रीष्म, वर्षा, शरद्, वसन्त, दावाग्नि, झंझावात, एवं उत्पातादि—स्थान और समय-परिवर्तन से सम्बद्ध प्रकृति के विविध रूप बाण ने पूर्णता से अपनी दोनों कृतियों में प्रस्तुत किए हैं ।

बाण की रुचि यद्यपि वैचित्र्य की ओर अधिक है तथापि प्रकृति के स्वाभाविक वर्णन भी प्रचुर मात्रा में मिल जाते हैं । दिवाकर मित्र के आश्रम के मार्ग में आए वृक्षों के वर्णन का आरम्भिक अंश बिल्कुल स्वाभाविक और अनलंकृत है । यथा—

अनवकेशिनः कुड्मलितकर्णिकाराः, प्रचुरचम्पका, स्फीत फलेग्रहयः, फलभर-

नमितनमेरवः, नीलदलनलदनारिकेलनिकराः, करिकेसरसरलपरिकराः कोरकनिकुरम्ब-रोमाञ्चितकुरबक राजयः—आदि ।

विंध्याटवी का वर्णन कहीं स्वाभाविक और कहीं कलात्मक है—स्वाभाविक वर्णन में वह **'मदकलकुररकुलदश्यमानमरिचपल्लवा' तथा करिकलभकरमृदिततमालकिसल यामोदिनी'** कही गई है । कलात्मक वर्णन में—तोतों के समूह से फाड़े गए दाडिम के फलों के रस से गीले तलों वाले, अत्यन्त चंचल वानरों से हिलाए गए कक्कोलों से गिरे पत्तों और फलों से चितकबरे, निरन्तर गिरती हुई पुष्प-धूलि से पांसुल, पथिकों द्वारा लवङ्ग लता के पत्तों से बनाए गए बिस्तरों से युक्त, अत्यन्त कठोर नारियल, केतकी, करीर, बकुलों से व्याप्त सीमा भाग वाले, ताम्बूल लता से बन्धे पूग खण्ड से शोभित वनश्री के आवासगृह सदृश लतामण्डपों से व्याप्त—आदि वर्णन लिए जा सकते हैं । अन्त में श्लेषालंकार के माध्यम से अलंकृत वर्णन इस प्रकार किया गया है ।

गिरितनयेव स्थाणुसंगता, मृगपति सेविता च; जानकीव प्रसूत कुशलवा निशाचर परिगृहीता च—आदि ।

अगस्त्य के आश्रम का वर्णन करते हुए तात्कालिकी प्रकृति को राम के विगत सम्पर्क से प्रभावित और उसके वियोग में दुःखी दिखाया गया है—'चिरकाल से शून्य जिस आश्रम में आज भी शाखाओं पर बैठे मूक श्वेत कपोतों की पंक्तियों से युक्त वृक्ष, तपस्वियों द्वारा किए गए अग्नि होमों से उद्भूत स्वच्छ धूम्रपंक्तियों से व्याप्त से दिखाई देते हैं । बलि कर्म के लिए फूलों को तोड़ती हुई सीता के हाथ से निर्गत राग लताओं के किसलयों में चमकता है और जहां राम से फैंके गए तीक्ष्ण बाणों के समूह से मारे गए राक्षसों की सेना के बहते हुए रक्त से सिंची हुई जड़ों वाले नए पत्तों से युक्त वन आज भी उस लालिमा को लेकर निकले हुए पत्तों से युक्त हैं । आज भी वर्षाकाल में नए बादलों के गम्भीर गर्जन को सुन कर भगवान राम के धनुष की त्रिलोक व्यापी टंकार को मानों याद करते हुए, निरन्तर आंसुओं से व्याकुल दृष्टि वाले बुढ़ापे में विशीर्ण हुए सींगों के अग्रभाग वाले, जानकी से पाले गए बूढ़े हो चुके हरिण, दशों दिशाओं को शून्य देख कर घास को नहीं खाते ।'

कहीं-कहीं प्रकृति और मानव जीवन परस्पर घुलामिला दिखाया गया है जैसे जाबाल्याश्रम वर्णन में—

परिचित वानरों के हाथों से खींचे गए बूढ़े अन्धतापसों का प्रवेश और निष्क्रमण, ऋषियों के निमित्त मृगों द्वारा सींगों से कन्दमूलों का उत्खनन, जल से पूर्ण सूंडों द्वारा वन्यहाथियों से वृक्षों के आलवालों का भरना, ऋषि पुत्रों द्वारा वराह की दंष्ट्रा के

बीच में स्थित शालूक को खींच कर निकालना, परिचित मोरों द्वारा पंखों से होमाग्नि को प्रज्वलित करना—आदि।

कई स्थानों पर बाण ने प्रकृति को भावपूर्ण चित्रित किया है। कादम्बरी द्वारा प्रेषित उपहार की प्राप्ति से पुष्ट प्रणय की रागात्मकता को तात्कालिक संध्या वर्णन में भी दिखाया गया है—

रविविरह मीलितसरोज संहतिषु; हरितायमानेषु कमलवनेषु, श्वेतायमानेषु कुमुद खण्डेषु, लोहितायमानेषु विद्रुमखेषु, नीलायमाने शर्वरीमुखे, तत्काल विजृम्भितेन च कादम्बरीहृदयरागसागरेणेवापूरिते संध्यारागेण जीवलोके, दिक्करिकरावकीर्ण सीकरासार इव श्वेतायमानतारागणे गगने—आदि।

इसी प्रकार हर्ष और राज्यवर्द्धन के मिलाप के उपरान्त का सूर्यास्त वर्णन भी दोनों भाइयों की मनः स्थिति के अनुरूप किया गया है।

कुछ एक स्थलों पर बाण ने प्रकृति का वर्णन घटना की स्थिति के अनुरूप किया है। प्रभाकर वर्द्धन की मृत्यु के पश्चात का सूर्यास्त वर्णन इसी प्रकार का है—'इस बीच में सूर्य अपने तेज से हीन हो गया, राजा के प्राणों को हरने के निजापराध से मानों लज्जित हुआ अधोमुख हो गया, राजा के निधन की शोकाग्नि से संतप्त हृदय के कारण ताम्रवर्ण हो गया, अप्रिय प्रश्न के उत्तर का परिहार करने के निमित्त सांसारिक प्रथानुसार आकाश से नीचे उतर आया, राजा को जलांजलि देने की इच्छा से मानों पश्चिम पयोधि के समीप चला गया।' इस के बाद का प्रकृति-वर्णन भी पूर्णतः शोकाभिभूत है। इसी प्रकार राजा की अन्त्येष्टि क्रिया के बाद रात्रि भर जागने के बाद जो प्रभात का वर्णन है वह घटना से उत्पन्न हर्ष की मनः स्थिति से पूर्ण तादात्म्य रखता है—जैसे '**शुचेव मुक्तकण्ठमारटत्सु कृकवाकुकुलेषु**—इत्यादि।

बाण ने कुछ एक स्थानों पर प्राकृतिक वर्णन द्वारा वातावरण की भी सृष्टि की है। प्रभाकर वर्द्धन की शव यात्रा के समय का प्राकृतिक वर्णन शव यात्रा के अनुरूप भीषण वातावरण की सृष्टि करता है—'आकाश में फैलती हुई लालिमा से पाटल सन्ध्या मानो शव-पताका थी। दृष्टि को रुद्ध करने वाली अन्धकार की परतें मानो शव शिविका में अलंकरण निमित्त लगाए गए काले चंवर थे, रात्रि मानो काले रंग के चन्दन की लकड़ी से रचित चिता थी। वृक्षों के शिखरों पर बने घौंसलों में छिपे पक्षियों के समूह का अव्यक्त शब्द मानो देव विमान की घंटियों का सतत-शब्द था, पूर्व दिशा में चन्द्रमा का उदय मानों स्वर्ग के लिए प्रस्थान करने वाले राजा के सम्मान में उठे इन्दु का छत्र था।'

प्रकृति को अलौकिक रूप में भी बाण ने कई स्थानों पर चित्रित किया है। कादम्बरी में अच्छोद सरोवर के दक्षिण तीर का वर्णन इसी कोटि का है यथा—**विद्याधरोद्धृतसनालकुमुदकलापाविततानेकवारसंकेतलिङ्गम्, अरुन्धतीदत्तार्घवयःपर्यस्त रक्तकमलशोभितम् अन्वर्गतया कैलासत्य स्नानागत मातृमण्डलपदपंक्तिमुद्राङ्कितम्, अवकीर्णभस्मसूचितमग्नोत्थितगणकदम्बकोद्भूलनम्, अवगाहावतीर्णगणपतिगण्डस्थल-गलितमदप्रस्रवणसितम् अतिप्रमाणपादानुमीयनानतुषितकात्यायनीसिंहावतरणमार्गम् दक्षिणतीरमासाद्य तुरगादवततार।'** इसी प्रकार हर्षचरित में मन्दाकिनी का वर्णन भी अलौकिक है।

बाण ने प्रकृति को आदर्श रूप में भी कई स्थलों पर चित्रित किया गया है। दिवाकर मित्र सहित उसके आश्रम का वर्णन इसी प्रकार का है। जाबाल्याश्रम वर्णन में भी प्रकृति को आदर्श रूप में प्रस्तुत किया है—जैसे—'खिले हुए कमल-वन के आकार सदृश, उदय हो रहे सैंकड़ों सुन्दर चन्द्रमाओं के तुल्य, हरिण की आंख की कान्ति के समान चितकबरे,नई हरी घास तुल्य—मोरों के समूह में घास से संतप्त सांप निःशंक प्रवेश कर रहा है। मां को छोड़ कर, अनुलग्नकेसर वाले शेर के बच्चों के साथ परिचित हिरण का बच्चा बहती हुई दूध की धारा से युक्त सिंही के स्तनों का पान कर रहा है। कमल-दण्डों के समूह की शंका करते हुए हाथियों के बच्चों द्वारा सटाओं का खींचा जाना, मीलित नेत्र शेर बहुत अच्छा समझता है। चापल्य-हीन बानरों का यह समूह यहां स्नातकमुनि कुमारों के लिए फल ला रहा है। उत्पन्न हुई दया-वाले वे मदान्ध हाथी गण्डस्थल पर स्थित मद के वारि को पीने में स्थिर हुए भंवरों को श्रवण चपेटों से नहीं हटाते।'

कुछ एक स्थानों पर प्रकृति प्रेरित करती हुई चित्रित की गई है—और वहां उस का रूप उद्दीपन प्रकृति से कुछ भिन्न है। मां के साथ अच्छोदसर पर स्नान करने आई महाश्वेता को बसन्त ऋतु का प्रसार आगामी प्रणय प्रसंग के प्रति प्रेरित करता हुआ सा चित्रित है।

प्रकृति के अशुभ, भीषण उत्पातात्मक रूप को भी बाण ने कुछ एक स्थानों पर चित्रित किया है। 'डोल रहे सम्पूर्ण कुल पर्वतों के समूह से युक्त पृथ्वी मानों स्वामी के साथ जाने की इच्छुक होती हुई पहले ही चल पड़ी (कांप गई), उस समय मानों धन्वन्तरि को याद करते हुए, आपस में टकराती हुई लहरों से युक्त सागर क्षुब्ध हो उठे। राजा के नाश से डरी हुई दिशाओं के केश पाशों के सदृश-फैलती हुई आग की लपटों के समूह से उन्नत एवं टेढे धूमकेतु उठने लगे, धूमकेतुओं से भीषण बनी

दिशाओं से युक्त लोक मानो दिग्पालों से आरम्भ किए गए आयुष्काम होम के धूएँ से धूसरित हो गया—आदि'—

उपर्युक्त प्रकृति विषयक विवरण से स्पष्ट है कि बाण ने प्रकृति को अनेक रूपों में चित्रित किया है । प्रकृति को इतने विविध रूप प्रदान करने वाला कोई गद्यकार नहीं हुआ । शेष संस्कृत साहित्य में भी कालिदास को छोड़ अन्य कोई कवि प्रकृति-वर्णन की विविधता में बाण के समक्ष खड़ा नहीं हो सकता और कालिदास भी बाण जितने विस्तृत पैमाने पर प्रकृति के वर्णन नहीं दे पाया चाहे इस का कारण उसकी कृतियों का पद्यबद्ध होना ही रहा है ।

शब्द योजना और शैली की दृष्टि से भी बाण गद्य काव्य में ही नहीं सम्पूर्ण संस्कृत-साहित्य में अप्रतिम है । उस के वर्णन, पात्र चित्रण, प्रकृति वर्णन, और संवाद अपने शैलीगत वैशिष्ट्य के कारण अनुपम हैं । बाण की शब्दयोजना और शैली के विषय में विस्तार से कहना अप्रासंगिक न होगा ।

बाण ने संश्लिष्ट वर्णनों में सर्वत्र लम्बे २ समासों का प्रयोग किया है—इस के अतिरिक्त अन्य प्रसंगों का ब्योरा कुछ विस्तार से नीचे दिया जाता है—

बाण ने जहाँ पात्र की विकल्पात्मक स्थिति को अथवा अनेक सम्भावनाओं को प्रस्तुत करना होता है—वहां पर वह एक एक करके अनेकों स्थितियों की उद्भावना कर तथा 'इति' शब्द लगा कर फिर उनका निराकरण करता जाता है । बाण को ऐसी शब्द योजना में रुचि थी । कादम्बरी चन्द्रापीड को लक्ष्य करके कुछ सन्देश देते समय विविध विकल्प करती हुई इस प्रकार बाण द्वारा उपर्युक्त शैली में व्यक्त की गई है—**'अतिप्रियोऽसीति पौनरुक्त्यम्, तवाहं प्रियात्मेति जडप्रश्नः, त्वयि गरीयानुराग इति वेद्यालापः, त्वया विना न जीवामीत्यनुभवविरोधः, परिभवतिमामनङ्ग इत्यात्मदोषोपालम्भः'**—इत्यादि ।

इस वर्णन में सन्देश देने में संकोच करने वाली मुग्धा कादम्बरी की मनोदशा को उद्घाटित करने की पूर्ण शक्ति है । इसी प्रकार हर्षचरित के अष्टमोच्छ्वास में राज्यश्री को आग में प्रवेश करती हुई देख कर भिक्षु उस के प्रति उपयुक्त सम्बोधन का निश्चय न कर विविध विकल्प इसी शैली में प्रस्तुत करता है—**वत्से इति अतिप्रणयः, मातः इति चाटु, भगिनी इति आत्मसम्भावना, देवि इति परिजनालापः**—आदि । यह वर्णन पहले वर्णन जितना प्रभावी नहीं ।

हर्षचरित के षष्ठोच्छ्वास में हर्ष राज्यवर्द्धन के साथ जाने की इच्छा व्यक्त करता हुआ उसकी पुष्टि के निमित्त इसी शैली में निम्न ढंग से कहता है—**'यदि बाल इति**

नितरां तर्हि न त्याज्योऽस्मि, रक्षणीय इति भवद्भुजपञ्जरं रक्षास्थानं, अशक्त इति क्व परीक्षितोऽस्मि, संवर्द्धनीय इति वियोगः तनूकरोति आदि ।

बाण ने इवाचरति अर्थ व्यक्त करने वाले नामधातुओं के प्रयोग-माध्यम से भी कुछ वर्णन किए हैं—कादम्बरी के भवनमार्ग का वर्णन इसी प्रयोग से किया है—जैसे—पुलिनायमानमुपवनलतागलितकुसुमरेणुपाटलैः आदि । इसी प्रकार दुर्दिनायमानम्, नीहारायमाणम्, काञ्चनद्वीपायमानम्, लीलाशोकवनायमानम्, रागरसायमाणम्, विवसायमानम्, चन्द्रलोकायमानं, प्रियंगुलतायमानं, लोहितायमानं, धवलायमानं, हरितायमानं—आदि का भी प्रयोग वहीं पर किया गया है ।

एक स्थल पर संध्या के वर्णन में भी इसी ढंग का आश्रय लिया गया है—जैसे—

हरितायमानेषु कमलवनेषु, श्वेतायमानेषु कुमुदखण्डेषु, लोहितायमानेषु विद्रुमखेषु—आदि ।

चन्द्रापीड के मार्ग में आए प्रातःकाल के वर्णन में भी इसी शैली का आश्रय लिया गया है—पर वहां कर्मवाच्य में शानच् का प्रयोग किया गया है—जैसे—'वयः संघातै उत्सृज्यमानेषु निवासपादपेषु, मुच्यमानासूषरक्षस्थ्यासु धवलायमानासु ग्रामसीमान्तारण्यस्थलीषु, आलोक्यमानजनपदनिर्गमेषु, प्रसूयमानेष्विव ग्रामेषु, उन्नाम्यमान इव पूर्वं दिग्भागे, समुत्सार्यमाणास्विवाशासु, विस्तार्यमाणास्विवग्रामसीमासु—आदि ।

किसी पात्र अथवा लोगों के गुणों का उल्लेख करते हुए बाण ने विरोधाभास अलंकार का प्रायः सर्वत्र प्रयोग किया है—जैसे शूद्रक के वर्णन के अन्त में— एकदेशस्थितमपि व्याप्तभुवनमण्डलम्, आसने स्थितमपि धनुषि निषण्णम्, उत्सादितद्विषदिन्धनमपि ज्वलत्प्रतापानलम्, आयतलोचनमपि सूक्ष्मदर्शनम्, महादोषमपि सकलगुणाधिष्ठानम्, कुपतिमपि कलत्रवल्लभम्—आदि ।

इसी प्रकार उज्जयिनी नगरी के लोगों के गुण वर्णन में इसी ढंग का आश्रय लिया है ।

वीरेणापि विनयवता, प्रियवदेनापि सत्यवादिना, अभिरूपेणापि स्वदारसन्तुष्टेन, अतिथिजनाभ्यागतार्थिनापि परप्रार्थनानभिज्ञेन, कामार्थपरेणापि धर्मप्रधानेन, महासत्त्वेनापि परलोकभीरुणा'—

हर्ष चरित के षष्ठोच्छ्वास में स्कन्दगुप्त के गुणों का वर्णन भी इसी कोटि का है—यथा ।

'अरिपक्षपरिक्षयपरित्यक्तकार्मुककर्मापि सकलदिगन्तश्रूयमाणगुरुगुणध्वनिः,

आत्मस्थसमस्तमत्तमातङ्गसाधनोऽप्यस्पृष्टो मदेन, भूतिमानपि स्नेहमयः पार्थिवोऽपि गुणमयः' आदि ।

बाण की शैली और शब्द योजना विषयानुकूल है—जहां ऋतुओं का वर्णन अथवा चित्रात्मक वर्णन है वहां बाण ने प्रायः दीर्घ समास वाली उत्कलिका शैली को अपनाया है और जहां कोई भावनात्मक, संवेदनात्मक,—गम्भीर मार्मिक स्थल है वहां बाण ने समास रहित आविद्ध शैली को अपनाया है। इसी विषयानुकूल शब्दयोजना को पांचाली रीति कहते हैं। वसन्त का वर्णन दीर्घ समास वाली शैली में इस प्रकार से किया है।

उत्फुल्लपल्लवलवलीलीयमानमत्तकोकिलोल्लसितमधुश्रीकरोद्दामदुर्दिनेषु, प्रोषितजनजायाजीवोपहारहृष्टमन्मथास्फालितचापरवभयस्फुटितपथिकहृदयरुधिराद्रीकृतमार्गेषु— आदि ।

महाश्वेता के विलाप का प्रसंग करुण होने के कारण अत्यन्त छोटे छोटे वाक्यों में समास रहित शैली में वर्णित हैं।

'कि मे गृहेण, किमम्बया, किं वा तातेन, किं बन्धुभिः, किं परिजनेन, हा कमुपयामि शरणम् । मयि दैव दर्शय दयाम् । विज्ञापयामि त्वाम् । देहि वयितवक्षिणा भगवति भवितव्यते-। कुरु कृपाम् पाहि वनितानाथाम् । भगवत्यो वनदेवताः प्रसीदत । प्रयच्छ तास्य प्राणान्'—आदि

बाण के वर्णनों की शैली के प्रायः तीन रूप मिलते है, पहला रूप है वर्णनात्मक अथवा विवरणात्मक दूसरा रूप है चित्रात्मक और तीसरा है चमत्कृत अथवा वैचित्र्य युक्त। स्वाभाविक एवं अनलंकृत वर्णन बाण को अभिप्रेत नहीं थे । तो भी एकाध स्वाभाविक वर्णन बाण की कृतियों में मिल जाता है —जैसे राज्यश्री के विवाहोत्सव का वर्णन है—'सकलदेशादिश्यमानशिल्पिसार्थगमनम्, अवनिपालपुरुषगृहीतसमग्रग्रामीणानीयमाणोपकरणसंभारम्, राजद्वारिकोपनीयमानानेकनृपोपायम्, उपनिमन्त्रितागतबन्धुवर्गसंवर्गणव्यग्रराजवल्लभम्.....उच्चित्रनेत्रपटवेष्ट्यमानैश्च स्तम्भं उज्जवलं रमणीयं चौत्सुक्यं मांगल्यं चासीद्राजकुलम्—'

कदाचित् बाण की दोनों कृतियों में यही एक ऐसा वर्णन है जहां बाण ने सारे के सारे वर्णन में किसी अलंकार का कहीं प्रयोग नहीं किया, उत्प्रेक्षा तक का भी नहीं।

वर्णन शैली का चित्रात्मक रूप अधिकांशतः प्रकृति वर्णन में ही मिलता है और इसकी शैली के प्रयोग में भी बाण सिद्धहस्त है—हर्ष चरित के प्रथमोच्छ्वास का सन्ध्या-वर्णन इसी कोटि का है—

जलदेवतातपत्रे पत्ररथकुलकलत्रान्तःपुरसौधे, निजवपुमधुरामोदिनि कृतमधुपमुदित्-मुमुदिषमाणे कुमुदवने, संकोचोदञ्चद्गुच्छकेसरकोटिसंकटकुशेशयकोशकोटरकुटीशायिनि षट्चरणचक्रे, प्रतनुतुहिनकिरण-किरणलावण्यालोकपाण्डुनि, आश्यानतनीलनीरमुक्त कालिन्दीबालपुलिनायमाने, शातक्रतवे कशयति तिमिरमाशामुखे' आदि—

यहाँ जलदेवता के आतपत्र की कल्पना से कुमुदवन का चित्र कितना प्रत्यक्ष हो जाता है, इसी प्रकार जलविहीन कालिन्दी के सूखे तट की कल्पना से चन्द्रोदय से आलोकित पूर्वदिशा का चित्र और भी स्पष्ट और स्फुट हो जाता है । इसी सान्ध्य वर्णन में बाण की चमत्कृत अथवा वैचित्र्ययुक्त शैली के भी दर्शन होते हैं

बाण अलंकारवादी कवि थे । इसलिए उन के काव्यों में यत्र तत्र अलंकारों का भी समुचित प्रयोग हुआ है । यद्यपि बाण ने अलंकारों का पर्याप्त मात्रा में प्रयोग किया है तो भी सुबन्धु के असदृश कथा—प्रवाह और रस की बलि नहीं दी । बाण ने प्राय: उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक, श्लेष, विरोधाभास और परिसंख्या—इन छ: अलंकारों का ही प्रयोग है । सर्वाधिक प्रयोग उत्प्रेक्षा का है । शुकनासोपदेश में उपमा, उत्प्रेक्षा रूपक और श्लेषालंकार का बहुत सुन्दर प्रयोग हुआ है । अन्यत्र विरोधाभास और परिसंख्या का भी सुन्दर प्रयोग बाण ने किया है ।

अलंकारों के प्रयोग में बाण संस्कृत के किसी कवि से पीछे नहीं । सुबन्धु ने यदि दो बार परिसंख्या का प्रयोग किया—तो बाण ने भी दो से अधिकबार ही किया है—यदि उसने तीन बार विरोधाभास का प्रयोग किया है तो बाण ने अनेक बार किया है । उपमा और उत्पेक्षा के प्रयोग में भी बाण उस से बहुत बढ़कर है पर श्लेष के प्रयोग में बाण उस से पीछे है । पर बाण के श्लेष प्रयोग से यह स्पष्ट है कि उसका प्रयोग सुबन्धु से घटिया नहीं, मात्रा में चाहे कम है । इस का कारण संभवत: बाण का कथा और रस का श्लेष से संतुलन रखने का आग्रह रहा होगा ।

बाणकी अनुभवजन्य सूक्तियां भी उस के काव्य के लिए सोने पर सुहागे का काम करती हैं । गद्यकारों की कृतियों में प्राय: ऐसी उक्तियों का अभाव है सम्पूर्ण संस्कृत साहित्य में भी उतनी—स्वाभाविकता से प्रसंगनुकूल कही गई सूक्तिों की मात्रा बहुत कम है । जीवन के सार्वभौमिक तथ्यों का उद्‌घाटन करने के लिए बाण ने न तो कालिदास की भान्ति अर्थान्तरन्यास और दीपक का आश्रय लिया है और न ही भारवि तथा माघ के उधारे लिए हुए शास्त्रीय ज्ञान की प्रदर्शनी रूप द्वितीय-सर्गों की सृजना की है । बाण की उक्तियां अपनी सरलता में ही मार्मिक और प्रभावी है—कुछ एक उदाहरण नीचे दिए जाते हैं ।

१. यौवनारम्भे च प्राय:शास्त्रजलप्रक्षालननिर्मलापि कालुष्यमुपयाति बुद्धि ।
२. दुर्लभं हि यौवनमस्खलितम् ।
३. नहि किंचिन्न क्रियते ह्रिया।
४. आशया हि किमिव न क्रियते ।
५. तिमिरोपहतेव यूनां दृष्टिरल्पमपि कालुष्यं महत्पश्यति ।
६. स्नेहलवोऽपि वारिणेव यौवनमदेन दूरं विस्तीर्यते ।
७. बहुमाविणे नहि श्रद्दधाति लोक: । आदि

शुकनासोपदेश का आरम्भिक भाग तो मानों ऐसी उक्तियों का कोश है ।

इस सम्पूर्ण विवरण से स्पष्ट है कि गद्य-काव्य को उपयुक्त समस्त विशेषताओं से समृद्ध करने वाले भट्ट-बाण का स्थान गद्य साहित्य में तो सूर्धन्य है ही, शेष संस्कृत साहित्य में भी यदि कोई उसकी टक्कर का कवि है तो वह है केवल कालिदास और कालिदास भी बाण से कुछ दृष्टियों में समकक्ष और कुछ में आगे होते हुए भी वर्णन के पैमाने की दृष्टि से उस से बहुत पीछे है ।

: ५ :

बाण का गद्य सौष्ठव

किसी भी काव्य के सौष्ठव असौष्ठव का निश्चय करने के लिए तात्कालिक प्रचलित काव्यलक्षणों एवं काव्यसम्बन्धी मान्यताओं की उपेक्षा नहीं की जा सकती। कोई भी कलाकार अपनी समकालीन मान्यताओं की उपेक्षा नहीं किया करता। वह कर ही नहीं सकता। बाणभट्ट के गद्य काव्य भी इसके अपवाद नहीं हैं। आधुनिक आलोचना शास्त्र के अनुसार भले ही हम उनके गद्य में कुछ असौष्ठव के निदर्शन उद्धृत कर देने को तैयार हो जायें, पर यह केवल भूल होगी। बाणकालीन भारत में स्वीकृत मान्यताओं के अनुसार उनके गद्य का मूल्यांकन समुचित होगा। आलंकारिकों के अनुसार—

"ओजः समासभूयस्त्वमेतद्गद्यस्य जीवितम्"

अर्थात् समासभूयस्त्वरूप ओज गुण ही गद्य का प्राण है। यदि समास बाहुल्य आज हमें कुछ कटुता का आभास होने पर विवश करदे तो वह कवि की कलाचातुरी का अगुण अथवा असौष्ठव नहीं है। दोनों युगों की मान्यताओं का मौलिक विच्छेद ही वह केवल है। सम्भव है आज का समालोचक उपमा, उत्प्रेक्षा, श्लेष आदि अलंकारों के सातत्य से ऊबकर लम्बे २ प्राकृतिक दृश्यों के मनहर वर्णन से थक कर उसे उतना सम्मान न दे पाये पर यह उस कृति के असौष्ठव का प्रणाम नहीं माना जा सकता। और फिर बाण का गद्य तो उस काल की मान्यताओं एवं प्राचीन काव्य परम्परा का अनुपम निदर्शन है।

बाण के गद्य का सौष्ठव उसके द्वारा मानवीय भावनाओं को तदनुरूप शाब्दिक कलेवर देकर काव्य संयोजना में, भावपक्ष और कलापक्ष के सुन्दर समन्वय में, वर्णन के अनुरूप अनेकविध गद्य सर्जन की पटुता में ही निहित है। संस्कृत गद्य का कोई भी विद्यार्थी कादम्बरी एवं हर्षचरित में वह रुचिपूर्ण गद्य भावों के प्रवाह के साथ २ उस में भी वैसा ही प्रवाह स्पष्ट रूप से देख सकता है। बाण इस में अत्यन्त निपुण हैं।

विषय के अनुरूप गद्य का गठन उन के गद्य की विशेषता है। बाणभट्ट अपने कथा प्रवाह में जैसा स्थल पाते हैं उसी के अनुरूप सरल अथवा दीर्घवाक्यविन्यास, प्रसाद गुणयुक्त कोमलकान्त पदावली अथवा विकट समास बहुल विशेषण सातत्य की सृष्टि करते हैं। बाण की कादम्बरी में जहां एक ओर विन्ध्याटवी, अच्छोदसर, हिमालय पर्वतों के मनहर प्राकृतिक दृश्य हैं—दूसरी ओर महाश्वेता एवं कादम्बरी की कोमल मानवीय भावनाओं का चित्रण है। जहां एक ओर राजप्रासाद, तथा राजधानी के वैभवपूर्ण जीवन का दर्शन है वहां जाबालि मुनि के आश्रम एवं शिव सिद्धायतन रूप में एकान्त शान्त जीवन का अंकन भी है। यदि सभी स्थलों पर एक जैसी गद्य योजना की गई होती तो काव्य का सौन्दर्य समाप्त हो जाता। बाण ने इन सभी वर्णनों में प्रभवोत्पादकता लाने के लिए तदनुरूप गद्यबन्धन किया है। जहां एक ओर विन्ध्याटवी के वर्णन में समास बहुल एवं ओजोगुणमण्डित गद्य की सृष्टि की है वहां महाश्वेता एवं पुण्डरीक के विरहविधुर हृदयों की कोमलतम भावनाओं का चित्रण प्रसादगुणयुक्त छोटे वाक्यों में किया है। बाण के इस गुण को देखकर कौन सहृदय पाठक हर्षित नहीं हो उठता।

इस प्रकार के गद्यों के निदर्शन रूप में विन्ध्याटवी का यह वर्णन ले सकते हैं—

"अस्ति पूर्वापरजलनिधिवेलावनलग्नामदकलकुररकुलदृश्यमानमरिचपल्लवा, करिकलभकरमुद्वितमालकिसलयामोदिनी, मधुमदोपरक्तकेरलीकपोलच्छविना संचरद्वनदेवताचरणालक्तकरसरंजितेनेव पल्लवचयेन संछादिता, शुककुलदलितदाडिमी फलद्रवार्द्रीकृततलैरतिचपलकपिकम्पितकक्कोलच्युतपल्लवफलशबलैरनवरतनिपतितकुसुमरेणुपांसुलैः पथिकजनरचितलवङ्गपल्लवसंस्तैररतिकठोर नारिकेल केतकी करीरबहुलपरिगतप्रान्तैस्ताम्बूली लतावनद्धपूगखण्डमण्डितैर्वनलक्ष्मीवासभवनैरिव विराजिता लतामण्डपैः।"

महाश्वेता वृत्तान्त में वसन्त ऋतु के वर्णन में भी इसी प्रकार की समास बहुल कोमल पदावली देखी जा सकती है—

"अथ विजृम्भमाणनलिनवनेषु, अकठोरचूतकलिकाकलापकृतकामुकोत्कलिकेषु, कोमलमलयमारुतावतारतरंगितानङ्गध्वजांशकेषु, मधुकरकुलकलककालीकृतकालेयककुसुमकुड्मलेषु, अशोकतरुताडनारणितरमणीनूपुरझंकारसहस्रमुखरेषु, विकसन्मुकुलपरिमलपुञ्जितालिजालमंजुशिञ्जितसुमंगसहकारेषु, आनन्ददायकेषु मधुमास दिवसेषु।"

शिवसिद्धायतन के वृक्षों के चित्रवत् चित्रण में विकटगाढबन्धता दर्शनीय है।—

"उन्मदकोकिलकुलकबलीकृतसहकारकोमलाग्रपल्लवैः, उन्मदवद्चरणचक्रवाल-वाचालितविकचचूतकलिकैः, अचकितचकोरचुम्बितमरिचांकुरैः, चम्पकपरागपुंजपिञ्जर-कपिञ्जलजग्धपिप्पलीफलैः, फलभरनिकटमुग्धनिपीडितदाडिमलीडप्रसूतकलविङ्कैः, जलधर-जललुब्धविप्रलब्धमुग्धचातकध्वानमुखरिततमालखण्डैः, इभकलभकोल्लूनपल्लववेल्लितलव-लीवलयैः, आबलीयमाननवयौवनमत्तपारावत पक्षक्षेपपर्यस्तकुसुमस्तबकैः, पादपैः परिवृतम् ॥"

एक बात ध्यान देने योग्य है इस प्रकार के वर्णनों में इतने विस्तार से विशेषणों का उपस्थापन अस्वाभाविक नहीं है। यदि हम विचार करें तो पूर्ण स्वाभाविक ही प्रतीत होता है। जो प्रकृतिप्रेमी हैं—प्रकृति के उन्मुक्त क्रोड में कुछ क्षण बिताने का जिन्हें सौभाग्य प्राप्त हुआ है वे जानते हैं कि किस प्रकार उस मनोरम दृश्य की एक एक इकाई हृदय को हर्ष विभोर कर जाती है। उसके एक एक अंग पर मन किस प्रकार रम रमकर आगे बढता है। किस प्रकार एक २ अंग के सौन्दर्य की पूरी अनुभूति करता चलता है। इसी प्रकार प्राकृतिक सौन्दर्य का उपासक बाण उस अनुभूतिजाल के एक एक पक्ष को लेकर अपने गद्य रूप चित्रफलक पर अपने कला चातुर्य का प्रदर्शन करता चलता है। अच्छोदसर पर पहुँचते ही उसका हृदय खिल उठता है। भावविभोर हो उसे देखता रहता है। यही अनुभूति उसके इन वाक्यों में प्रस्फुटित हो उठती है।

"आलोकमात्रेणैवापगतश्रमो मनस्येवमकरोत् ..... अहो निष्फलमपि.....अद्य परिसमाप्तमीक्षणयुगलस्य द्रष्टव्यदर्शनफलम्, आलोकितः खलु रमणीयानामन्तः, दृष्टः आह्लादनीयानामवधिः।"

कितने स्वाभाविक रूप में भावों की आभिव्यक्ति है—यहां समास बहुल पदावली न होकर सरल वाक्य ही हैं। इस के अनन्तर उस दृश्य में रम जाने पर उसकी दृष्टि एक एक वस्तु को गम्भीरता से देखती चलती है—गद्य रूप चित्रफलक पर गाम्भीर्य भरे समस्त पदों द्वारा अंकित होती चलती है। कभी वह धूल भरे मार्ग पर तालाब से पानी पीकर गये वन्य सूकरों के पैरों के गीले चिन्ह देखता है। कभी वह पार्श्ववर्ती वृक्षपंक्ति में हो रही गति, परिवर्तन एवं सौन्दर्य को देख कर आत्मविभोर हो उठता है, कुछ गम्भीर हो जाता है। वही गाम्भीर्य समास बहुल पदावली में अंकित होकर रह गया। यही प्रक्रिया विन्ध्याटवी वर्णन में, वसन्त ऋतु के लहलहाते वृक्षों के अंकन में देखी जा सकती है।

बाण के गद्य में इस प्रकार के गम्भीर पदावली के लम्बे वर्णन के साथ साथ छोटे छोटे वाक्यों में, बोलचाल के वाक्यों के रूप में भी यथार्थ चित्रण हुआ है। हर्षचरित में हर्ष की सेना के प्रयाण का दृश्य इस का सुन्दर निदर्शन कहा जा सकता है। वास्तव में बाण का गद्य यथार्थ का चित्रण करता है। उसमें विचारों के विभिन्न प्रवाहों के साथ उसकी स्थिति के अनुरूप ही गद्य बदलता है। एक व्यावहारिक गद्य का निदर्शन देखिये—

हर्ष की सेना प्रयाण कर रही है उसके सैनिकों और साथ में चलने वाले सेवकों के मध्य हुआ संलाप कितना सरल एवं स्वाभाविक बन पड़ा है "अजी चलो भी। भलेमानस ! क्यों देर कर रहे हैं ? अरे घोड़ा तेजी से दौड़ा आ रहा है। भलेमानस ! क्या तुम्हारी टांग टूट गई है जो ऐसे चल रहे हो। सामने से तेजी से आते वाहन तुम्हारे ऊपर चढ़ जायेंगे। अरे ! ऊंट क्यों हांक रहे हो ? अबे निर्दयी ! सोते हुए बच्चे को तुम देख नहीं रहे हो ? बेटे रामिल ! ऐसा न हो कि तुम धूल में खो जाओ इस लिए मेरे नजदीक रहो। अरे ! तिरछी हुई चने की बोरी में से चने गिरते जा रहे हैं, मैं चिल्ला रहा हूं और तुम सुनते नहीं।"

"प्रसर तात ! भाव ! किं विलम्बसे ! त्वङ्गति तुरंगम । भद्र ! भग्नचरण इव संचरसि यावदमी पुरःसरा सरभसमुपरि पतन्ति । वाहयसि किमुष्ट्रम् ? न पश्यसि निर्दय, निःशूक शिशुं शयानम् । वत्स रामिल ! रजसि यथा न नश्यसि तथा समीपेभव । किं न पश्यसि गलति सक्तु प्रसेवकः । अङ्ग ! गलति तिरश्चीना चणक गोणी, गणयसि न मामाटन्तम् । मन्थरक ! खादिष्यसि गतः सम्भ्रमम्, उक्षाणं प्रसारय किय़च्चिरं बिनाति चेट बदराणि दूरं गन्तव्यम् ।"

बाणभट्ट शब्द चित्रों के कुशल चितेरे हैं। अपने किसी भी पात्र के हृदय के अन्तर्द्वन्द को ऐसे सरल शब्दों में कह जाते हैं कि उसका वास्तविक चित्र सा पाठक के हृदय में उतर कर रह जाता है। चन्द्रापीड द्वारा उसके विषय में पूछे जाने पर महाश्वेता के हृदय में कैसी अन्तर्वेदना जाग उठी होगी—विगत स्मृतिजाल ने उसके अन्तस् को किस प्रकार झकझोर दिया होगा—इस का स्पष्ट संकेत उसके हाव भावों के चित्रण से मिल जाता है।

"अपनयतु नः कौतूहलं---आवेदयतु भवती सर्वमिदम्" इत्येवमभिहिता सा किमपि अन्तर्ध्यायन्ती, तूष्णीं मुहूर्तमिव स्थित्वा निश्वस्य, स्थूलस्थूलैरन्तर्गतां हृदयशुद्धिमिवादाय निर्गच्छद्भिः, लोचनविषयं धवलिमानमिव द्रवीकृत्य पातयद्भिः, अवच्छाच्छैः अमलकपोलस्थल स्खलितैः, अयष्टीगेहारमुक्ताफलतरलपातैः, अनुबद्धबिन्दुभिः, व कल्कपकच

शिखर प्रर्जरितसीकरैरश्रुभि: आमीलितलोचना निःशब्द रोदितुमारेभे ।''

इस शब्दचित्र का एक एक शब्द कितना सशक्त है। लगता है महाश्वेता हमारे समक्ष बैठी है। उसके हृदय की अन्तर्वेदना की अनुभूति हमें भी हो रही है। चन्द्रापीड़ के द्वारा विगत बातों को पूछने पर सारी वेदना जाग उठती है—''किमपि अन्तर्ध्यायन्ती, तूष्णीं मुहूर्तमिव स्थित्वा, निश्वस्य'' एक एक शब्द कितना सबल है। उसकी आंखों से ढुलकते स्वच्छ मोती जैसे आंसू सुडौल कपोलों पर से लुढ़क कर बल्कल से ढके उसके उरोजों पर गिरकर बिखर जाते हैं, वह चुपचाप रो रही है ''निश्शब्दं रोदितुमारेभे'' ओह क्या ही कचोट—क्या ही वेदना होगी उसके मानस में।

ऐसे शब्दचित्र बाणभट्ट के गद्य के सौष्ठव के परिचायक हैं। बाण मनोभावों के अंकन में पूरे सफल रहे हैं। कल्पना की तूलिका लेकर विभिन्न शब्द एवं अलंकार रूप विविध वर्णों से भावों का चित्रण उनकी विशेषता है अन्य गद्य कवि का विषय नहीं है।

बाण इस बात से पूरा अभिज्ञ है कि किस प्रकार के भावों को किस प्रकार का शाब्दिक कलेवर दिया जाय। महाश्वेता के भाव, अनुभाव एवं संचारी भावों के अंकन, पुण्डरीक की विरहवेदना के उपयुक्त जो वाक्य और जो गद्यबन्ध हो सकता था वह बाण ने किया है। कपिञ्जल पुण्डरीक की अवस्था से चिन्तित है वह उसे उस मार्ग से किसी तरह लौटा लाना चाहता है। दोनों का सम्वाद बड़ा ही सुन्दर बन पड़ा है—

''सखे पुण्डरीक! सुविदितमेतन्मम। केवलमिदमेव पृच्छामि यदेतदारब्धं भवता किमिदं गुरुभिरुपदिष्टं, उत धर्मशास्त्रेषु पठितम्, उत धर्मार्जनोपायोऽयम्, उत स्वर्गगमनमार्गोऽयम्, उत मोक्षप्राप्तियुक्तिरियम्। मूढो हि मदनेनायास्यते स खलु धर्मबुद्ध्या विषलता सिञ्चति, कुवलयमालेति निस्त्रिंश लतामालिङ्गति।''

पुण्डरीक का उत्तर भी कितना मार्मिक है—

''सखे किं बहुक्तेन सर्वथा स्वस्थोऽसि। आशीविषविषवेगविषमाणामेतेषां कुसुमचाप सायकानां पतितोऽसि न गोचरे। सुखमुपदिश्यते परस्यपरस्य यस्य चेन्द्रियाणि वर्तन्ते, यः पश्यति, शृणोति वा श्रुतमवधारयति वा...मम तु सर्वमेतद् अतिदूरापेतम्।''

नीतिज्ञ शुकनास का उपदेश भी इस प्रकार के गद्य का नमूना है। लक्ष्मी के चाञ्चल्य का परिचय कराता हुआ शुकनास चन्द्रापीड से कह रहा है—

''मदजलदुर्दिनान्धकार गजघटितघनघटापरिपालितापि प्रपलायते—न परिचयं रक्षति, नाभिजनमीक्षते, न रूपमालोकयते, न कुलक्रममनुवर्तते, न शीलं पश्यति, न वैदग्ध्यं गणयति।''

बाण भट्ट के गद्य में अलंकार योजना की ओर बड़ा आकर्षण दृष्टिगत होता है। बाणभट्ट स्वयं अपने काव्य के विषय में, उसमें निबद्ध अद्वितीय कथा के विषय में "'निरन्तरश्लेषघना सुजातयो महास्रजश्चम्पककुड्मलैरिव'' कहा है। यह गद्य कृति जिस में मनहर श्लेषालंकारों का ग्रथन है एक पुष्पमाला के समान है जो सुगन्धित मादक चम्पा की कलियों से ग्रथित है। वास्तव में यह सच है कि बाण के गद्य में अलंकार प्रियता है—अलंकार काव्य के उत्कर्ष के हेतु है—उसमें मनोहारिता के प्राण हैं—

''उत्कर्ष हेतवः प्रोक्ताः गुणालंकार रीतयः।''

परन्तु अलंकारों का संयोजन यदि उपयुक्त वातावरण, उपयुक्त स्थान के अनुरूप होता है तो वह काव्य का सौन्दर्य होता है यदि इसके विपरीत हो तो वही काव्य के अपकर्ष का कारण बन जाता है। बाण के गद्य में शब्दालंकारों एवं अर्थालंकारों की बहुलता है। इसके प्रयोग में एक बात द्रष्टव्य है जहां जहां वर्णन हृदय की कोमल भावनाओं को लेकर हुए हैं—जहां कुछ विचारपूर्ण कथोपकथन हैं वहां बाण ने प्रायः शब्दालंकारों और उपमा, उत्प्रेक्षा आदि सरलतम अर्थालंकारों का प्रयोग किया है। इसके विपरीत जहां वर्णन कुछ गम्भीर है वहां श्लेष विरोधाभास आदि क्लिष्ट अर्थालंकारों का प्रयोग किया है। यह बाण के गद्य की विशेषता है सौष्ठव है।

कादम्बरी के महाश्वेता वृत्तान्त में किये गये अलंकारों का प्रयोग द्रष्टव्य है। महाश्वेता अपने हृदय में अभिव्यक्त संचारी भावों का वर्णन सुन्दर उत्प्रेक्षा में कर रही है—

''साभिलाषं हृदयमाख्यातुकाममिव स्फुरितमुखमभूत्कुचयुगलम्, स्वेदलव लेखा क्षालितेनागलल्लज्जा, मकरध्वजनिशितशरनिपातभयेनेवाकम्पत गात्रयष्टिः, तद्रूपातिशयं द्रष्टुमिव कुतूहलादालिङ्गनलालसेभ्योऽङ्गेभ्यो निरगात् रोमाञ्चजालकम्, अशेषतः स्वेदाम्भसा धौतश्चरणयुगलादिव हृदयमविशद्रागः।''

इसी प्रसंग में रसनोपमा का सर्वविदित निदर्शन अत्यन्त मनोहारी है। महाश्वेता अपने विषय में कह रही है—

''क्रमेण च कृतं मे वपुषि वसन्त इव मधुमासेन, मधुमास इव नवपल्लवेन, नवपल्लव इव कुसुमेन, कुसुम इव मधुकरेण, मधुकर इव मदेन नवयौवनेन पदम्॥''

वसन्तऋतु के वर्णन में अनुप्रास, यमक आदि शब्दालंकारों की योजना विषय के अनुरूप बन पड़ी है—

''अथ विजृम्भमाणनलिनवनेषु, अकठोर चूत कलिका कलापकृत-कामुकोत्कलिकेषु, कोमलमलयमारुतावतारतरंगितानङ्गध्वजांशुकेषु मदकलित कामिनी-गण्डूषसीधुसेकपुल-

कितवकुलेषु, मधुकर कुल कलङ्ककालीकृत-कालेयककुसुमकुड्मलेषु, अशोक तरुताडनारञ्जितरमणीय मणिनूपुर झंकार सहस्र मुखरेषु—मधुमास दिवसेषु ।''

ऐसे प्रसंगों में शब्दालंकारों एवं सरल अर्थालंकारों के विपरीत विन्ध्याटवी वर्णन में, जाबालि मुनिके आश्रम के अंकन में, शबर सेना के चित्रण में क्लिष्ट अर्थालंकारों के दर्शन होते हैं। विन्ध्याटवी वर्णन में उसका क्लिष्ट उपमालंकार में चित्रण बाण की लेखनी का ही विषय है—

''प्रेताधिप नगरीव सदासन्निहितमृत्युभीषणा महिषाधिष्ठिता च, समरोद्यतपताकिनीव बाणासनारोपितशिलीमुखा विमुक्त सिंहनादा च, कात्यायनीव प्रचलितखड्गभीषणा रक्तचन्दनालङ्कृता च कर्णोसुतकथेव सन्निहित विपुलाचला शशोपगता च, कल्पान्त प्रदोषसन्ध्येव प्रवृत्तनीलकण्ठा पल्लवारुणा च.....गिरितनयेव स्थाणुसंगता मृगपतिसेविता च, जानकीव प्रसूतकुशलवा निशाचरपरिगृहीता च, कामिनीव चन्दनमृगमद परिमलवाहिनी रुचिरागुरु तिलक भूषिता च—''

''अर्थात्—''वह वनभूमि भयंकर यमराज और उनके वाहन भैंसों से युक्त यमपुरी के समान प्रतीत होती थी, कहीं भौंरों से ढकी हुई बाण और असना के वृक्षों की पंक्तियाँ थीं जिनमें सिंहों की दहाड़ होती रहती थी जिससे वह वनभूमि धनुष पर बाण चढ़ा कर युद्ध के लिए तैयार गरजती हुई सेना के समान प्रतीत होती थी, कहीं लाल चन्दनों के वृक्षों में इधर उधर गैंड़े घूमा करते थे, जिस से वह रक्त चन्दन और तलवार धारण करने वाली भगवती दुर्गा के समान प्रतीत होती थी, कहीं कनेरों से भरी विस्तृत पहाड़ों की श्रेणियों में सरहे स्वच्छन्दता से विचरण किया करते थे जिससे वह विपुल और अचल नाम के मित्रों तथा शश नाम के प्रधान मन्त्री से युक्त कर्णीसुत की कथा के समान प्रतीत होती थी, कहीं लाल-लाल पल्लवों की झुरमुटों में मोर थिरकते रहते थे जिस से वह भगवान् शंकर के तांडव नृत्य से युक्त लीला से भरी हुई प्रलयकालीन सन्ध्या के समान प्रतीत होती थी—आदि २।''

जाबालि मुनि के आश्रम वर्णन में विरोधाभास की योजना बड़ी सुन्दर है।

''यत्र च मलिनता हविर्धूमेषु न चरितेषु, मुखरागः शुकेषु न कोपेषु तीक्ष्णता कुशाग्रेषु न स्वभावेषु, चञ्चलता कदलीदलेषु न मनःसु, चक्षूरागः कोकिलेषु न परकलत्रेषु, कण्ठग्रहः कमण्डलुषु न सुरतेषु, स्तनत्पर्शो होमधेनुषु न कामिनीषु, रामानुरागो रामायणेन च यौवनेन—'' इत्यादि

इतना सब कुछ होने पर भी कुछ आलोचकों ने विशेषकर पाश्चात्य विद्वानों ने बाण के गद्य की कटु आलोचना की है। डा० वेबर ने यहां तक विचार व्यक्त किया है कि गद्यकार बाण का गद्य एक भारतीय जंगल के सदृश है जिस में चलने के

लिए व्यक्ति को स्वयं झाड़ियां काट कर मार्ग बनाना पड़ता है स्वयं मार्ग बनाये बिना गति पाना दुरूह कठिन है। और साथ ही उसमें अप्रचलित शब्दों के रूप में भंयकर वन्यजन्तु भी जहां तहां विद्यमान हैं। जिनके कारण मार्ग आदि अधिक असुखकर बन जाता है। डा० वेबर जैसे विद्वान् पाश्चात्य समालोचकों की ऐसी धारणा से एक तथ्य स्पष्ट हो जाता है कि भारतीय साहित्य एवं सांहित्यिक मान्यताओं के अनभिज्ञ व्यक्ति के लिए बाण की रचनाएं कितनी अरुचिकर प्रतीत होती हैं।

भारतीय विद्वानों ने तो बाण की सर्वत्र मुक्त-कण्ठ से ही प्रशंसा की है। डा० भोलाशंकर व्यास बाण की शैली की विशेषता का एक स्थान पर वर्णन करते हुए लिखते हैं—'रसप्रवणता, कलासौन्दर्य, वक्रोक्तिमय अभिव्यंजना-प्रणाली, सानुप्रासिक समासाढ्य पदावली, दीपक, उपमा और स्वाभावोक्ति की रुचिर योजना—जिस के बीच बीच में श्लेष, विरोधाभास और परिसंख्या को गूँथ दिया गया है—बाण की शैली की विशेषता है। बाण की कथा इतनी रसवती है कि वह स्वयं पदशय्या से समन्वित हो जाती है और उसकी उक्तियाँ कलामय तथा कोमल हैं; भावपक्ष (रस) तथा कलापक्ष (कलालापविलास) का यह विचित्र समन्वय देख कर सहृदय ठीक इसी तरह चमत्कृत हो जाता है, जैसे कलापूर्ण उक्ति का प्रयोग करने वाली कौमल नवोढा के स्वयं ही रस के परिपूर्ण होकर शय्या की ओर आने पर नायक का हृदय इसलिए चमत्कृत हो जाता है कि वह अद्भुत का समावेश कर देती है।'

"स्फुरत्कलालापविलासकोमला करोति रागं हृदि कौतुकाधिकम्।
रसेन शय्यां स्वयमभ्युपागता कथा जनस्याभिनवा वधूरिव॥"

(कादम्बरी पूर्वभाग—८)

यहां यह बात ध्यान देने योग्य है कि बाण ने जहां तहां क्लिष्ट समासों का प्रयोग किया है—कहीं-कहीं अप्रचिल शब्दों के प्रयोग ने उसे कुछ बोझिल सा बना दिया है। परन्तु वह केवल संस्कृत साहित्य के विषय में कम ज्ञान रखने वाले व्यक्ति के लिए ही है। संस्कृत साहित्य में सम्यग्गति रखने वाले के लिए उसकी दुर्बोधता समाप्त हो जाती है। बाण का गद्य सामान्यजन के लिए नहीं अपितु एक विशिष्ट वर्ग के उपयुक्त है। साहित्य के मर्मज्ञ उच्च शिक्षित वर्ग का व्यक्ति ही उससे ब्रह्मानन्दसहोदर काव्य रस का रसास्वादन कर सकता है। सामान्य जन के लिए वह दुरूह है, दुर्बोध है और है अनेक काव्यात्मक असौष्ठव से परिपूर्ण। परन्तु **"नैष रथाणोऽपराधो यदेनमन्धो न पश्यति"** अर्थात् यह बाण की काव्यकृति का दोष नहीं है जो अल्पज्ञानी उसके मर्म को नहीं समझ पाता। जहां तक क्लिष्ट समासों, बोझिल से अलंकारों की योजना का प्रश्न है—इसके विषय में पहिले ही कहा जा चुका है। किसी काव्य की आलोचना

तत्कालीन साहित्यिक मान्यताओं के आधार पर की जानी चाहिये। अन्यथा उसके प्रति अन्याय होगा। बाण के समय उत्कृष्ट गद्य के प्राण वक्रोक्तिमय विलष्ट प्रयोग, समास बहुलता, वस्तु-वर्णन में दीर्घकाय वाक्यों की योजना समझे जाते थे। इन विशेषताओं को उत्कृष्ट काव्य का आदर्श समझा जाता था। इसके आधार पर बाण का गद्य उत्कृष्ट कोटि का माना जाने योग्य है।

बाण भट्ट के गद्य का सौष्ठव विषयानुकूल अलंकार चयन और उनके निबन्धन में है। विषय के अनुरूप भाषा की योजना उसमें सुष्ठुता को और अधिक आलम्बन ही देती है। बाणभट्ट संस्कृत गद्य के सर्वश्रेष्ठ कलाकार हैं। उसकी वाणी में रस है—मधुरिमा है—मादकता है। जिसका आस्वादन कर सहृदय काव्यरसिक का हृदय तरंगित हो उठता है—

"रुचिरस्वरवर्णपदा रसभाववती जगन्मनो हरति।
सा किं तरुणी ? नहि नहि वाणी बाणस्य मधुरशीलस्य ॥"

———

: ६ :

गद्यकार बाण—एक विहंगम दृष्टि

बाणभट्ट संस्कृत साहित्य के सर्वोत्कृष्ट गद्यकार हैं। इनकी परिपक्व गद्यरचना के परिणाम स्वरूप ही **'गद्यं कवीनां निकषं वदन्ति'** की धारणा समादृत हुई। बाण-साहित्य के अध्ययन से स्पष्ट हो जाता है कि कविता का माध्यम केवल पद्य ही न होकर गद्य भी है। काव्यवैभव का सूक्ष्म से सूक्ष्म कलाविस्तार गद्य का विषय बन सकता है। दूसरों के मन के भावों का यथातथ्य चित्रण और अभिनव अर्थ की सुन्दर कल्पना बाण के गद्य में द्रष्टव्य है जिसने शताब्दियों से चले आते हुए पद्य के ऐकान्तिक प्रभुत्व को ठुकरा कर गद्य को भी उसके समकक्ष ला खड़ा किया। इस में सन्देह नहीं कि गद्य का उद्भव एवं विकास पद्य की ही तरह प्राचीन हैं परन्तु गद्य के द्वारा कविता करने की प्रवृत्ति बाण भट्ट के युग की ही देन है। बाण ने अपनी दो युग प्रवर्तक कृतियों के आधार पर सिद्ध कर दिया कि केवलमात्र पद्य को ही कविकर्म की इति श्री का साधन मानना कितना असंगत है। रुचिवैचित्र्य के अतिरिक्त, रूढ़िवादिता बन्धन परकता आदि सीमाओं को छिन्न-भिन्न करके उन्मुक्त वातावरण में विचरण करने की भावना ने इन गद्यकारों को जन्म दिया, जिसमें बाणभट्ट का स्थान सर्वश्रेष्ठ माना जाता है। बाण भट्ट ने गद्य के रूप में जिस अमर साहित्य की सृष्टि की वह सर्वथा एक नवीन दिशा थी, एक नवीन मोड़ था, एक क्रान्ति थी जो साहित्य में सर्वथा अभूतपूर्व थी।

बाणभट्ट उच्च सारस्वत वंशज थे, जिनके पूर्वज प्रतिभासम्पन्न उद्भट विद्वान् थे। अपने एक कुबेर नामक विद्वान् पूर्वज की विद्याव्यासंगिता एवं शास्त्रज्ञता की सराहना करते हुये बाण ने स्वयं कादम्बरी में लिखा है कि उनके वेदपाठी शिष्य इस भय से कि उनके हां पंजरबद्ध शुकसारिका अशुद्ध पढ़ने के कारण कहीं टोक न दें प्राय: शंकाकुल मन से ही वेदगान किया करते थे। बाण के पूर्वज काव्यामृत रसास्वाद से इतने तृप्त थे कि उनके सोमरससिक्त, श्रुतिशांतकल्मष, पुरोडाशपवित्रित तथा समस्तशास्त्रस्मृतिबन्धुर मुख में सरस्वती देवी घर बना कर बैठ गई थी।

बाणभट्ट का बाल्यकाल कष्टों से घिरा हुआ था। शैशव में ही मातृस्नेह से वंचित हो गए और १४ वर्ष की स्वल्प आयु में ही पिता का हाथ सिर से उठ गया और अनाथ बाण भट्ट ने एक पर्यटक का रूप धारण कर लिया। इस दीर्घकालीन प्रवास में बाण के सुकुमार कोमल हृदय को अनेक कटु आघात सहन करने पड़े। घाट-घाट का पानी पीने और निरन्तर ठोकरें खाने के बाद अन्त में बाण घर लौटे। वास्तव में यह प्रवास-जन्य जीवन संघर्ष बाण के लिए प्रच्छन्न रूप से हितकर ही सिद्ध हुआ। इनका सुप्त कलाकार उद्‌बुद्ध हुआ और उनकी प्रतिभा स्फूर्त हो उठी।

बाण के साहित्यिक जीवन का अरुणोदय उनके महाराज हर्षवर्धन के सम्पर्क में आने से प्रारम्भ होता है। प्रारम्भ में महाराज के मन में बाण के प्रति असीम घृणा थी। वे बाण को लंपट एवं कुटिल व्यक्ति समझते थे और संभवतः इसीलिए उन्होंने प्रथम अवसर पर बाण को "भयंकर सर्प" कह कर अपमानित भी किया था। अपनी प्रतिभा के बल से शनैः शनैः बाणभट्ट महाराज के निकट होते चले गए। वह बाण जिस के दरबारी जीवन का श्रीगणेश 'भयंकर सर्प' की उपाधि से हुआ था समय पाकर 'वश्यवाणीकविचक्रवर्ती' के सर्वोच्च पद के भाजन बने।

बाण की साहित्यिक कीर्ति के स्तम्भ रूप दो ग्रन्थ हर्षचरित एवं कादम्बरी हैं। खेद का विषय है कि बाण इन दोनों रचनाओं को अपूर्ण छोड़ कर संसार से विदा हुए। हर्षचरित के अधूरा रहने का कारण महाराज हर्ष की मृत्यु है। कादम्बरी समाप्त करने से पूर्व ही बाण स्वयं कालकवलित हो गए और इनके सुपुत्र भूषणबाण ने इसे सम्पूर्ण करने का असाधारण कार्य किया।

संस्कृत गद्य रचना के क्षेत्र में बाण का स्थान सर्वोच्च है इस में दो मत नहीं हो सकते। बाण की उर्वर कल्पना, अजस्र शब्द योजना, मानव जीवन रहस्यों के उद्‌बोधन के सूक्ष्म निरीक्षण पद्धति आदि विशेषताओं का ही परिणाम है कि इन की रचनाएं परवर्ती कवियों एवं साहित्य रसिकों का कण्ठहार बनीं। जीवन की विशदता एवं व्यापकता के गम्भीर एवं मार्मिक मूल्यांकन के कारण ही आलोचकों ने बाण का एक महाकवि के रूप में स्वागत किया। बाण की मौलिक उद्‌भावनाओं से प्रभावित होकर आलोचकों ने **'बाणोच्छिष्टं जगत्सर्वम्'** कह कर इन्हें अभिनन्दित किया। बाण के परवर्ती अनेक कवियों तथा आचार्यों ने बाण के वैदग्ध्य का सिक्का माना। वामन, आनन्दवर्धन, धनंजय, भोजराज, नमिसाधु, रुद्रट, क्षेमेन्द्र, रुय्यक आदि कवियों एवं आचार्यों ने बाण की विलक्षण प्रतिभा का सोदार गुणगान किया है।

बाण का संचित ज्ञान भण्डार अपरिमित है। उन्होंने अपने पूर्ववर्ती विशाल संस्कृत साहित्य का गहन अध्ययन एवं आलोडन किया था। वे साहित्यरूपी लघु

सरिता में तैरने के पक्षपाती न थे। वे ज्ञानकल्लोलमुखर सागर की थाह लेने में ही अपने कविकर्म की चरमपरिणति मानते थे। उनकी दृष्टि में एक आदर्श काव्य सम्पूर्ण आदर्श पुरुषों के चरित्रों से व्याप्त महाभारत की कथा के समान उदात्त होना चाहिए। ऐसे काव्य के रचयिता को ही बाण सुकवि की संज्ञा से विभूषित करते हैं। शब्द और अर्थ के सौन्दर्य की पूर्णता से हीन कविवाणी को आपने सर्वथा निष्प्रयोजन ठहराया है। हर्षचरित की भूमिका में आप की मान्यता निम्नांकित पद में अभिव्यक्त हुई है :—

"किं कवेरतस्य काव्येन सर्ववृत्तान्त गामिनी।
कथेव भारती यत्य न व्याप्नोति जगत्त्रयम्॥"

बाणभट्ट ने हर्षचरित के प्रारम्भ में पूर्वागत सुकवियों में व्यास, गुणाढ्य, भास, कालिदास, प्रवरसेन भट्टारहरिश्चन्द्र तथा सुबन्धु का सादर उल्लेख किया है। उन्होंने इन सुकवियों के काव्य-वैभव का परिचय संक्षिप्त प्रशस्तियों के रूप में प्रस्तुत किया है। बाणभट्ट की प्रशस्तियां शुद्ध आलोचनात्मक दृष्टिकोण से प्रेरित हैं। अपने इस नवीन क्षेत्र में बाण एक सहृदय आलोचक के रूप में हमारे सामने आए हैं। संस्कृत साहित्य की आलोचनात्मक प्रक्रिया का इसे प्रथम प्रयास कहना चाहिए। इस दृष्टि से बाणभट्ट संस्कृत के अपने ढंग के प्रथम आलोचक ठहरते हैं। आपने महाकवि कालिदास की सूक्तियों को माधुर्यपूर्ण अभिनव मंजरी के उद्गम का रूप दिया है। आप की दृष्टि में भास की काव्यकीर्ति सपताक देवकुलों से स्पर्धा करती है और प्रवरसेन की कीर्ति महाराज रामचन्द्र की वानर सेना से होड़ लेती है। कवि ने भट्टारक हरिश्चन्द्र के काव्य को राजोपम ठहरा कर तथा सुबन्धु के काव्योत्कर्ष को कर्ण की शक्ति मान कर अपनी प्रखर आलोचक बुद्धि का परिचय दिया है। इस प्रकार अपने पूर्ववर्ती काव्यकारों की सारभूत विशेषताओं को नपे तुले शब्दों में समेट कर बाण ने सागर को गागर में भरने की प्रवृत्ति का परिचय दिया है। वास्तव में बाण ने कवि प्रशस्तियों के माध्यम से संस्कृत साहित्य में आलोचना का द्वार खोला है। आलोचना के अतिरिक्त भी इन कविप्रशस्तियों का अपना विशेष मूल्य है। इन से कवियों की कालनिर्धारण सम्बन्धी समस्याओं का भी यथोचित समाधान हुआ है जो बाण की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण देन है।

ऐतिहासिक काव्यकार के रूप में भी बाण चिरस्मरणीय हैं। इन के हर्षचरित की गणना संस्कृत के सर्वप्रथम ऐतिहासिक काव्य के रूप में होती है। इसमें सन्देह नहीं कि ऐतिहासिक परिपक्वता इसमें प्रायः लुप्त है। यद्यपि कवि ने काव्य चमत्कार के वशीभूत होकर ऐतिहासिक तत्त्वों की पर्याप्त अवहेलना की है, तदपि तत्कालीन सामा-

जिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक परिस्थितियों के अध्ययन की दृष्टि से हर्षचरित का महत्त्व अक्षुण्ण है। हर्षचरित के ऐतिहासिक वृत्त हर्षकालीन इतिहास के शोध के लिये विशेष सहायक हैं। वास्तव में बाण ने अपनी नवोन्मेषशालिनी प्रतिभा की सुकुमार शलाका से इतिहास की वज्रमयी शिला के भेदन का लघुप्रयास अवश्य किया है परन्तु उनको इस क्षेत्र में आंशिक सफलता ही प्राप्त हुई है। ऐतिहासिक काव्य के उद्भव एवं विकास की परम्परा में बाण का यह प्रयास अग्रिम होने के कारण नितान्त सराहनीय है।

कादम्बरी बाण का शृंगारपरक महाकाव्य है। यह मानव हृदय की प्रधान वृत्ति प्रेम की अपरिच्छिन्न व्याख्या है। मूक प्रणय वेदना की मर्मान्तिक कथा है।

बाण का शृंगार शुद्ध तथा परिष्कृत शृंगार है। यह शारीरिक सौन्दर्य तथा उस के आकर्षणों पर अवलम्बित ऐन्द्रियिक परितृप्ति में परिनिष्ठित शृंगार नहीं अपितु भौतिकता के दलदल से निर्मुक्त विशुद्ध शृंगार है जिस में वासना कर्दम का लेशमात्र भी संयोग नहीं है। बाण कर्तव्यपथ से गिरा देने वाले उच्छृंखल भोगपरक प्रेम के कदापि पक्षपाती नहीं। महाश्वेता के प्रेम में पागल पुंडरीक की कपिंजल द्वारा कठोर भर्त्सना करवा कर कवि ने संयत तथा शुद्ध प्रेम को प्रश्रय दिया है। बाण भी कालिदास की तरह ऐसे प्रेम के पक्षपाती हैं जो आध्यात्मिक हो, जनमान्तर सौहृद पर आश्रित हो। शारीरिक सौंदर्य पर अवस्थित प्रेम की जिस प्रकार कालिदास ने मेघदूत में कुबेर के शापानल से, कुमारसंभव में महादेव के रोष से और शाकुन्तल में दुर्वासा के शाप से भस्मसात कर दिया था उसी प्रकार बाण ने भी पुण्डरीक और चन्द्रापीड़ की मृत्यु करवा कर ही महाश्वेता और कादम्बरी से उनका मिलन करवाया है। शारीरिक उपत्यका पर उतरा हुआ भौतिक प्रेम जब तक अपने वासना जनित मल को बलिदानवारि से धोकर अध्यात्मवाद के उत्तुंग शिखिर पर नहीं पहुँचता तब तक वह भारतीय संस्कृति-सम्मत आदर्श प्रेम नहीं कहला सकता। एमर्सन के शब्दों में "कवि उद्धार करने वाले देव होते हैं। वे हमारी भावनाओं में प्रवेश करके उन्हें परिष्कृत करते हुए समाज को उठाते ही हैं, गिराते नहीं"। इसी लिए कादम्बरी में जहां कला के 'सत्यम्' और 'सुन्दरम्' अंश हैं वहां उनके साथ 'शिवम्' का भी अपूर्व सामंजस्य है।

बाण की रचनाएं तत्कालीन सामाजिक परिस्थितियों का यथेष्ट प्रतिनिधित्व करती हैं। शैवशाक्त आदि सम्प्रदाय, राज्याभिषेक आदि राजकीय समारोह, सतीप्रथा वर्णव्यवस्था आदि सामाजिक जीवन के विभिन्न पक्ष बाण की रचनाओं में प्रतिफलित हुए हैं। तपोवन के जीवन से लेकर राजकीय ठाठबाठ एवं साजसज्जा तक भारतीय

जीवन के सभी पहलुओं पर बाण ने लेखनी चलाई है। यदि वे अपने युग की स्थिति को स्वाभाविक रूप से अपनी कला में प्रतिफलन न देते तो सत्य के प्रति एक घोर अन्याय कर बैठते। सत्य पर पर्दा डालना सत्य का गला घोटना है। कार्लाईल के शब्दों में "सत्य और काव्य दोनों एक ही वस्तु हैं। काव्य की जीवनधारा सत्य है। जो कवि है वही सच्चा शिक्षक है।"

बाण की गद्य शैली संस्कृत साहित्य में अप्रतिम है। इसकी सर्वोत्कृष्ट विशेषता इसकी विषयानुवर्तिनी शब्दावली है। बाण के विन्ध्याटवी तथा बसंत वर्णन में क्रमशः मधुर तथा क्लिष्ट शब्द योजना की सफलता देखकर आश्चर्य होता है। बाण में लघुसमास दीर्घसमास, अलंकार संकुलता, अलंकार विरलता, क्लिष्ट एवं अक्लिष्ट श्लेष विन्यास, विशेषणपद न्यूनता तथा विशेषण बहुलता आदि सभी प्रकार की शैलीगत विविधता के दर्शन होते हैं। बाण ने स्वयं हर्षचरित में आदर्श गद्य शैली का स्वरूप प्रतिपादित किया है। गद्यकाव्य की सर्वातिशायिनी गद्यशैली को वे नवीन अर्थ, सुरुचिपूर्ण स्वभावोक्ति, अक्लिष्ट श्लेष, रसस्फोट तथा कसावटपूर्ण पदावली से युक्त मानते हैं। इन समस्त गुणों का एकत्र सन्निवेश आपके मतानुसार प्रायः दुर्लभ है। गद्य काव्य के लिए इतना कड़ा मापदण्ड वास्तव में गद्यकारों की अग्नि परीक्षा के समान हैं जिस में बिना किसी प्रकार की आंच लगे बाण जैसे महारथी ही अछूते निकल सकते हैं। इस में सन्देह नहीं कि बाण जैसे धुरन्धर कलाकार के साथ पाश्चात्य आलोचक न्याय नहीं कर सके। उन्होंने बाण के गद्य को भीषण अरण्य से उपमित किया है जहां क्लिष्ट एवं दुरूह शब्दों के झाड़ खड़े हैं, सूक्ष्म पौराणिक संकेतों की कन्दराएं हैं और विपुलकाय विकट समासों के रूप में व्याघ्र विचरण कर रहे हैं। वास्तव में ये आलोचक संस्कृत गद्य की परम्परा से अपरिचित हैं। वे बाणयुगीन गद्य की निश्चित सरणी की उपेक्षा करते हैं जिस की पृष्ठभूमि में उपर्युक्त सभी धारणाएं निराधार हो जाती हैं और समस्त सन्देह पुंज स्वयं ही क्षतविक्षत होकर झर जाते हैं।

इसका यह अभिप्राय नहीं कि बाण की काव्य पद्धति में दोष कल्पना सम्भव नहीं है। कोई भी कृति सर्वथा निर्दोष नहीं हो सकती। दोष निर्धारण सम्बन्धी हमारे साहित्यिक निकष कभी एकरूप नहीं रहते। जो शैली किसी युग विशेष में निर्दोष घोषित होती है वही समय के उलटफेर से दोषवती हो जाती है। किसी युगविशेष के साहित्य-सिद्धांतों की उपेक्षा करके स्वस्थ एवं संतुलित आलोचना की आशा करना व्यर्थ है। अपने समय में प्रचलित तथा स्वीकृत आलोचनादर्श एवं परम्पराएं आलोचक को प्रभावित किए बिना नहीं रहतीं। बाण युगीन शैली की कुछ निजी विशेषताएं भी हैं। अलंकार संकुलता, समास बाहुल्य, चित्रात्मकता, दीर्घकाय गद्य योजना, चमत्कार

प्रदर्शन आदि उस युग की शैली के आधारभूत गुण हैं जिन के प्रभावपूर्ण प्रतिनिधित्व का सर्वाधिक श्रेय बाण को प्राप्त है। बाण ने न केवल युगानुरूप काव्य रूढ़ियों का पालन ही किया है वरन् मात्रातिरेक भी कर दिया है। उन्होंने जिस मार्ग को पकड़ा उसे पूर्णरूप से आलोड़ित कर दिया। उनके वर्णन इतने विस्तीर्ण हैं कि कहीं कहीं उन की विस्तृति ही दोष का रूप धारण कर लेती है। पाठक पढ़ते-पढ़ते ऊब उठता है परन्तु वाक्य है कि न ओर है न छोर। कुछ विद्वान् इसे बाण की कला का चमत्कार मानते हैं। यही धारणा बाण की अतिरंजित वर्णन प्रवृत्ति के सम्बन्ध में भी ठीक बैठती है जहां बात से बात निकलती जाती है। शब्द भण्डार कुबेर के खजाने की तरह अक्षय हो जाता है, भाषा एक गरीब दासी की तरह करबद्ध लाचार खड़ी रहती है और स्वयं बाण अप्रतिहत गति से कुलांचें मारते हुए आगे बढ़ते दिखाई देते हैं।

बाण की कला के चरम परिपाक के फलस्वरूप ही गद्य को पद्य जैसी मान्यता प्राप्त हुई। भाषा सौष्ठव वर्णन नैपुण्य, कल्पना वैचित्र्य, अलंकार वैभव आदि अनेक काव्योचित गुणों के चारु सम्मिलन के कारण बाण संस्कृत के सर्वमूर्धन्य कवि के पद को प्राप्त हुए। बाण का काव्य अपने सभी परवर्ती गद्य तथा पद्यकारों के लिए आलोक स्तम्भ का काम करेगा। इन की कीर्ति कौमुदी काल की कराल छाया से अछूती रह कर सदा अपना स्निग्ध आलोक बखेरती रहेगी। यह चार दिन की चांदनी नहीं है। कृष्ण पक्ष के प्रवेश से वर्जित यह कीर्तिमाला सदा चिर नवीन है, जो जरामरण के भय से निर्मुक्त है। संभवतः बाण को उद्देश्य करके किसी विद्वान् ने निम्नलिखित पद्य पढ़ा हो :—

"जयन्ति ते सुकृतिनो रससिद्धाः कवीश्वराः।
नास्ति येषां यशः काये जरामरणजं भयम्॥"

महाकवि बाण

* उदात्त कविगुरु श्री बाणभट्ट
* बाण की प्रतिभा
* महाकवि बाण एक विश्लेषण
* महाकवि बाण-एक तुलनात्मक अध्ययन

'नवोऽर्थो जातिरग्राम्या श्लेषोऽक्लिष्टः स्फुटो रसः ।
विकटाक्षरबन्धश्च कृत्स्नमेकत्र दुष्करम् ॥'

१

उदात्त कवि-गुरु श्री बाणभट्ट

पद्यबद्ध रचना को मैं कविता नहीं मानता, पद्य कविता कहने का एक माध्यम हो सकता है, कोई भी कुशल गद्यकार कवि हो सकता है. कवि होने के लिये कविता करना शर्त है, पद्य लिखना नहीं, यदि पद्य में रचना करने से कोई कवि हो जाया करता तब तो आयुर्वेद, गणित, इतिहास, व्याकरण, दर्शन आदि विविध विषयों को पद्यबद्ध करने वाले गुणीजन भी कवि कहलाते। कवि वह, जो कविता करे। और कविता क्या है ? पाश्चात्य विद्वानों के मतानुसार कविता उत्तमोत्तम शब्दों का उत्तमोत्तम क्रम-विधान है। फिर उस में चाहे कल्पना और बुद्धि का प्रयोग हो और चाहे मनोवेगों का स्वच्छन्द प्रवाह। भारतीय दृष्टि में कविता काव्य के अन्तर्गत है और काव्य है रमणीय अर्थ का प्रतिपादन करने वाला शब्द या रस वाला काव्य। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार जिस प्रकार आत्मा की मुक्तावस्था ज्ञान-दशा कहलाती है, उसी प्रकार हृदय की मुक्तावस्था रस-दशा कहलाती है। हृदय की इसी मुक्ति की साधना के लिये मनुष्य की वाणी जो शब्द-विधान करती आई है, उसे कविता कहते है।'

इस प्रकार भारतीय दृष्टि कविता और काव्य में अन्तर नहीं देखती। किन्तु कविता को रमणीय अर्थों का प्रतिपादन करने वाले शब्दों का विधान मानती और रसवती को प्रधानता देती है और इस प्रकार काव्य से प्राप्त होने वाले आनन्द को ब्रह्मानन्द सहोदर कह कर काव्य को अध्यात्मविद्या की श्रेणी में भी रख देती है। भारतीय दृष्टि से काव्य के दो पहलू है। काव्य का एक बाह्य रूप है, जिस का धरातल मानवी है। दूसरा उस का आभ्यन्तिक स्वरूप है, यह देवतत्व की लीला की व्याख्या है, बाह्य रूप अनित्य लीला से सम्बन्ध रखता है और स्वरूप नित्यलीला से सम्बन्धित है। किन्तु अनित्य और नित्य रूप दोनों एक दूसरे से सम्बद्ध है, अनित्य रूप नित्य लीला की व्याख्या करता है। यह नित्य लीला ही रस तत्व है। रस तत्व ही काव्य की आत्मा है। काव्य में अध्यात्म संकेत नित्य रस तत्व की व्याख्या करते हैं, इन संकेतों से ही

काव्य से प्राप्त आनन्द को ब्रह्मानन्द सहोदरता मिलती है। फिर वह चाहे पद्य से मिले या गद्य के माध्यम से मिले और हमारे प्राचीन आचार्यों ने तो 'गद्यं कवीनां निकषं वदन्ति' कह कर कवि का कौशल गद्य काव्य के द्वारा ही स्वीकार किया है।

गद्यकाव्य कार बाणभट्ट कवि थे। उनका गद्य एक ओर जहाँ रस वाले वाक्यों से भरा पड़ा है प्रत्येक शब्द जहाँ रमणीय अर्थ का प्रतिपादन करता है, वहां उन गद्यकाव्यों में उत्तमोत्तम शब्दों का उत्तमोत्तम क्रम विधान भी दृष्टिगोचर होता है। बाणभट्ट गद्य-काव्यकारों में ही मूर्धन्य स्थान प्राप्त नहीं करते, बल्कि महाकवियों में भी वे चूड़ामणि हैं।

बाण के काव्य का आनन्द ब्रह्मानन्द सहोदर है। बाण के काव्य के आध्यात्मिक अर्थ स्पष्ट हैं। उन का 'कादम्बरी'' काव्य अध्यात्म का एक भव्य नन्दन वन है। भारतीय संस्कृति और अध्यात्म के प्रकांड पंडित डाक्टर वासुदेव शरण अग्रवाल लिखते हैं— ''जहां तक कादम्बरी का काव्यात्मक रूप है, वह अपने आप में सर्वथा परिपूर्ण है, काव्य से जो रसोपलब्धि चाहिए वह पाठकों को पूर्णमात्रा में कादम्बरी के काव्यात्मक संस्थान से प्राप्त हो जाती है, किन्तु बाण और कालिदास स्वर्ण युग के प्रतिनिधि पुरुष थे। दोनों शिव तत्व के परम आराधक भक्त कवि थे। वे सरस्वती के प्रज्ञा शील वन्द्य पुत्र होने के नाते अपने युग को कुछ सन्देश देना चाहते थे। एक बार उस धरातल तक ऊंचे उठ कर जब हम उन की परिभाषाओं और प्रतीकों के अर्थ समझने लगते हैं, तब हमें प्रतीत होता है कि भारतीय अध्यात्म की उदात्त परम्परा में काव्य, नाटक, कथा आदि के माध्यम से ये महापुरुष मोक्ष और जीवन, निर्गुण और सगुण, अव्यक्त और व्यक्त प्रेम और वासना की अति प्राचीन परिभाषाओं को नये रूप में ढाल कर किसी नित्य तत्व की व्याख्या करना चाहते थे, इनकी अर्थवती भाषा में जीव की सब से बड़ी अध्यात्म समस्या कामवासना और शुद्ध प्रेम के तारतम्य को पहचानना और जीवन में प्रत्यक्ष करना है। मानव अपनी वासना के कारण सृष्टि के ब्रह्मसूत्र से विचलित या नित्य विधान से च्युत हो जाता है। तपश्चर्या से उस शाप का अन्त होता है। शाप के अन्त में पुनः उसी स्वाभाविक स्थिति, उसी उच्च स्वर्गीय पदवी, उसी भगवत्तत्व, उसी शिव तत्व की उपलब्धि संभव होती है'' शापग्रस्त जीवन को आनन्दमय ब्रह्मतत्व का मार्ग दिखाना ही बाण का उद्देश्य है।

कादम्बरी के पात्र पुण्डरीक, महाश्वेता, चन्द्रापीड, कादम्बरी सब के अध्यात्म जीवन की समस्या वासनामय स्नेह के शाप से ऊपर उठ कर नित्य अविचल प्रेमतत्व की प्राप्ति है। वास्तव में कादम्बरी के पात्रों के नाम और उन के जीवन की घटनाएँ समझ लेने पर बाण के काव्य का आनन्द सहज हो जाता है। किन्तु बाण के पाठकों

को कहना रहा है कि बाण एक कठिन कवि हैं, उस के काव्य में क्लिष्टता है, वह सहज बोधगम्य नहीं है। प्रश्न उठता है कि क्या किसी भी प्रकार के आनन्द को प्राप्त करना इतना सहज है, जितना हम चाहते हैं। क्या पर्वत के उच्चतम शिखर पर सरलता से पहुंचा जा सकता है? क्या समुद्र के अतल गर्भ में सरलता से उतरा जा सकता है? कठिन बर्फ को तोड़ कर ही उस के नीचे बहते शीतल जल को प्राप्त किया जा सकता है। मार्ग चल कर ही कटता है, और यात्री गन्तव्य पर पहुंचता है, मार्ग जितना कठिन होगा, गन्तव्य उतना ही आकर्षक और मधुर, तो क्या हम कवि बाण की आत्मा का स्पर्श उस के ग्रन्थों की जिल्द को छू कर ही कर लेना चाहते हैं? वाणी की ध्वनि को पहचाने बिना तो हम दैनिक व्यवहार में भी सफल और सुखी नहीं हो पाते, फिर काव्य के दिव्य क्षणों की तो बात ही क्या? काव्य के उदात्त अर्थों के लिये हमें भी अपनी वृत्ति और बुद्धि उदात्त बनानी होगी। बनानी नहीं होगी, बल्कि जिस की बुद्धि और वृत्ति उदात्त नहीं है, उसे काव्य-पाठ का अधिकार ही नहीं है। सहृदय को ही काव्य का अधिकारी पाठक माना गया है। सहृदय वही है जिस की बुद्धि और वृत्ति उदात्त है। पद्य की अपेक्षा गद्य को उदात्तता देना और भी कठिन होता है

कवि बाण ने जान बूझ कर गद्य का मार्ग अपनाया। वह जानते थे कि काव्य का ओजगुण गद्य में ही सुरक्षित रहता है। इस के लिये उन्हों ने समास को अपनाया। संस्कृत भाषा समास प्रधान भाषा है। कोई भी भाषा-विज्ञान का पंडित संस्कृत को अपनायेगा तो समास के मार्ग पर चलेगा। समास संस्कृत-गद्य का प्राण है। समास से काव्य की भावग्राहिता और गाढ़बन्धता बढ़ती है, समास से ही गद्य का सौन्दर्य पूर्ण रूप से विकास को प्राप्त होता है। बाण के भव्यार्थ में जो कमनीयता और मनोहारिता है वह समास के कारण ही है। मौलिक अर्थों की प्राप्ति समास से ही होती है। बाण मौलिक अर्थों के धनी हैं। वास्तव में बाण संस्कृत गद्य के निर्माता हैं। बाण ने अपनी गद्य-रचना का जो परिष्कृत और परिमार्जित रूप प्रस्तुत किया है वही आगे चल कर अन्य गद्यकवियों के लिये आदर्श बना। इस प्रकार बाण साहित्य-जगत् में नूतन-मार्ग दर्शक बने।

बाण सिद्ध कवि थे और काव्य रचना में उन की एक निश्चित योजना थी। उन्हों ने पहले 'हर्ष चरित' की रचना की, जहां वे साधक रहे हैं, 'हर्ष चरित' में कवि की साधना स्पष्ट दिखाई देती है। 'कादम्बरी' में उन का कवि होना सिद्ध हो जाता है। काव्य के बाह्य रूप के दर्शन 'हर्षचरित' में होते हैं, और आभ्यन्तिक स्वरूप, 'कादम्बरी' में है। 'हर्षचरित' में बाण की दृष्टि के सामने उन के जो समस्त अनुभव थे, कादम्बरी में वे ही बिल्कुल उन के तरल मानस में अन्तर्लीन हो कर विलक्षण रूप

में अभिव्यक्त हुए हैं। इस अभिव्यक्ति का कारण है बाण की काव्य के प्रति मौलिक दृष्टि। अभिधा या स्वभावोक्ति को बाण कविता नहीं मानते। वक्रोक्ति, उक्ति-वचित्र्य, उदात्तता ही उन की दृष्टि में काव्य है। वस्तु की भावात्मक रचना में जब तक शब्दों का उत्तमोत्तम क्रम-विधान नवत्व का, अपरिचित का साक्षात्कार नहीं कराता तब तक कवि का कर्त्तव्य पूर्ण नहीं होता। बाण का मत था कि जो स्वभावोक्ति वस्तु का यथार्थ रूप चित्रित न कर सुन्दरता का चित्रण करती है वही काव्य है। विषय की नवीनता, सुन्दरापेक्षित स्वभावोक्ति, अक्लिष्ट श्लेष, स्फुट रस, विकटाक्षर बन्धता ही बाण की दृष्टि में काव्य के अंग हैं। यही कारण है कि बाण की रचना में विषय की नूतनता, श्लेष प्रधान शैली की अद्भुत योजना, वस्तुओं का यथार्थ किन्तु शिष्ट वर्णन, समास-बहुल पदविन्यास तथा सुग्रथित कथावस्तु के दर्शन होते हैं।

काव्य के ब्रह्मानन्द सहोदर आनन्द के लिए बाण को पढ़ना चाहिए, आत्मा के परिष्कार के लिए बाण को पढ़ना चाहिए और संस्कृत भाषा के परिज्ञान तथा उस पर अधिकार प्राप्त करने के विचार से बाण को पढ़ना चाहिए। बाण के भीतर एक महान् शिक्षक छिपा बैठा था, वे एक ओर हमारे अध्यात्म-जगत् के उपदेशक हैं तो दूसरी ओर भाषा के शिक्षक। उन की विविधतामयी गद्य शैली उन के भाषा-शिक्षक होने का प्रमाण है। बाण की गद्य शैली मुख्यत: तीन प्रकार की है। एक आडम्बर-पूर्ण लम्बे-लम्बे समासों से भरी हुई, जिसे उत्कलिका या तण्डक कहते हैं। दूसरी ओर छोटे-छोटे समासों से युक्त, जिसे चूर्णक कहते हैं। तीसरी है, समासों से रहित आविद्ध शैली। यह अन्तिम शैली स्वच्छन्द फुदकते हुए पक्षियों की भांति कलरव करती है। यदि ध्यानपूर्वक इन शैलियों को देखा जाये तो इस के पीछे भी कवि की एक निश्चित योजना है। वह योजना है क्रमश: संस्कृत भाषा पर अधिकार प्राप्त कराना। संस्कृत को बोलचाल की व्यवहार की भाषा के स्तर पर भी रखना और उसे साहित्यिक स्तर पर भी ले जाना। आविद्ध शैली के छोटे-छोटे वाक्य संस्कृत भाषा को बोलचाल की उपयोगिता देते हैं। जैसे—**न परिचयं रक्षति। नाभिजनमीक्षते। न रूपमालोक्यते। न कुलक्रममनुवर्तते। न शीलं पश्यति। न बंदग्ध्यं गणयति,। न श्रुतमाकर्णयति। न धर्ममनुरुध्यते। न त्यागमाद्रियते। न विशेषज्ञतां विचारयति। नाचारं पालयति। न सत्यमनुबुध्यते। न लक्षणं प्रमाणी करोति।**

इस प्रकार के छोटे-छोटे वाक्य स्वयं ही सहज रूप से संस्कृत का ज्ञान करा देते हैं। क्या हम इस प्रकार के वाक्य खंडों को स्मरण रख कर और संतुलित तथा सरल चूर्णक शैली का अनुगमन कर व्यावहारिक संस्कृत नहीं सीख सकते? क्या इन शैलियों

के आधार पर अपने दैनिक जीवन में अंग्रेजी की भांति धड़ाधड़ संस्कृत नहीं बोल सकते ? गद्य का लघुरूप प्रस्तुत कर के बाण ने संस्कृत-शिक्षा का मार्ग ही प्रशस्त किया था । क्या ही अच्छा होता कि उस सिद्ध कवि की सिद्धि से लाभ उठाते । आज कवि बाण का भौतिक शरीर नहीं है, किन्तु उसका काव्यात्मा अमर है । यशः शरीर अमर है, उसकी काव्य-सम्बन्धी रूप और स्वरूप योजनाएं अमर हैं, संभवतः ऐसे ही अमर सिद्ध कवियों को लक्षित कर के ही कहा गया है :—

'जयन्ति ते सुकृतिनो रससिद्धाः कवीश्वराः,
नास्ति येषां यशः काये जरामरणजं भयम् ।'

: २ :

बाण की प्रतिभा

बाण संस्कृत के दिग्गज कवि हैं। यद्यपि उन की दोनों उपलब्ध कृतियां गद्य में हैं परन्तु उन्हें कवि कहना ही समीचीन है क्योंकि उनके गद्य में कविता-कामिनी का समस्त लावण्य, रसातिरेक और सभी विलास-विभ्रम हैं। संस्कृत के मनीषी आचार्यों ने बहुत देर पहले ही समझ लिया था कि छन्द काव्य का अनिवार्य लक्षण नहीं। रसात्मक वाक्य काव्य है, छन्दो बद्ध मात्र नहीं। छन्दों के लक्षणों का परिशीलन और इन लक्षणों का अपनी रचनाओं में यान्त्रिक निर्वाह तो कई कवि-मन्य तुकड़ लिखाड़ी कर सकते हैं परन्तु कल्पना, अनुभूति और भावना की उस त्रिवेणी का अवगाहन जिसके पावन तटों पर महा-काव्यों के पुण्यतीर्थ खड़े होते हैं बाण जैसे बिरले सरस्वती पुत्र ही कर सकते हैं। चेतना का वह स्फुट और विनिद्र-दल कमल जो उनकी वाणी-सरोजिनी में विकसित हुआ है आज भी सहृदयों के मानस को नन्दित और सुरभित कर रहा है। वाणी के विदग्ध शिल्पी तो वे हैं ही, वे भारतीय संस्कृति के पारदृश्वा आचार्य भी हैं। उन में केवल शब्दों का चाकचक्य नहीं, उस संस्कृति के आलोक का सात्विक स्फुरण भी है। भारतीय इतिहास और संस्कृति के स्वर्ण युग को ऐसा निष्णात और मर्मज्ञ कलाकार मिल गया जिसने उस संस्कृति के समस्त सौरभ और सार को अपने काव्य में सदैव के लिए बाँध लिया है—यह हमारा सौभाग्य है। भारतीयकला, शिल्प, दर्शन, धर्म, राजनीति, साधना, उपासना, शिक्षा आदि के जो सूत्र संग्रथित करके उन्होंने भारती का कण्ठहार प्रस्तुत किया है उसे भारतीय परम्परा और संस्कृति के प्रेमी कभी मलिन अथवा निष्प्रभ नहीं होने देंगे ऐसा विश्वास बाण को पढ़ लेने पर दृढ़ हो जाता है।

बाण के कृतित्व और प्रतिभा का विश्लेषण तीन रूपों में किया जा सकता है। ये हैं (i) बाण—कवि और शैलीकार (ii) बाण—युग के प्रतिनिधि (iii) भारतीय संस्कृति और जीवन-मूल्यों के ज्ञाता और व्याख्याता

बाण—कवि और शैलीकार

आर्यासप्तशतीकार का कहना है कि बाणी ने ही अधिक प्रगल्भता प्राप्त करने के लिए बाण का रूप धारण किया। बाण निःसन्देह वाग्देवता के अवतार हैं। बाणी के क्षीरसागर का मन्थन करके ही उन्होंने अपने काव्य के रत्नद्वय निकाले हैं जिनकी प्रभा सदैव अमन्द और अक्षुण्ण रहेगी। कल्पना का ऐसा उत्तान विलास, भावना का ऐसा वितत गौरव, अनुभूति की ऐसी सान्द्रता, अप्रस्तुतों की ऐसी अहमहमिका से संघटन, भाषा का ऐसा नयन-नन्दन शृंङ्गार, संयोजन की ऐसी कला-वैचित्री,सरस्वती के आभूषणों का ऐसा कर्ण-रसायन झणत्कार, लोक और परलोक का ऐसा सन्धान, लोक-ज्ञान और वैदुष्य का ऐसा समन्वय, अन्यत्र दुर्लभ है। वे शब्दों की सेना के सेनानी हैं। उन की भाषा ऐसा इन्द्रधनुषी वितान है जिसने इहलोक और परलोक को मिला दिया है। शैली का क्या स्वरूप है? शैली वह वाग्व्यापार है जिसके द्वारा कवि अपनी अनुभूति की, भङ्गिमा को रूपायित करता है। अनुभूति की भंगिमा से अभिप्रेत है अनुभव की वह विशिष्टता जो जीवन के किसी रूप अथवा व्यापार को हमारे लिए विशेष चित्ताकर्षक बना देती है। एक व्यक्ति अनुभूति के एक क्षेत्र में इस आकर्षण और रस को देखता है तो दूसरा दूसरे में। हम उसी अनुभूति का अभिनन्दन करते हैं जो हमारे प्राक्तन संस्कारों के साथ समंजस हो सकती है। इस अनुभूति को ही ठीक प्रकार से अभिव्यक्त करने लिए कवि अप्रस्तुतों की योजना करता है। अनुभूति की जिस भंगी को कवि व्यक्त करना चाहता है वह उसे अप्रस्तुत में विशेष रूप से विद्यमान प्रतीत होती है। इसीलिए वह प्रस्तुत और अप्रस्तुत का ग्रन्थि-बन्धन करता है। रूपक में अप्रस्तुत जाया-स्थानीय है जो आत्म-समर्पण के द्वारा प्रस्तुत को समृद्ध करता है। कवि की अप्रस्तुत योजना को देखकर हमें उस की मनश्चेष्टा, भाव-गुण, चेतना के स्तर का पता चलता है। उदात्त भावों की अभिव्यक्ति के लिए वह अप्रस्तुतों का चयन हाट बाजार से नहीं कर सकता और साधारण जीवन के निरूपण के लिए वह तारों की विविक्त ज्योति, मेघों के विद्युन्माली रूप, तमःपटल पर जुगनुओं के नृत्य, और काकली से रोमाञ्चित रसाल वन की बात नहीं कर सकता।

प्रश्न यह है कि अनुभूति का वह कौन सा क्षेत्र है जहां बाण की चेतना निर्बाध विचरण करती है। इस का पता चल जाने पर ही हम बाण की शैली के गुणावगुण औचित्यानौचित्य का परीक्षण कर सकते हैं। यदि उन की शैली उन की अनुभूति की भङ्गिमा को प्रतिफलित करने में सफल है तो वे कृती कलाकार हैं—अन्यथा नहीं। क्या उन के साहित्य के अध्ययन से वह अनुभूति हमारे लिए सजीव हो उठती है

जिसे उन्होंने अपने शब्दों में साकार किया है ? यदि हाँ, तो वे कवि और साहित्यकार के रूप में कृतार्थ हैं और उन का प्रयत्न प्रशस्त और अवन्ध्य है अन्यथा उनकी कृतियां शब्दों के साथ खिलवाड़ मात्र हैं। शैली की सफलता और विफलता का निर्णय करने के लिए इसके अतिरिक्त और कोई मानदण्ड नहीं । क्या उन की शैली सहृदय की चेतना को वही उन्मेष देती है जिस उन्मेष से उस का जन्म हुआ है ?

आज के जनतन्त्रवादियों को यह बात चाहे अच्छी न लगे परन्तु यह सच है कि बाण की चेतना निसर्गतः वहाँ रमण करती है जहाँ एक ओर तो लौकिक वैभव की पराकाष्ठा है, दूसरी ओर तपश्चर्या की चरमभूमि । ये दोनों प्रकार की अतिभूमियां उन्हें अपनी ओर आकृष्ट करती हैं। लौकिक विभव के आतिशय्य से घिरी हुई उनकी चेतना सहज ही उस युग की ओर खिंची चली जाती है जब तपोधन ऋषियों की साधना से यह भूमि धन्य थी। ऐसा लगता है कि उनकी चेतना उसभारत को नहीं छोड़ना चाहती जहाँ तपोवन की परिपूत सुषमा है, याज्ञिक वह्नि की पिङ्गल शिखाएं हैं, उत्सर्पी धूमोत्पीड है, मृगियों के तिर्यग् अवलोकन, हरिण-हरिशावकों और ऋषि बालों की सहपांशुक्रीड़ा, शत शत चन्द्रक मण्डित कलापियों की षड्ज-संवादिनी केका, वनोपान्तवाहिनी नदियों की सलीलगति, कुङ्कुमाक्त गैरिक-वसना सन्ध्या की शांत मुद्रा—ये सब हैं। साथ ही उनके जगत् में राज-लक्ष्मी की भी अमित शोभा है । यहाँ गगन-परिसरोल्लेखी राज-भवन हैं, मणिदीप हैं, इन्द्रनीलवातायन हैं, मुक्ता-प्रवाल, मरकत विद्रुम, पद्मरागों की राशियाँ हैं, मद-मुखर-मधुकरों से अन्धकारित गृहोद्यान हैं, कुवलय-कुमदकलापों से कलित सरोवर हैं, सुधावेदिकाएँ हैं, धारागृह हैं, कूप, आवसथ, प्रपा, सेतु, यन्त्र हैं, बहुभूमिक अमर-मन्दिर हैं, चित्रभित्तियाँ हैं, स्नानगृह हैं, मरकत वेदिकाएँ हैं ।

बाण की अनुभूति की भंगिमा ऊपर दिए गए विवरण से स्पष्ट हो जाती है । इस प्रकार की अनुभूति जिस में कल्पना का इतना वैभव है, भावना का ऐसा आयाम है, साधारण भाषा में व्यक्त नहीं की जा सकती । बाण की शैली के सम्बन्ध में वेबर (Weber) की अननुकूल सम्मति बहुधा उद्धृत की जाती है। वेबर के अनुसार बाण की शैली उस घने भारतीय जंगल के समान है जिस में से निबिड घास फूस के कारण गुजरना सम्भव नहीं और जहाँ अप्रसिद्ध शब्दों के रूप में कई वन्य जन्तु घात लगाए बैठे हैं । यह ठीक है संस्कृत में विशिष्ट पाण्डित्य से सम्पन्न व्यक्ति ही बाण का रसास्वादन कर सकते हैं। परन्तु यह बाण का दोष नहीं । सब विशिष्ट उपलब्धियाँ श्रम-साध्य होती हैं । बाण का उद्देश्य यह नहीं था कि प्रत्येक प्राकृत जन उनके काव्य का आनन्द ले सके। पाश्चात्य विद्वानों के लिए

खीझ उठना स्वाभाविक है। यदि क्षण-क्षण पर उन्हें शब्दकोष की सहायता लेनी पड़े तो इस से रसानुभव व्याहत होता है। परन्तु इस का अर्थ यह नहीं कि भारतीय पण्डित के लिए भी बाण कोषों की सहायता के बिना दुःखगाह्य है। बाण की शैली की निन्दा करने वालों को इसलिए दो बातें ध्यान में रखनी चाहिएँ (१) यह शैली उनकी विशिष्ट अनुभूति का वाहन बनने में सर्वथा समर्थ है (२) जिस का संस्कृत का ज्ञान सीमित है उसकी अशक्ति को बाण की रस-सिद्धता और विदग्धता का मान-दण्ड नहीं बनाया जा सकता।

बाण—युग के प्रतिनिधि

बाण का कृतित्व सातवीं शती के पूर्वार्द्ध में सम्पन्न हुआ। यह वह युग था जब गुप्तकालीन संकृति मध्याह्न को प्राप्त करके सान्ध्यवेला की ओर अग्रसर हो रही थी। भारतीय संस्कृति ने गुप्त युग में जिस चरमोन्मेष को प्राप्त किया उसकी अमिट छाप बाण के काव्य पर है। इस युग में भारत भौतिक और सांस्कृतिक दोनों दृष्टियों से पूर्णतया सम्पन्न था। तत्कालीन संस्कृति का अविकल ज्ञान प्राप्त करने लिए बाण के ग्रन्थ अक्षय निधि हैं। बाण-सूक्ष्मावलोकन शक्ति से सम्पन्न थे। वे अपने परिवेश के प्रति बड़े जागरूक थे। इसलिए उन के वर्णन इतने सजीव, चित्रग्राही और यथार्थ हैं। वर्णन कला में बाण पारंगत हैं। उनकी वर्णना-शक्ति भारतीय साहित्य में अप्रतिम है। जिस वस्तु, व्यापार, अथवा पदार्थ का वर्णन करने लगते हैं, उसी में रम जाते हैं और पाठक की चित्तवृत्तियों को भी इस प्रकार कीलित कर लेते हैं कि ध्यान स्खलित नहीं होने पाता। इन वर्णनों से पता चलता है कि सांस्कृतिक दृष्टि से उस युग में क्या महान था, कला, धर्म, दर्शन, राजनीति में कौन से प्रतिमान स्वीकृत हुए थे और उस संस्कृति में मूल्यों का तारतम्य किस प्रकार का था। यह संस्कृति एक अद्भुत आभिजात्य लिए हुए है। बाण में समाज के दीन हीन कदर्थित वर्गों की गाथा नहीं मिलती। जैसा कि ऊपर कहा गया है वे वैभव और औदात्य के द्रष्टा और स्रष्टा हैं। समाज के उच्चवर्गों की जीवनचर्या, प्रकृति, मनोविनोद के उपादान, वेष-भूषा, आदि का यथातथ्य वर्णन बाण में उपलब्ध होता है जिस से पता चलता है कि वह संस्कृति अपने पूर्ण परिपाक में किस प्रकार के मानव को जन्म देती थी। बाण अत्यन्त मेधावी और व्युत्पन्न कलाकार है। उनकी बहुज्ञता को देखकर आश्चर्य होता है। इतने विषयों के सम्बन्ध में ऐसी सूक्ष्म जानकारी साधारण व्यक्ति द्वारा साध्य नहीं। विशेष लक्ष्य करने की बात यह है कि कृतविद्य और बहुज्ञ होते हुए भी वे भावुक और कल्पनाशील थे। अन्यथा कल्पना की कोमल वल्लरी तथ्यों के भार के नीचे बहुधा दब जाती है और उस पर नये नये भावों के पुष्पों का उन्मीलन नहीं हो पाता।

बाण कालीन संस्कृति की विशेषता यह है (यह विशेषता कालिदासकालीन संस्कृति में भी मिलती है) कि लौकिक विभव में आपादमस्तक भी डूबा हुआ देश आध्यात्मिक मूल्यों के प्रति आस्थाशील था । अतः तत्कालीन मानव के मन में उन आश्रमों के प्रति विशेष अनुराग की भावना बद्धमूल हो चुकी थी जहाँ पर हमारे ऋषियों ने इस देश की सभ्यता की नींव डाली । जिस प्रकार कालिदास की चेतना दिलीप के साथ वसिष्ठ के आश्रम के आस पास भ्रमण करती है और आश्रम की सात्विक जीवनचर्या पर मुग्ध है उसी प्रकार बाण में भी हम उन कृतात्मा ऋषियों के प्रति सहज श्रद्धा और भक्ति का भाव देखते हैं जिन की साधना के आलोक से भारतीय संस्कृति प्रतिमण्डित है । कादम्बरी में पंचवटी आश्रम, जाबालि ऋषि का आश्रम और हर्ष चरित में दिवाकर मित्र का आश्रम इस प्रकार वर्णित हैं कि प्राचीन ऋषियों के गौरव और महिमा की साक्षात् प्रतीति होने लगती है । बाण के वर्णनों में निम्न-लिखित वर्णन विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं । इन से न केवल बाण की कल्पना और विदग्धता का पूरा परिचय मिलता है परन्तु तत्कालीन संस्कृति पर भी विपुल प्रकाश पड़ता है ।

कादम्बरी :—विदिशा राजधानी का वर्णन, आस्थान-मण्डप, राजा शूद्रक का स्नान और भोजन, विन्ध्याटवी, पंपानामक पद्मसर, शाल्मलीवृक्ष, शबर सेना, शबर सेनापति, हारीत नामक ऋषिकुमार, जाबालि आश्रम, उज्जयिनी वर्णन , पुत्रजन्म, जन्ममहोत्सव, विद्यामन्दिर और चन्द्रापीड की शिक्षा, इन्द्रायुध अश्व का वर्णन, राजकुल का वर्णन, चन्द्रापीड की दिनचर्या, शुकनासोपदेश, चन्द्रापीड का यौव-राज्याभिषेक, दिग्विजय के लिए प्रस्थान, सेना की हलचल, अच्छोद सरोवर, शिव-मन्दिर, कुमारी अन्तःपुर का वर्णन, परिचारिकाओं के आलाप, श्रीमण्डप का वर्णन, मणिगृह और क्रीड़ा पर्वत, सान्ध्यवेला, हिमगृह वर्णन शून्य महाटवी का वर्णन, चण्डिका-मन्दिर और उस के पुजारी का वर्णन स्कंधावार-वर्णन, जल-मण्डप वर्णन, पक्कण या चाण्डाल-बस्ती का वर्णन, वसन्तवर्णन, जलदकाल वर्णन ।

हर्षचरित :—पहला उच्छ्वास : प्रदोषसमय, युवक दधीच, बाण के मित्र ।

द्वितीय उच्छ्वास : बाण के बन्धु ब्राह्मणों के घर, निदाघ काल ; दावाग्नि , हर्ष की छावनी में उस का प्रासाद ; राजकीय घुड़साल, राजकीय गजशाला, सम्राट् हर्ष का दरबार ।

तृतीय उच्छ्वास : थी कण्ठ जनपद, स्थाण्वीश्वर, भैरवाचार्य, श्री देवी ।

चतुर्थ उच्छ्वास : पुत्रजन्मोत्सव, राज्यश्री का विवाहोत्सव, कौतुकगृह या कोहवर ।

पंचम उच्छ्वास : शोकग्रस्त स्कन्धावार और राजकुल मुमूर्षु प्रभाकरवर्धन, यशोवती का विलाप ।

षष्ठ उच्छ्वास : राज्यवर्धन का शोक, सेनापति सिंहनाद ।

सप्तम उच्छ्वास : अभियान की तय्यारी, प्रयाणोन्मुख हर्ष, प्रयाण करता हुआ कटक दल, वन-ग्राम और उसके घरों का वर्णन ।

अष्टम उच्छ्वास : विन्ध्याटवी का शबर युवा, विन्ध्याटवी का वर्णन, दिवाकर मित्र का आश्रम, दिवाकर मित्र का राज्यश्री को उपदेश ।

उपरिलिखित शीर्षकों को देखने से पता चलता है कि बाण का चित्र पट कितना विशाल है ; पढ़ने से पता चलता है कि उन के रंग कितने चटकीले और उभरे हुए हैं । उन्हें शास्त्र और लोक का पूरा ज्ञान है । लोकाचार में वे निष्णात हैं और उन का पाण्डित्य उन की पेशलता और विदग्धता को कुण्ठित नहीं कर सका ।

बाण निःसन्देह कला-कोविद थे । चित्रकला, संगीतकला, वास्तुकला, भास्कर्य आदि के पारिभाषिक शब्द उनके काव्य में भरे पड़े हैं विशेषतः प्रासाद-निर्माण-कला और मन्दिर-निर्माण कला के तो वे मर्मज्ञ प्रतीत होते हैं । उच्चवर्गीय लोगों के प्रसाधन आभरण आदि के भी वे निपुण निरीक्षक और परीक्षक हैं—ऐसे सैंकड़ों शब्द उनके काव्य में भरे पड़े हैं जिन से तत्कालीन नागर जीवन के पुष्कल ऐश्वर्य का पता चलता है जैसे :—शतबिंदु अलंकरण, वायुरातपत्र, भ्रमरसंघात, शतावर्त अलंकार, प्रमदवन पक्षद्वार, इन्द्रायुधजाल वर्णांशुक, मायामेघमाला अलंकार, कौशेयक, कोशावरण, क्रीड़ा नदिका, पत्रशबरी, पटलक रत्नमंजूषा, सीमन्तमकरिका, कामपीठ, कुसुमशर पतत्रिन्, पत्रांकुर कर्णपूर, अष्टमंगलक माला, तरंगित उत्तरीयांशुक, त्रियुग तिरस्करिणी, यष्टि-दीप, शेषहार, मौलिमालती माला, पत्रभंग मकरिका, मकरमुख महाप्रणाल समस्त ऐतिह्य बाण के लिए हस्तामलकवत है । वैदिक और पौराणिक अभिप्राय उनकी काव्य-मयी कल्पनाओं में ग्रथित होकर द्विगुणित शोभा से सम्पन्न हो उठे हैं । एक ही व्यक्ति ज्ञान के इतने विषय और विप्रकृष्ट क्षेत्रों को अधिकृत कर सकता है यह देख कर आश्चर्य होता है ।

भारतीय संस्कृति और जीवन मूल्यों के व्याख्याता :-

बाण की ख्याति का आधार दो गुणों को माना जाता है (i) उनकी अनुपमेय शैली (ii) कथाकार के रूप में उनकी सृजनात्मकता परन्तु सांस्कृतिक और दार्शनिक दृष्टिकोणों से उनके कृतित्व पर अधिक विचार नहीं किया गया । ऊपर हमने यह देखने की चेष्टा की है कि तत्कालीन संस्कृति के दर्शन के लिए उनके ग्रन्थ रत्नमंजूषाएं हैं । संस्कृति में मानव व्यक्तित्व के सभी पक्षों—सामाजिक, राजनीतिक, दार्शनिक—का

समाहार किया जा सकता है। क्या बाण की कृतियों में शाश्वत सत्य के रूप या रूपों का साक्षात्कार किया जा सकता है या वे चमत्कृत करने वाली घटनाओं के संयोजक, कल्पनाओं के रंगीन बुद्‌बुदों के उत्थापक मात्र हैं।। क्या उन के शब्द किसी चिरन्तन सत्य के परिधान हैं अथवा केवल प्रगल्भ पाण्डित्य के परिचायक मात्र हैं? क्या उन में कुछ अविचल आस्थाएँ हैं जो भारत की सनातन जीवन-दृष्टि पर अवलम्बित हैं? ये प्रश्न बहुत महत्त्वपूर्ण हैं क्योंकि इन के आधार पर बाण के व्यक्तित्व के अन्तरङ्ग रूप का निरीक्षण हो सकता है।

'हर्षचरित' के द्वितीय उच्छ्‌वास में बाण ने हर्ष से अपने प्रथम मिलन का विवरण दिया है। हर्ष का मन बाण के प्रति कुछ कलुषित हो गया था क्योंकि बाण के कुछ शत्रुओं ने हर्ष के समकक्ष बाणके चरित्र पर लान्छन लगाए थे। जब बाण हर्ष के समक्ष आए तो हर्ष ने यह कहकर मुँह फेर लिया कि 'महानयं भुजंग:' अर्थात् यह बड़ा लम्पट है। इस निरादर से व्यथित होकर प्रतिवाद में जो कुछ बाण ने कहा उससे उनके संस्कारों और चरित्र पर अच्छा प्रकाश पड़ता है। बाण ने कहा—"देव! आप इस प्रकार की बात कैसे कहते हैं जैसे आप को मेरे विषय में सच्ची बात का पता न हो। मैंने सोमपायी वात्स्यायन ब्राह्मणों के कुल में जन्म लिया है। उचित समय पर उपनयन आदि सब संस्कार मेरे किए गए। मैंने सांग वेद भली प्रकार पढ़ा है और शक्ति अनुसार शास्त्र भी सुने हैं। विवाह के क्षण से ले कर मैं नियमित गृहस्थ रहा हूँ। मुझ में क्या भुजंगपना है?"

इस उद्धरण से पता चलता है कि बाण का पालन-पोषण बड़े सात्विक वातावरण में आर्योचित पद्धति के अनुसार हुआ। द्वितीय उच्छ्‌वास के आरम्भ में ही उन्होंने अपने बन्धु-बांधवों के घरों का वर्णन किया है जिस से पता चलता कि उन का कुल कर्मकाण्डी ब्राह्मणों का कुल था। "उन घरों में सोमयज्ञों को देखने के लोभी बटु जिनके मस्तक पर त्रिपुंड्र भस्म लगी हुई थी इकट्ठे थे, उनके सामने सोम की हरी क्यारियाँ लगी हुई थी, बिछे हुए कृष्णाजिन पर पुरोडाश बनाने के लिए साँवा सूख रहा था,कुमारी कन्याएँ अकृष्टपच्य नीवार की बलि से पूजा कर रही थीं। शिष्य कुश और पलाश की समिधाएँ इकट्ठी कर रहे थे, होम के लिए दूध देने वाली गउएँ आँगन में बैठी थीं।"

इस प्रकार के परिवेश में जिस व्यक्ति के मन: संस्थान का निर्माण हुआ है उसकी अनुभूति में भारतीय आस्थाएँ यदि आद्योपान्त ओतप्रोत हों तो आश्चर्य की बात नहीं। ऋषियों, आश्रमों और उनके वातावरण का वर्णन करते हुए बाण की लेखनी

में विलक्षण शक्ति का संचार हो जाता है और ऐसे लगता है मानों इस प्रकार का जीवन मानव के लिए चरम उपलब्धि है । उनकी आध्यात्मिकता लोक-विद्वेषी नहीं । भारतीय इतिहास के इस स्वर्ण युग की यही विशेषता है कि इसमें आध्यात्मिकता को लोकाचार और लोक-जीवन का परिपन्थी नहीं माना गया । भौतिक, मानसिक और बौद्धिक विकास के सन्दर्भ में ही यह आध्यात्मिकता प्रबुद्ध हुई । आध्यात्मिकता के आगमन का यह अर्थ नहीं कि मानव जीवन और व्यक्तित्व के दूसरे आयाम तिरस्कृत कर दिए जाएँ । बाण में जैसा कि ऊपर कहा गया है लौकिक वैभव और विलास, काम के आवेश, और सौन्दर्य्य की मोहिनी के उत्तान चित्र हैं परन्तु इन सब को आध्यात्मिकता की आर्ष, सात्विक ज्योति वेष्टित किए हुए है ।

यह आर्ष ज्योति एक और दिशा में भी प्रस्फुटित हुई है । कालिदास का सन्देश यह है कि काम-वासना पाश है, बन्धन में डालने वाली है, इस को प्रश्रय देना, ऋत का उल्लंघन करना है । तप के द्वारा जब इस काम वासना का मल निर्धूत हो जाता है तो यह भास्वर प्रेम के रूप में व्यक्त होती है । शकुन्तला और दुष्यन्त के प्रथम समागम के पीछे मन्मथ का दुर्वार वेग है इसी लिए वे विपन्नावस्था को प्राप्त होते हैं । जब तपश्चर्या के द्वारा शकुन्तला पश्चात्ताप करती है और उस का काम प्रेम में परिणत हो जाता है तब उनका मिलन अनर्थ-प्रद नहीं रहता । कालिदास के कुमारसंभव, विक्रमोर्वशीय का भी यही सन्देश है । बाण की कादम्बरी में भी हम इसी उदात्त अभिप्राय की अभिव्यक्ति देखते हैं । चन्द्रापीड़ और वैशम्पायन मार से धर्षित होकर दुर्गति को प्राप्त होते हैं । परन्तु अपनी दुर्बलता को समझकर और मार पर विजय प्राप्त कर के ही अर्थात् काम के लोहे को प्रेम के हेम में बदल कर ही वे अपनी सहज गरिमा में प्रतिष्ठित होते हैं । इन्द्रिय- निग्रह, सयंम, विषयों के प्रति वितृष्णा जिस से जीव भवाटवी में भटकने से बच जाता है—यह भारतीय संस्कृति का चिरन्तन सन्देश है । इसी सन्देश को अपनी प्रोज्ज्वल वाणी के द्वारा बाण ने सहृदयों के मानस-पटल पर अमार्जनीय अक्षरों में उत्कीर्ण कर दिया है ।

३

बाण—एक विश्लेषण

बाण संस्कृत साहित्य गगन-मण्डल का वह उज्ज्वलतम सितारा है जिसे पाश्चात्य एवं पूर्वात्य—दोनों ओर के विद्वानों ने एक मन होकर सराहा है। प्राचीन काल के समालोचकों ने तो विशेष रूप से बाण की मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की है। वे उन्हें सरस्वती मां का वरद्पुत्र घोषित करते हैं। गोवर्धनाचार्य ने इनको वाणी का साक्षात् अवतार माना है :—

"जाता शिखण्डिनी प्राग्यथा शिखण्डी तथाऽवगच्छामि।
प्रागल्भ्यमधिकमाप्तुं वाणी बाणो बभूवेति ॥" (आर्यासप्तशती)

अर्थात् 'पहले कभी शिखण्डिनी ने जिस प्रकार अत्यधिक प्रगल्भता प्राप्त करने के लिए शिखण्डी का रूप धारण कर लिया था, उसी प्रकार वाणी सरस्वती ने भी पुरुष रूप में अत्यधिक चमत्कार उपलब्ध करने की कामना से बाण का रूप धारण किया।'

बाण महाराज हर्ष (६०६–६४८ ई०) के आश्रित कवि थे। हर्ष बाण की काव्य-प्रतिभा से भली प्रकार भिज्ञ थे, इसीलिए उन्होंने बाण को **'वइयवाणीकविचक्कवर्ती'** की उपाधि से विभूषित किया था। बाण की यद्यपि बहुत सी रचनाएँ हैं पर निःसन्देह रूप से उनकी दो कृतियां—हर्षचरित तथा कादम्बरी ही विशेष श्लाघनीय हैं।

राजशेखर के मतानुसार बाण की शैली पांचालीरीति—अर्थ के अनुरूप शब्द गुम्फन—का भव्य निदर्शन है। इन के अतिरिक्त संस्कृत साहित्य के अन्य आलोचकों ने इनकी दोनों कृतियों को पांचाली रीति के सुन्दरतम उदाहरण माना है। 'सरस्वती-कण्ठाभरण' में बाण की इस सुन्दर शैली की विशेषरूप से सराहना हुई है।

"शब्दार्थयोः समो गुम्फः पांचालीरीतिरिष्यते।
शिलाभट्टारिकावाचि बाणोक्तिषु च सा यदि ॥"

भाषा और भाव, शब्द तथा अर्थ के सुन्दर सामंजस्य के साथ ही साथ बाण की शैली की विशिष्टता उसकी वक्रोक्ति में निहित है। विद्वान् समालोचक वक्रोक्ति

मार्ग में केवल तीन ही कवियों को निपुण मानते हैं—सुबन्धु, बाण तथा कविराज। इनके समकक्ष चौथा कोई कवि नहीं आता।

"सुबन्धु बाणभट्टश्च कविराज इति त्रयः।
वक्रोक्तिमार्गनिपुणाश्च चतुर्थो विद्यते न वा॥" (राघवपाण्डवीय)

इस प्रकार सुबन्धु तथा बाण दोनों ही यद्यपि गद्यकाव्य के उत्कृष्ट कवि हैं, दोनों का रचना क्षेत्र भी एक जैसा ही है पर वास्तव में देखा जाए तो दोनों की शैलियों मे महान् अन्तर है। सुबन्धु काव्य-प्रतिभा में बाण के समान स्तर पर नहीं रखे जा सकते। सच तो यह है कि बाण की कृतियों में उपलब्ध होने वाली सूक्ष्मनिरीक्षण शक्ति, चमत्कारमयी वर्णन प्रणाली, अजस्र एवं अक्षय शब्दराशि, कथावस्तु के सौष्ठव, आडम्बर-कृत्रिमता तथा गति-शैथिल्य के अभाव, रससिद्धि, सफल एवं यथार्थ चरित्र-चित्रण तथा कल्पना-प्रसूत मौलिक अर्थों की उद्भावना ने बाण को सर्वश्रेष्ठ गद्यकार बना दिया है। उनके गद्य में इतना अबाध, अक्षय एवं अकल्पनीय प्रवाह है जो बाण परवर्ती कवियों के द्वारा लाखों प्रयत्न करने पर भी अछूता रहा है। और सम्भवतः इसीलिए बाण को—**'बाणोच्छिष्टं जगत्सर्वम्'** से विभूषित किया गया है। बाण की उदात्त एवं सरल कविता के समक्ष अन्य कवियों की रचनाओं को चपलता मात्र बताने वाली त्रिलोचन कवि की यह उक्ति नितान्त सत्य है :—

"हृदि लग्नेन बाणेन यन्मदोऽपि पदक्रमः।
भवेत् कविकुरङ्गानां चापल्यं तत्र कारणम्॥"

बाण का अपार पाण्डित्य उनकी रचनाओं में सर्वत्र परिलक्षित होता है। बाण—व्याकरण, अलंकार शास्त्र, पुराण-इतिहास ग्रन्थ, वैशेषिक वेदान्त एवं बौद्ध दर्शन आदि के विशेष विद्वान् थे। बाण की काव्य-प्रभा के आलोक ने परवर्ती गद्यकारों के मार्ग को सदा ही प्रशस्त किया है तथा उनकी उत्कृष्ट काव्य-प्रतिभा ने सहृदयों को सदा ही अपनी ओर आकृष्ट किया है।

बाण की कादम्बरी संस्कृत वाङ्मय का समुज्ज्वल हीरक है। इसमें कल्पना तथा वर्णन का अपूर्व संघटन एवं अलंकार तथा रस का मधुर समन्वय सर्वत्र बड़ा सफल बन पड़ा है। भाषा, भाव, शब्द तथा अर्थ का बड़े ही सुन्दर ढंग से निर्वाह किया गया है। पर वास्तव में देखा जाए तो कादम्बरी में बाण अधिकतर स्वच्छन्दता पूर्वक कल्पना-जगत् में ही विचरण करता दिखाई देता है। दूसरी ओर हर्षचरित में बाण वास्तविक जगत् में उतर कर अधिकतर यथार्थ तथा सजीव घटनाओं का चित्रण करता है। इस बात में तो कोई सन्देह नहीं कि हर्षचरित में भी कई स्थानों पर बाण ने अपनी अद्भुत कल्पना शक्ति का प्रदर्शन किया है पर सच्ची बात तो यह है कि उसमें अधिक-

तर बाण ने हर्ष के जीवन सम्बन्धी उपयोगी सामग्री को ही पाठकों के समक्ष रखने का प्रयत्न किया है। यद्यपि हर्षचरित अतिशयोक्तियों तथा अन्य विविध प्रकार के अलंकारों से भरा पड़ा है पर इतना फिर भी कहा जा सकता है कि इसमें वर्णित ऐतिहासिक घटनाओं, राजनैतिक तथा सामाजिक अवस्थाओं की पुष्टि तत्कालीन शिलालेखों तथा चीनी यात्री ह्वेनसांग के यात्रा-विवरण से अवश्य हो जाती है। इसके अतिरिक्त महाराज हर्ष के जीवन सम्बन्धी कई एक ऐसे ऐतिहासिक तथ्यों का पता हर्षचरित से चलता है, जिन का अन्य किसी भी स्थान पर उल्लेख नहीं हुआ। इस प्रकार हर्ष के जीवन की प्रच्छन्न घटनाओं पर प्रकाश डालने के कारण इस काव्य की उपादेयता और अधिक बढ़ गई है।

बाण की अमर कृति कादम्बरी एक ऐसी प्रणयगाथा है जिस में कवित्व एवं रसमयता अपनी चरम-सीमा पर दिखाई देता है। इसमें वर्णित प्रणय-चित्रण अत्यधिक उदात्त और सुन्दर है। बाण ने इस में अपने पात्रों के सात्विक भावों का ही अधिकतर चित्रण किया है और सम्भवतः इसीलिए इसमें अश्लीलता का नाम तक नहीं है। कादम्बरी का प्रेम मर्यादित तथा गम्भीर है। बाण उच्छृंखलित तथा अमर्यादित प्रेम में कभी भी विश्वास नहीं रखते थे। यद्यपि इसमें हमारे देखने में आता है कि महाश्वेता तथा कादम्बरी पुण्डरीक तथा चन्द्रापीड के बाह्य सौन्दर्य पर प्रथम दर्शन में ही आकर्षित होकर उनसे प्रेम करने लगती है, पर वास्तव में उन्हें प्रिय-मिलन सतत् साधना, विरह वेदना तथा लम्बी प्रतीक्षा के बाद ही होता है। इसके साथ ही पुण्डरीक के असंयत प्रणय की कपिञ्जल द्वारा की गई कटु भर्त्सना भी हमारे देखने में आई है। पर वास्तव में देखा जाए तो इस आलोचना का रहस्य बाण के अनियन्त्रित प्रणय में होने वाले अविश्वास में छिपा हुआ स्पष्ट दिखाई दे जाता है। कपिञ्जल द्वारा की गई भर्त्सना इस बात का प्रमाण है कि बाण वासनामय तथा उच्छृंखल प्रणय के कभी भी पक्षपाती नहीं रहे। कादम्बरी का प्रधान रस भी शृंङ्गार है पर इसके चित्रण में बाण ने सर्वत्र संयतभाव को ही अपनाए रखा। इसके अतिरिक्त कादम्बरी में जिस प्रकार की वर्णन विविधता पाई जाती है वैसी अन्यत्र मिलनी दुर्लभ है। इस प्रकार कादम्बरी में सर्वत्र कवित्वमय वातावरण के ही दर्शन होते हैं।

इस प्रकार यदि बाण की कादम्बरी-प्रेमतत्व के चित्रण, उच्च मानवीय भावों के प्रतिष्ठापन, प्राकृतिक दृश्यों की रंगीन छटा, मानवीय सौन्दर्य की सुन्दर अभिव्यञ्जना, मानसिक उथल-पुथल की भावमयी तरलता, नारी सौन्दर्य की उत्कृष्टता, काल्पनिक कथा की सृष्टि तथा उत्कृष्टतम काव्य-प्रतिभा के कारण अपने में अद्वितीय है तो दूसरी ओर हर्षचरित ने लोक-विश्रुत महाराज हर्ष के जीवन-चरित के वर्णन, तत्कालीन

सामाजिक, धार्मिक तथा राजनैतिक जीवन एवं परम्पराओं की झांकी, तथा ऐतिहासिक घटनाओं के यथार्थ चित्रण को सन्तुलित शैली में प्रस्तुत करने के कारण बाण को एक सफल ऐतिहासिक काव्यकार की श्रेणी में ला खड़ा किया है। इस प्रकार विषय-विवेचन में वैविध्य होने पर भी बाण की इन दोनों अमर कृतियों में कई एक ऐसी विशिष्ट विशेषताएं हैं जो बाण को एकदम उच्चस्तरीय कवि बना देती हैं।

बाण की कृतियों की सर्वोत्कृष्ट विशेषता है—इनकी उदात्त वर्णन प्रणाली तथा सर्वत्र-सन्तुलित शैली का प्रयोग। इनकी रचनाओं में सर्वत्र नवीनता है, सरसता है। इनमें अर्थों अथवा भावों का पिष्टपेषण कहीं भी दृष्टिगोचर नहीं होता। शब्द-रचना में बाण की अद्भुत प्रभुता है। उनके गद्य में अजस्र प्रवाह है। कुछ एक आलोचक उनके गद्य को, कहीं तो घोर-शोर शब्द करने वाली बरसाती नदी के समान माना है और कहीं शरत्कालीन शान्ति सरिता के समान, अपूर्व सौन्दर्य दिखलाता हुआ, मन्दगति से चलने वाला जल-प्रवाह स्वीकार किया है। बाण ने अपनी कृतियों को कहीं तो समासों की प्रचुरता तथा लम्बे लम्बे वाक्यों से अलंकृत किया है और कहीं उन्होंने छोटे छोटे सरल तथा सरस वाक्यों का ही प्रयोग किया है। बाण जहां प्रकृति के विकट दृश्यों, मानवीय सौन्दर्य तथा राजसी-वैभव का चित्रण करते हैं वहां वे समास बहुला दीर्घ-काय पदावली को ही प्रायः प्रयोग में लाते हैं। विन्ध्याटवी, सूर्यास्त-चन्द्रोदय, अच्छोद-सर, विभिन्न वृक्षों, शरत्काल, प्रभात-सन्ध्या एवं रात्रि, महाश्वेता तथा कादम्बरी एवं राजसभा तथा राज भवन आदि के वर्णन बाण की सशक्त तथा उत्कृष्ट शैली के ज्वलन्त प्रमाण हैं।

पिता की बिमारी का समाचार सुन, स्कन्धावार से लौटकर आया हर्ष जब राजकुल में प्रवेश करता है उस समय का जो वर्णन बाण ने अपनी उदात्त, गम्भीर तथा समास-बहुला शैली में किया है वह सर्वथा प्रेक्षणीय है :—

"हूयमानवृषवाज्यलवलिप्तप्रबलदूर्वापल्लवम् पठ्यमानमहामायूरीप्रवर्त्यमानगृहशान्तिनिर्वर्त्यमानभूतरक्षाबलिविधानम्, प्रयतविप्रप्रस्तुतसंहिताजपं, जप्यमानरुद्रैकादशीशब्दायमानशिवगृहम्, अतिशुचिशैवसंपाद्यमानविरूपाक्षक्षीरकलशसहस्रस्नपनम्, अजिरोपविष्टैश्चानासादितस्वामिदर्शनदूयमानमानसैरभ्यन्तरनिष्पतितनिकटवर्तिपरिजननिवेद्यमानवार्त्तैर्वार्तीभूतस्नानभोजन शयनैरुज्झितात्मसंस्कारमलिनवेषैर्लिखितैरिव निश्चलैर्नरपतिभिर्नोयमानानक्तंदिवं......बाह्यपरिजनेन कथ्यमानकष्टपार्थिवावस्थं राजकुलं विवेश।"

दूसरी ओर बाण जब अपने हृदय पट के सम्पूर्ण वेग को एकदम उड़ेल देना चाहता है, वहाँ, न तो समासों का प्रयोग है और न ही वाक्यों की दीर्घता। इसके

अतिरिक्त पात्रों के सम्वादों और विशेष कर किसी को उपदेश देते समय तो बाण बहुत ही छोटे-छोटे सरस तथा सरल वाक्यों का प्रयोग करते हैं। कादम्बरी के शुकनासोपदेश तथा कामपीड़ित पुण्डरीक को कपिञ्जल द्वारा दी गई शिक्षा-बाण की इस सरल-सुबोध तथा प्रभावशाली शैली के उत्कृष्टतम उदाहरण हैं। मदन-व्यथा से संतप्त पुण्डरीक की भर्त्सना करते हुए कपिंजल कहता है :—

"सखे ! पुण्डरीक ! नैतदनुरूपं भवतः। क्षुद्रजनक्षुण्ण एष मार्गः। धैर्य्यधना हि साधवः। क्व ते तद्धैर्य्यम्। क्वासाविन्द्रियजयः। क्व तद्वशित्वं चेतसः। क्व सा प्रशान्तिः, क्व तत् कुलक्रमागतं ब्रह्मचर्य्यम्। क्व सा सर्व विषय-निरुत्सुकता, क्व ते गुरूपदेशाः।"

अमात्य शुकनास का युवराज चन्द्रापीड़ को दिए गए उपदेश का भी एक उदाहरण देखिए :—

"लब्धापि दुःखेन पाल्यते। न परिचयं रक्षति। नाभिजनमीक्षते। न रूपमालोकयते। न कुलक्रममनुवर्तते। न शीलं पश्यति। न वैदग्ध्यं गणयति।

इस प्रकार इन लघुकाय वाक्यों का एक एक शब्द भावपूर्ण तथा विद्वत्तापूर्ण है।

बाण ने शब्दालंकारों तथा अर्थालंकारों-दोनों का ही बड़ी सफलता से अपनी रचनाओं में प्रयोग किया है। श्लेषगर्भित-उत्प्रेक्षाओं उपमाओं, रसनोपमा, परिसंख्या, अनुप्रास तथा विरोधाभासादि अलंकारों की छटा इनके काव्य में सर्वत्र प्रेक्षणीय है। बाण की शैली तथा उसमें प्रयुक्त उत्प्रेक्षा अलंकार की मुक्त कण्ठ से प्रशंसा करते हुए प्रो॰ विद्या निवास मिश्र एक स्थान पर कहते हैं—"जिसको उत्प्रेक्षा कहकर प्रायः लोग टाल देते हैं, वह वस्तुतः बाणभट्ट की योजनात्मक शक्ति का प्रस्फुटन है। जिसे हम रंगों की पहिचान कहकर ही सन्तोष कर लेते हैं, वह वस्तुतः बाणभट्ट के स्वयं रंग में पगे होने का प्रमाण है। बाण के लिए रूप चाहे मनुष्य का हो, चाहे प्रकृति का हो, चाहे पशु-पक्षी का हो, जादू नहीं है, बन्धन नहीं है, वह विश्व के जीवन का केन्द्र है। इसलिए एक रूप गढ़ने में बाणभट्ट को समस्त विश्व के समकक्षी रूप याद आ जाते हैं। कादम्बरी तथा महाश्वेता के प्रथम-दर्शन के वर्णन इनके सबसे बड़े शक्तिशाली प्रमाण हैं। महाश्वेता प्रेम की दहकती हुई दीपशिखा है तो कादम्बरी अन्तर्दाह। शब्द नये देने की चेष्टा बाण ने नहीं की है। वस्तुतः उपयुक्त अर्थ के लिए उपयुक्त शब्द उनके पीछे दौड़ते रहते हैं। वे वासवदत्ता के रचयिता सुबन्धु की तरह प्रत्यक्षर-श्लेष के आदर्श के पीछे नहीं भटकते फिरते और साथ ही भवभूति की तरह शब्द संगीत के पीछे भी नहीं।"

जहाँ तक बाणभट्ट के पात्र चरित्र-चित्रण का सम्बन्ध है, इसमें उन्हें पूर्ण सफलता मिली है। वे पात्रों के चरित्र-चित्रण में सर्वत्र अद्भुत कला का परिचय देते हैं। उनको

चित्रण-यथार्थ, विशाल तथा वैविध्यपूर्ण है । उनके प्रायः समस्त पात्र-सजीव एवं जीवित-जाग्रत से जान पड़ते हैं । कथानक लोकोत्तर होने पर भी कथा के पात्र इह-लौकिक मूर्तियां हैं । विनम्र-ज्ञानवान् तथा सौम्य तापस हारीत, धर्म तथा सदयता की साक्षात् मूर्ति-ज्ञानवृद्ध जाबालि, दयालु एवं सर्वप्रिय तारापीड़, पराक्रमी महाराजा शूद्रक, शास्त्र एवं व्यवहार कुशल ग्रमात्य शुकनास, प्रिय किंतु नियम-बद्ध कपिंजल, शुभ्रवसना-तपस्विनी महाश्वेता, कमनीय कलेवरा कादम्बरी, अनन्य-प्रेमी तथा अभिन्न-मित्र पुण्डरीक एवं सभी नायकोचित गुणों से समन्वित चन्द्रापीड़—कवि की कमनीय तथा विचित्र तूलिका से चित्रित ये सब पात्र पाठक के हृदय पर अपनी अमिट छाप छोड़ देते हैं।

कादम्बरी के पात्रों के चरित्र-चित्रण करने में कवि सचमुच ही अपने अक्षय शब्द-भण्डार का विस्तृत परिचय देता है। उसका सांसारिक एवं तपस्वी जनोचित ज्ञान कितना था—इसका भी परिचय कवि ने कादम्बरी में यथोचित स्थानों पर पूर्ण-रूपेण दिया है । कादम्बरी के बहुत से पात्रों की गाथा यद्यपि जन्म-जन्मान्तरों से चली आती है तथापि पाठक क्षण भर के लिए भूल सा जाता है कि वह इस जन्म की कहानी पढ़ रहा है या किसी दूसरे जन्म की । पाठक स्वयं को पात्रों के सुख-दुःख का भागी मानने लग जाता है । इसमें मानव जाति के कभी न समाप्त होने वाले दुःख और उन के लिए प्रकृति की सांत्वना का सच्चा निदर्शन है। इसके अतिरिक्त नारी-जाति के हृदय का सूक्ष्म एवं मार्मिक अवलोकन बाण की निजी विशेषता है । यूं जान पड़ता है मानों वह स्वयं नारी के हृदय में उतर कर स्वानुभूत बातों का ब्योरा प्रस्तुत कर रहा है। यही कारण है कि उसके द्वारा वर्णित महाश्वेता और कादम्बरी की मनोवस्था का इतना सुन्दर एवं हृदय-ग्राही वर्णन हो पाया है। कादम्बरी के चित्रण में बाण ने अपने अप्रतिम कल्पना-वैभव, वर्णन-पटुता और मानव-मनोवृत्तियों के मार्मिक निरीक्षण का परिचय दिया है ।

दूसरी ओर हर्षचरित एक ऐतिहासिक रचना है, अतः इसमें बहुत ही कम पात्रों का प्रयोग हुआ है, तो भी इसके मुख्य-मुख्य पात्रों—वाणी की अधिष्ठात्री देवी-मुग्धा सरस्वती, प्रगल्भा एवं संवेदनशीला-सावित्री, स्वाभिमानी तथा घुमक्कड़-प्रवृत्ति वाले बाण, वर्धन वंश के आदि संस्थापक पुष्पभूति, दाक्षिणात्य महाशैव भैरवाचार्य, पराक्रमी-दयावान् तथा प्रतापी राजा प्रभाकर वर्धन, आदर्श प्रतिव्रता भारतीय नारी यशोमती, आज्ञाकारी-स्नेहशील तथा शूर-योद्धा राज्यवर्धन, निर्भीक-साहसी तथा कर्त्तव्यपरायण महाराजा हर्ष, नृत्य-गीत आदि कलाओं में प्रवीण तथा आत्म-संयमी राज्यश्री एवं बौद्धभिक्षु आचार्य दिवाकरमित्र आदि—के यथार्थ एवं सजीव चित्रण में बाणभट्ट की प्रतिभा सर्वत्र प्रस्फुटित हुई है ।

महाराज हर्ष की सभा का कवि होने पर भी बाण ने केवल उच्चवर्ग का ही वर्णन नहीं किया अपितु जीवन के उस पक्ष का भी वर्णन किया है जिसकी विद्यमानता का शायद उच्चवर्ग को ज्ञान भी न हो । हर्षचरित में बाण ने तत्कालीन भारतीय समाज का पूर्ण रूपेण चित्र प्रस्तुत किया है । राजा-रंक, तपस्वी-गृहस्थी उच्च और नीच, द्रविड़ और चण्डाल—इन सबको उसकी सूक्ष्म, तीक्ष्ण तथा पैनी दृष्टि ने देखा है ।

कालिदास की तरह बाण भी प्रकृति-देवी के प्रवीण पुरोहित थे । प्रकृति का वर्णन करने में उनकी लेखनी कभी भी न रुकी । भवभूति की तरह बाण ने प्रकृति के उभय-पक्ष को प्रस्तुत किया है । उस ने कालिदास की तरह प्रकृति को कोमल-कामिनी, नववधू भी माना है एवं भवभूति की तरह भयानक पक्ष के वर्णन में समभाव से सफलता को भी प्राप्त किया है । विन्ध्याटवी के भयंकर रूप का चित्रण बाण ने जितनी सफलता के साथ किया है, वह सचमुच आश्चर्य जनक है । दूसरी ओर अच्छोद सरोवर का वर्णन करते समय बाण ने सचमुच ही सुभग पदों की चरमसीमा को स्पर्श किया है । बाण सचमुच ही—सूक्ष्म-निरीक्षण शक्ति, चमत्कृत वर्णन-प्रणाली, अक्षय शब्दराशि, तथा कल्पना प्रसूत मौलिक अर्थों की उद्भावना के कारण संस्कृत के गद्य काव्य जगत् में अद्वितीय स्थान रखते हैं । उनकी अद्भुत वर्णनशक्ति सर्वथा प्रशंसनीय है । उनकी दोनों अमर कृतियों में चित्रित किए नैसर्गिक चित्र बड़े ही सजीव, हृदयावेजक तथा भावाभिव्यञ्जक हैं । मरणासन्न प्रभाकरवर्धन का चित्रण बाण ने बड़ी ही सुन्दर तथा मार्मिक शैली में किया है । यशोमती के विलाप तथा राज्यवर्धन के शोक के वर्णन में तो बाण ने करुण-रस में अपनी विशेष सिद्ध-हस्तता को प्रमाणित किया है । इसी प्रकार हर्ष का दिग्विजय भी वीररस से ओत-प्रोत बन पड़ा है । हर्षचरित में बाण ने भारत का एक अत्यन्त उज्जवल तथा प्रामाणिक चित्र खींचा है, यदि ऐसा कहा जाए तो इसमें कोई अत्युक्ति न होगी । इसमें तत्कालीन प्रचलित विभिन्न धार्मिक सम्प्रदायों का और विशेष कर बौद्धों के आचरण तथा ब्राह्मणादि जातियों के विविध व्यवसायों का बड़ा ही स्पष्ट चित्र प्रस्तुत किया है ।

कादम्बरी में शृंगार रस का वर्णन कई स्थलों पर अनेक प्रकार से हुआ है । पर वह शृंगार तथा प्रेम सीमा-बद्ध रहा है, कभी भी उच्छृंखलता के छोर को नहीं छू पाया है । 'दशकुमारचरित' के पात्रों की तरह कादम्बरी के पात्र धूर्त व लम्पट नहीं है । बाण ने इस में यह दिखलाया है कि सच्चा प्रेम संयत, निष्काम तथा कुल और समाज की मर्यादा का उल्लंघन नहीं करता । काल की कराल छाया न उसे आक्रान्त कर सकती है, न काल का प्रवाह उस की स्मृति को मलिन व धुंधला ही बना सकता है । कादम्बरी में वर्णित प्रणय बाहरी चकाचौंध से उत्पन्न होने वाले रूप

पर अनुरक्ति मात्र नहीं, वह तो जन्म-जन्मान्तर की गाथा है और है आदर्श-प्रणय का सच्चा निदर्शन। इस प्रकार बाण भौतिक प्रेम में विश्वास नहीं रखते अपितु जन्म-जन्मान्तर समुद्भूत आध्यात्मिक प्रेम में विश्वास रखते हैं।

इस प्रकार ऊपर वर्णित सभी गुण बाण की कृतियों में होने पर भी उन्हें निष्कलंक नहीं कहा जा सकता। चन्द्रमा में कलंक के समान उन में कुछ एक दोष अवश्य अखरते हैं। बाण की कृतियों में सब से बड़ा दोष है—श्लेष, वक्रोक्ति, अप्रचलित शब्द, पौराणिक-संकेत, श्रमसाध्य समास एवं असंख्य उपमाओं तथा उत्प्रेक्षाओं की विद्यमानता। यदि यह कहा जाए कि पाठक प्रायः इनके चक्कर में फंस कर कवि की वास्तविक भावना तक पहुँचने में असमर्थ सा रहता है, तो इस में अत्युक्ति न होगी। इन सब ने मिल कर कादम्बरी के कथा प्रवाह को कई स्थलों पर रोक सा दिया है। इसके अतिरिक्त कादम्बरी की कथा में कथा और पुनः दूसरी कथा में तीसरी कथा बहुत ही खटकती सी है। पाठक इन सब कथाओं को अपने मस्तिष्क में एक साथ नहीं बिठा पाता। परिणामतः कथानक का पारस्परिक सम्बन्ध टूट सा जाता है। कथानक का एक बड़ा भाग तोते के मुख से कहलवाना भी अनुचित सा जान पड़ता है। बाण की कृतियों का एक अन्य दोष उन का कहीं कहीं अनुचित विस्तार भी है। महाश्वेता के नाम सार्थक्य का वर्णन करते समय कवि कथानक के प्रवाह को तो एकदम भूल ही जाता है। यही अवस्था चण्डिका मन्दिर के वर्णन की है। पाठक विशेषण और पुनः विशेषणों के विशेषण पढ़ता हुआ ऊब सा जाता है और अपने ऊपर बोझ सा अनुभव करने लगता है।

पर बाण द्वारा इस प्रकार की क्लिष्ट, समास बहुला तथा श्लेषमयी भाषा के प्रयोग के लिए कतिपय भारतीय विद्वान् उन्हें दोषी नहीं ठहराते। उन का कथन है कि बाण ने इस प्रकार की क्लिष्ट भाषा-शैली का प्रयोग उस समय के प्रचलित साहित्यिक मानदण्ड तथा मान्यताओं के आधार पर, साधारण जनता के लिए नहीं अपितु विद्वद्वर्ग की सन्तुष्टि के लिए किया था। इस दिशा में डा० हरिदत्त शास्त्री की—पाश्चात्य आलोचकों द्वारा बाण पर लगाए गए दोषों के निराकरण में—जो दृढ़ धारणा है, उसे यहां उद्धृत करना असंगत न होगा—"वस्तुतः किसी साहित्यकार की आलोचना उस के समय के साहित्यिक मानदण्ड तथा मान्यताओं के आधार पर ही की जानी चाहिए। इस लिए बाण की रचनाओं को आधुनिक गद्य अथवा पद्य की कसौटी पर रख कर उन का मूल्यांकन करना कवि के प्रति अन्याय होगा। पाश्चात्य आलोचकों द्वारा बाण की शैली की कटु आलोचना किए जाने का एकमात्र कारण यही रहा है कि उन्होंने कवि के समय की साहित्यिक मान्यताओं के आलोक में बाण की रचनाओं को नहीं देखा। बाण के समय संस्कृत साहित्य में अलंकृत गद्य शैली ही

प्रतिष्ठित थी। तत्कालीन उत्कृष्ट गद्य शैली के आदर्श थे---वक्रोक्तिमय श्लिष्ट प्रयोग, सरस कल्पनाएं, समास-बहुलता तथा वस्तु वर्णन में दीर्घकाय वाक्यों की योजना। इन विशेषताओं को उत्कृष्ट काव्य का मानदण्ड मान कर यदि बाण के साहित्य की परीक्षा करें तो बाण निःसन्देह महाकवि सिद्ध होंगे। उनके वक्रोक्तिमय सरल श्लिष्ट प्रयोग, गद्य-सुलभ रूक्षता पर रूपहला आवरण डालने वाली मनोरम कल्पनाएं, शैली की रसमत्ता, सूक्ष्म पर्यवेक्षण शक्ति, उपयुक्त विशेषणों का भण्डार, स्वाभाविक अलंकार, कभी न रीतने वाला शब्द-कोश, वर्णों और पदों का रसानुकूल विन्यास तथा विषयानुसारिणी वाक्य-योजना—ये बाण की उल्लेखनीय विशेषताएं हैं।

इसी प्रकार अन्य भी कई भारतीय विद्वानों ने बाण की शैली की विशेषताओं की बड़ी सराहना की है, पर सच्ची बात तो यह है कि कुछ विद्वान् यह चाहे कह दें कि बाण की कृतियों का तत्कालीन स्तर पर यदि विश्लेषण किया जाए तो ये दोष, दोष नहीं अपितु गुण बन जाएंगे और फिर यह भी स्वीकार किया जा सकता है कि बाण द्वारा प्रस्तुत समस्त सामग्री तत्कालीन पण्डित-मण्डली को विशेष अभीष्ट थी, परन्तु इस बात से तो किसी का भी विरोध नहीं हो सकता कि एक आदर्श रचना वह ही है जो सार्वदेशिक, सार्वकालिक तथा सार्वजनिक हो। इस बात को ध्यान में रखते हुए तो हमें, बाण विषयक वेबर (Weber) की यह उक्ति सर्वथा उचित सी ही जान पड़ती है कि :—

"This work (Kadambri) compared most unfavourably with the Daskumarcrita by a subtlety and tautology which are almost repugnant, by an outrageous overloading of single words with epithets ; the narrative proceeds in a strain of bombastic nonsense ; amidst which it, and if not it, then the patience of the reader, threatens to perish altogether."

इसके साथ ही साथ वेबर बाण के गद्य की तुलना भारतीय वन के साथ करते हुए भी नहीं झिझकते :—

"In short, Bana's prose is an 'Indian wood' where all progress is rendered impossible by the undergrowth until the traveller cuts out a path for himself and where, even then, he has to reckon with malicious wild beasts in the shape of unknown words that affright him."

पर इन सब प्रकार के दोषों के होने पर भी बाण संस्कृत साहित्य की प्रथम श्रेणी के कवियों में से एक हैं। और फिर बाण जैसे सफल कवि के लिए ये दोष दोष नहीं कहे जा सकते। उन के दूसरे बाहुल्य गुणों के समक्ष ये नगण्य से ही प्रतीत होते हैं। यदि किसी ने, संस्कृत गद्य में कितनी ओजस्विता आ सकती है, कितना मंजुल

प्रवाह हो सकता है और कितनी भावाभिव्यंजना हो सकती है--इन सब का पूर्ण परिचय पाना हो तो उन्हें बाण की रचनाओं का आश्रय लेना चाहिए। धर्मदास ने भी तो सम्भवतः बाण के उत्कृष्ट गुणों से अभिभूत होकर ही उन की मुक्त कण्ठ से प्रशंसा की है :--

"हचिर-स्वर-वर्णपदा रसभाववती जगन्मनो हरति।
सा किं तरुणी ! नहि-नहि वाणी बाणस्य मधुरशीलस्य ॥"

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि बाण के काव्यों में उस की रचना चातुरी सर्वत्र परिलक्षित होती है। उस के दोनों अमर काव्य, बाण की शैली की उत्कृष्टता, विलक्षण-स्वर माधुर्य, अपूर्व कौशल रचना, अलंकारों के अनुपम प्रयोग, प्रकृति-चित्रण की सजीवता, मनोमुग्धकारी दृश्यों की छटा, वैभवविलास के चित्रण की यथार्थता, भाषा एवं भावों की उत्कृष्टता, शब्दों के सम्यक् संगुम्फन, सुगठित पांचाली रीति के प्रयोग, सजीव पात्र चरित्र-चित्रण, मनोभावों तथा मनोवृत्तियों के मार्मिक निरीक्षण, अप्रतिम कल्पना वैभव, सारगर्भित उक्तियों एवं असाधारण पाण्डित्य के परम द्योतक हैं।

: ४ :

शैलीकार बाण-एक तुलनात्मक अध्ययन

सुबन्धु, दण्डी एवं बाण को संस्कृत गद्य-काव्य जगत् का रत्नत्रयी माना जाता है। बाण भट्ट तो अपनी सन्तुलित एवं विशिष्ट शैली, उदात्त कविस्व, मौलिक कल्पना, गम्भीर भावाभिव्यञ्जना तथा विचित्र वर्णन प्रतिभा से सुविख्यात ही हैं, पर सुबन्धु तथा दण्डी भी आदर्शभूत पूर्ववर्ती कवियों में अपनी कला के कारण संस्कृत साहित्य में विशेष स्थान रखते हैं। सुबन्धु की 'वासवदत्ता' की तो बाणभट्ट स्वयं प्रशंसा करते हुए कहते हैं[1] कि जिस प्रकार इन्द्र द्वारा प्राप्त 'अमोघ शक्ति' को कर्ण के पास देखते ही द्रोणाचार्य आदि का गर्व जाता रहा, उसी प्रकार सुबन्धु की रचना 'वासवदत्ता' के कानों तक पहुँचते ही, निश्चय ही, कवियों का अभिमान भी चूर्ण हो गया।' इसी प्रकार दण्डी भी सम्भवतः अपने पदलालित्य के कारण **"कविर्दण्डी, कविर्दण्डी, कविर्दण्डी न संशयः"**—इस प्रशस्ति से सुशोभित हुए हैं।

इस प्रकार सुबन्धु, दण्डी तथा बाण—इन तीनों का संस्कृत काव्य क्षेत्र में अपना विशिष्ट स्थान है। इनमें से कौन सर्वश्रेष्ठ है, कौन नहीं यह कहना तो बहुत ही कठिन है पर इतना अवश्य कहा जा सकता है कि बाणभट्ट ने अपनी अनुपम शैली के कारण संस्कृत साहित्य में अपने लिए एक स्पृहणीय स्थान बना लिया है। दूसरी ओर सुबन्धु तथा दण्डी भी गद्य काव्य-शैली के एक बहुत बड़े आचार्य माने जाते हैं।

सुबन्धु का काव्य एक ऐसा दुर्गम महाकान्तार है जिसमें श्लेष तथा विरोधाभासादि अलंकारों, दीर्घकाय समासों एवं पौराणिक संकेतों के रूप में इतने विशाल, सघन वन-वृक्ष विद्यमान हैं कि उसमें प्रवेश पाने के लिए व्यक्ति को विशेष साधनों तथा प्रौढ़ प्रतिभा की आवश्यकता पड़ती है। वर्णन-विस्तार तथा शब्द-कौशल दिखाने में सुबन्धु ने कहीं कहीं तो औचित्य की सीमा को भी लांघ दिया है। वासवदत्ता के विलास-विभ्रम का चित्रण करते समय उन्होंने कई एक पंक्तियों का केवल एक ही वाक्य बना दिया। इसके अतिरिक्त काव्य के आदि में ही उन्होंने लम्बे लम्बे समासों तथा

---

[1] 'कवीनामगलद्दर्पो नूनं वासवदत्तया।
शक्त्येव पाण्डुपुत्राणां गतया कर्णगोचरम् ॥'' (हर्षचरित प्रथम उच्छ्वासः—११)

पौराणिक सन्दर्भों की भरमार भी लगा दी है। राजा चिन्तामणि के पौरुष, पराक्रम तथा ऐश्वर्य की तुलना करने में सुबन्धु ने कई एक ऐसे उपमानों तथा साहित्यिक उपकरणों का आश्रय लिया है, जिनके कारण उनका काव्य इतना क्लिष्ट बन गया है कि वह साधारण व्यक्ति की पहुँच से बहुत ही बाहिर है। उदाहरणार्थ देखिए[2]—'चिन्तामणि नाम के राजा ने, जिसके चरणों पर सब राजा लोग प्रणाम करते हैं—हिरण्यकशिपु नामक दैत्य के शरीर को विदीर्ण करके आश्चर्य में डालने वाले नृसिंह के समान, सुवर्ण-अन्न-वस्त्र और भूमि के द्वारा सबको आश्चर्यान्वित कर दिया है। वराहावतार लेकर पृथ्वी का कल्याण करने वाले नारायण के समान जिसने अनायास ही समस्त पृथ्वीमण्डल को अपने अधीन कर लिया है। यशोदा तथा नन्द की समृद्धि-ऐश्वर्य को बढ़ाने वाले कंस शत्रु-कृष्ण के समान जिसने कीर्ति, दान और आनन्द की सम्पत्ति सम्पादित की है। वह राजा पृतना से भयभीत होने वाले वसुदेव के समान काव्यों का आदर करता था। अनन्त शेषनाग की शिरःस्थित मणियों की किरणों से जिसके चरण रञ्जित हैं—ऐसे समुद्र में शयन करने वाले विष्णु के समान जिसके चरण अनेक राजाओं की चूड़ामणियों की प्रभा से अनुरञ्जित हैं। दिक्पर्यन्त रक्षण करने वाले वरुण के समान जो शान्तिपूर्वक रक्षा करता था।-दक्षिण दिशा को सुशोभित करने वाले अगस्त्य के समान जो चतुर-बुद्धिमान् पुरुषों की इच्छाओं को पूर्ण करता था। अनेकों नदियों के पति तथा पकर युक्त समुद्र के समान जो अनेक सेनाओं का अधिपति था। कार्तिकेय से अनुगत तथा कामदेव को जीतने वाले महादेव के समान बड़ी भारी सेना जिसके साथ चलती थी और जिसने अपने सौन्दर्य से कामदेव को जीत लिया था। देवताओं के निवास स्थान तथा विश्वकर्मा नाम देव-शिल्पी अथवा सूर्य के आवास-स्थल मेरु के समान जो विद्वानों और संसार के रक्षा रूप कार्य का आश्रय था।'

प्रस्तुत गद्यांश में कहीं तो राजा चिन्तामणि की तुलना अवतारों से की गई है, कहीं दिक्पालों से, कहीं देवताओं से तथा कहीं ऐतिहासिक अथवा पौराणिक नायकों से। बाण ने भी इसी प्रकार 'हर्षचरित' के अन्त में सूर्यास्त तथा चन्द्रोदय के वर्णन

---

[2] अभूदभूतपूर्वः सर्वोर्वीपतिचक्रवालचूडामणिश्रेणीशाणकोणकषणनिर्मलीकृतचरण-नखमणिर्नृसिंह इव वक्षितहरिण्यकशिपुक्षेत्रदानविस्मयः कृष्ण इव कृतवसुदेवतर्पणो नारायण इव सौकर्यसमासादितधरणिमण्डलः कंसारातिरिवजनितप्रशोदानन्दसमृद्धिरानक-दुन्दुभिरिव कृतकाव्यादरः सागरशायीवानन्तमौलिचूडामणिमरीचिरञ्जितपादपद्मो वरुण इवाशान्तरक्षणोऽस्य इव दक्षिणाशाप्रसाधको जलनिधिरिव वाहिनीशतनायकः समकर प्रचारश्च हर इव महासेनानुगतो निर्वर्तितमारश्च मेरुरिव विबुधालयो विश्वकर्माश्रयश्च रविरिव।" (वासवदत्ता-पृ० ७-१० ; वि० भ० सं० ग्र०—२)

में प्राय: ऐसी ही शैली का आश्रय लिया है और पौराणिक तथा ऐतिहासिक उपमानों को ढूंढ ढूंढ कर उनके माध्यम से अस्त हो रहे सूर्य की लालिमा से सादृश्य वर्णित किया है[3]—

'तब सूर्य ने नव रुधिर के समान अरुण, लोकालोक पर्वत तक फैली हुई, पाप का क्षय करने वाली अपनी किरणों के जाल को पुन: अपने शरीर में वैसे ही समेट लिया जैसे अन्य शिष्यों ने कुपित याज्ञवल्क्य के मुख से उगले हुए यजुर्वेद मन्त्रों को शाकल्य ने पुन: पान कर लिया था। क्रम से बढ़ती हुई, माँस की लाली के समान लाली वाला वह सूर्य ऐसा जान पड़ने लगा जैसे भीमसेन के हाथों द्वारा उखाड़ी गई ताजे शोणित से लाल अंगराग से रौद्र, अश्वत्थामा के ललाट पर सहज उत्पन्न हुई चूड़ामणि हो। अथवा वह ब्रह्मा के मस्तक रूपी उस खप्पर की भान्ति लग रहा था जिसे भीषण भिक्षा देने में तत्पर त्रिपुरारि द्वारा काटकर बहती हुई शिराओं के रक्त से भर दिया था। अथवा वह पितृवध से क्रुद्ध परशुराम द्वारा निर्मित दूर-व्यापी रुधिर का ह्रद हो, जो सहस्रार्जुन-कार्तवीर्य के विशाल और विकट कन्धों के काटने वाले कुठार की धार से काटे हुए दुष्ट क्षत्रियों के कण्ठ-कुहरों से निकलती हुई रुधिर प्रवाह की सहस्रों पनालियों से भरा गया था। अथवा सूर्य का वह गोला गरुड़ के नख-पञ्जर के आक्रमण से क्षत-विक्षत, भय के मारे हाथ-पांव तथा मस्तक सिकोड़े हुए विगत-प्राण विभावसु नामक कच्छप के आकार में लुढ़कते हुए दु:खी विनता के द्वारा आकाश में टुकड़े करके फैंके हुए उस अण्डाकार की तरह था जिसके भीतर गर्भ की दशा में अरुण का अपूर्ण मांसपिण्ड हो, अथवा वह मेरुपर्वत का धातु तट हो, जिसे प्रलय के अवसर में काली

"[3]प्रकीर्णानि नवरुधिररसारुणवर्णानि लोकालोककूटेषु यजूंषीव कुपितयाज्ञवल्क्यवक्त्रवान्तानि निजवपुषि पूषा पापमूंषि पुनरपि संजहार जालकानि रोचिषाम्। क्रमेण च समुपोह्यमानमांसलरागरोचिरगुरुणांशुरश्वत्थामबन्धसहजचूडामणिरिव वृकोदरकरपुटो.पाटित:, प्रत्यग्रशोणितशोभाङ्गरागरौद्रो द्रौणायनस्य रुद्रभिक्षादानशौण्डपुरमथनमुक्तमुण्डसिरानाडिरुधिरपूरणशोणितकपिश:, कपालकर्पर इव च पैतामह:, पितृवधरुदितरामरागरचित:, पृथुविकटकार्तवीर्यांसकूटकुट्टाककुठारतुण्डतष्टदुष्टक्षत्रियकण्ठकुहररुधिरकुल्याप्रणालसहस्रपूरितो ह्रद एव दूररोधी रौधिरो भयनिगूढकरचरणमुण्डमण्डलाकृतिर्गरुडनखपञ्जराक्षेपक्षपणक्षिप्तक्षतजोक्षितो व्यसुर्विभावसु:, कमठ इव च लोठ्यमान:, नभस्यरुणगर्भमांसपिण्ड इव च खण्ड्यमानमानीत:, नियतकालातिपातरूयमाणविनतायणीक्षिप्त:, धातुतट इव च सुमेरोरसुरवधाभिचारचरुपचनपिशुन:, शोणितक्वाथकषायितकुक्षिररतिविसंकट:, कटाह इव च बार्हस्पत्य: सद्योगलितगजदानवदेहलोहितोपलेपभीषण:, मुखमण्डलाभोग इव महाभैरवस्य मुहूर्तमदृश्यत।"

(हर्षचरित अष्टम उच्छ्‌वास: पृ० ४५१-५२; वि० सं० प्र०-३६)

ने तोड़ फेंका था। अथवा वह बृहस्पति के उस अतिभीषण कटाह की तरह था, जिसमें असुरों के नाश के लिए, अभिचार कर्म करते हुए वे शोणित के क्वाथ (काढ़े) में चरु पका रहे थे। अथवा लाल सूर्य की वह झाँकी महाभैरव के उस विशाल मुखमण्डल की तरह थी जो तत्क्षण मारे हुए गजासुर के टपकते हुए लोहू के लेप से भीषण दीखता है।'

उपर्युक्त उद्धरणों से स्पष्ट है कि यद्यपि सुबन्धु ने उपमानों का अधिक व्यापक रूप से प्रयोग किया है तथापि इतना स्पष्ट है कि बाण का उपमान प्रयोग सुबन्धु के प्रयोग की भान्ति जटिल नहीं, क्योंकि सुबन्धु ने जहाँ श्लेष तथा विरोधाभास का आश्रय लिया है वहाँ बाण ने केवल कवित्वमय उत्प्रेक्षा का आश्रय लिया है जो अपेक्षाकृत अधिक सहज सम्प्रेषणीय है तथा कल्पना के अजस्र प्रवाह से सन्निविष्ट होने के कारण उसके महाकवि होने का परिचायक भी है।

सुबन्धु की तरह बाण को भी विरोधाभास तथा श्लेषालंकार विशेष प्रिय हैं। पर सुबन्धु का जहाँ इनके प्रति विशेष आग्रह दिखाई देता है, वहाँ बाण ने इनके प्रयोग में औचित्य की सीमा का कहीं भी उल्लंघन नहीं किया। इसके अतिरिक्त सुबन्धु तो इन अलंकारों के प्रयोग में कथावस्तु, रसपरिपाक तथा पात्र-चित्रण आदि सबको भूल सा जाते हैं पर बाण ने अपने विविध वर्णनों को सजीव तथा प्रभावपूर्ण बनाने के लिए ही नानाविध अलंकारों का प्रयोग किया है। सुबन्धु के दो एक विरोधाभास के उदाहरण देखिए[4]—'दुर्जनों की वास्तविकता का पता कौन लगा सकता है। जैसे कि भीमसेन होते हुए भी बकराक्षस का द्वेषी नहीं होता (वस्तुतः) भयंकर तथा सज्जनों से द्वेष करने वाला होता है। अग्नि होते हुए भी वायु है (वस्तुतः) अपने आश्रयदाता का नाश करने वाला तथा मातृ-तुल्य अपने पालकों के प्रति भी (श्वान अनुरूप) अनुचित आचरण करता है। अत्यन्त कड़ुआ होते हुए भी मधुर होता है (वस्तुतः) अनेक अनुचित कार्य करने वाला एवं बड़ा अरसिक होता है। जिस प्रकार दोनों हाथों से मला हुआ और सिर पर लगाया हुआ भी सरसों का तेल अपना कड़ुआपन नहीं छोड़ता इसी प्रकार दुष्ट व्यक्ति भी हाथ जोड़कर प्रणाम तथा चरणों में सिर रखने पर भी अपनी क्रूरता नहीं छोड़ता।'

एक अन्य उदाहरण देखिए[5]—'जो विद्याधर-देवयोनिविशेष होते हुए भी

---

[4]"भीमो नबकद्वेषी, आश्रयाशोऽपि मातरिश्वा, अतिकटुरपि महारसः, सर्षपस्नेह इव करयुगलालितोऽपि शिरसा धृतोऽपि न कटुत्वं जहाति।"

(वासवदत्ता—पृ० ५३-५४ ; वि० भ० सं० प्र०—२)

[5]"विद्याधरोऽपि सुमना, धृतराष्ट्रोऽपि गुणप्रियः, क्षमानुगतोऽपि सुधर्माश्रितो, बृहन्नलानुभावोऽप्यन्तः सरलो, महिमहितो संभवोऽपिपृथोत्पादी, अतरलोऽपि महानायको राजा चिन्तामणिर्नाम।"   (वासवदत्ता—पृ० १०-११ ; वि० भ० सं० प्र०—२)

देव थे (वस्तुतः) जो चारों विद्याओं के धारण करने वाले और उदार हृदय थे। धृतराष्ट्र—दुर्योधन पिता—होते हुए भी भीमसेन से प्रेम करते थे। (वस्तुतः) जो चिन्तामणि राज्य का सुप्रबन्ध करने वाले और गुणों पर प्रेम करते थे। जो पृथ्वी पर रहते हुए भी देवसभा में निवास करते थे। (वस्तुतः) वो क्षमाशील थे और उत्तम धर्म का पालन करते थे। जो बड़े नल (तृण विशेष अथवा पद्म विशेष) से उत्पन्न होते हुए भी बीच में सरल नामक वृक्ष थे। (वस्तुतः) जो बृहन्नला के समान प्रभावशाली तथा अन्तःकरण के उदार थे। भैंसे से उत्पन्न भी बैल को उत्पन्न करने वाले थे। (वस्तुतः) रानी के गर्भ से उत्पन्न और धर्म का उत्पादन करने वाले थे। तरल-मध्यमणि न होते हुए भी महानायक—मध्यमणि थे (वस्तुतः) जो धीर गम्भीर और उत्तम नेता थे।'

जाबालि आश्रम का वर्णन करते समय देखिए बाण ने भी क्या ही सुन्दर विरोधाभास का आश्रय लिया है[6]—'वहाँ आश्रम में सुरभिविलेपन (वि० चँदन आदि सुगन्ध, प० गोबर का लेप) वाली धरा होने पर भी जहां निरन्तर होम के धुएं की गन्ध निकला करती थी। मातङ्गकुल (वि० चांडालों, प० मतवाले हाथियों) से युक्त होते हुए भी वह आश्रम पवित्र था। सैंकड़ों चमकते हुए धूमकेतुओं (वि० पुच्छल तारों, प० हवन की लपटों) के प्रकट होने पर भी जहां कोई उपद्रव नहीं था। और वहां परिपूर्ण द्विजातिमण्डल (वि० चन्द्रमण्डल, प० श्रेष्ठ ब्राह्मणों का समूह) होने पर भी पास के गहन वृक्षों की कुरमुटों में सदा अन्धकार छाया रहता था। ऐसा वह आश्रम अत्यन्त रमणीय था और मानों दूसरा ब्रह्मलोक था।'

इसी प्रकार चंचला लक्ष्मी के स्वभाव एवं स्वरूप वर्णन करने में भी बाण का विरोधाभास विशेष सफल हुआ है[7]—'वह इस प्रकार से सर्वदा उष्मा (व० गर्मी, प०—दर्प) उत्पन्न करती हुई भी जड़ता (वि० शीतलता, प०—सदसद्विवेचनाशून्यता) उत्पन्न करती है। उन्नति (वि० ऊंचाई, प०—उत्कर्ष) को प्रस्तुत करती हुई भी नीच

---

6. 'सुरभिविलेपनधरमपि सततविभूतिहव्यधूमगन्धम् मातङ्गकुलाध्यासितमपि पवित्रम्, उल्लसितधूमकेतुशतमपि प्रशान्तोपद्रवम्, परिपूर्णद्विजपतिमण्डलसनाथमपि सदासन्निहिततरुगहनान्धकारम् अतिरमणीयमपरमिव ब्रह्मलोकमाश्रममपश्यम्।''

(कादम्बरी पूर्वभाग—पृ० १२४-२५; का० सं० ग्र०-१५१)

7. ''तथाहि, सततम् उष्मागमुपजनयन्त्यपि जाड्यमुपजनयति। उन्नतिमादधानापि नीचस्वभावतामाविष्करोति। तोयराशिसंभवापि तृष्णां संवर्धयति। ईश्वरतां दधानापि अशिवप्रकृतित्वमातनोति। बलोपचयमाहरन्त्यपि लघिमानमापादयति। अमृतसहोदरापि कटुकविपाका। विग्रहवत्यपि अप्रत्यक्षदर्शना। पुरुषोत्तमरताप्यि खलजनप्रिया। रेणुमयीव स्वच्छमपि कलुषीकरोति।''

(कादम्बरी—पृ० ३२४-२५; का० सं० ग्र०-१५१)

स्वभावता (वि० नीचा होना, प०- कुत्सित स्वभाव होना) को प्रकट करती है। जलराशि (सागर) से उत्पन्न हुई भी तृष्णा (वि० पिपासा, प०—लोलपता) को बढ़ाती है। शिव (वि० भगवान शिव होना, प०—धनी होना) होकर भी अशिव (वि० भगवान शिव न होना, प०—अमङ्गल स्वभाव) का विस्तार करती है। बल-समूह (व० शारीरिक शक्ति, प०—सैन्य वृद्धि) को लाती हुई भी लघुता (वि० कमजोरी, प०—स्वभाव कृपणता) को प्राप्त कराती है। अमृत की सहोदरा होते हुए भी कड़वे फल वाली (अर्थात् परिणाम में दुःखदायिनी) होती है। विग्रह (वि० मूर्तिमती, प०—कलह) से युक्त होती हुई भी प्रत्यक्ष न दिखाई देने वाली है। पुरुषोत्तम में (वि० श्रेष्ठ पुरुषों में, वि० विष्णु में) आसक्त होने पर भी खल पुरुषों से प्रीति करने वाली है। धूलिमयी होकर भी मानो निर्मल (व्यक्ति) को भी (अहङ्कारादि दोष से) कलुषित कर देती है।'

इस प्रकार उपरोक्त उद्धरणों से यह स्पष्ट हो जाता है कि दोनों कवि विरोधाभास के प्रयोग में पूर्ण सिद्धहस्त हैं पर यदि तुलना की दृष्टि से देखा जाए तो शब्द-शय्या और प्रसंगानुकूलता में, तथा यथार्थ अवस्था चित्रण करने में जितना बाण का विरोधाभास तथा श्लेषालंकार-प्रयोग समर्थ हुआ है उतना सुबन्धु का नहीं, तथा साथ ही सुबन्धु के प्रयोग की भान्ति कथा को व्यवहित तथा कुण्ठित नहीं करता। फलतः विरोधाभास का, लम्बे लम्बे समास तथा श्लेषादि के प्रयोग से दुरूह बनी सुबन्धु की शैली अपने में सर्वथा विचित्र है। इस दुरूह शैली के कारण ही सम्भवतः कहीं कहीं इनके काव्य में सरसता का अभाव तथा कथावस्तु के प्रवाह में बाधा सी खटकने लगती है।

विरोधाभास तथा श्लेष अलंकारों के अतिरिक्त परिसंख्या अलंकार का प्रयोग भी दोनों कवियों ने बड़ी सफलता से किया है। पर इस अलंकार के प्रयोग में जितने बाण सिद्धहस्त माने जाते हैं उतने सुबन्धु नहीं। और अगर यह कहा जाए कि इस क्षेत्र में बाण के समकक्ष शायद ही कोई कवि हो तो इसमें कोई अत्युक्ति न होगी। इस दिशा में एक बात और विशेष उल्लेखनीय है कि बाण ने परिसंख्या का प्रयोग केवल क्रीड़ा के लिए नहीं किया अपितु अपने वर्णनों में माधुर्य गुण भरने तथा उन्हें अधिक चमत्कारक बनाने के लिए ही किया है। क्रम से दोनों कवियों—सुबन्धु तथा बाण के परिसंख्या अलंकार की छटा देखिए[8]।

---

8. "शृङ्गारहानिः जरत्करिषु न जनेषु, दुर्वर्णयोगः कटकादिषु न कामिनीकान्तिषु, गान्धारविच्छेदो रागेषु न पौरवनितासु, मूर्च्छाधिगमो गानेषु न प्रजासु, धर्माभावो नीवसेवकेषु न परिजनेषु, मलिनाम्बरत्वं निशासु न जनेषु, चलरागता गीतेषु

'वृद्ध हाथियों में ही शृंगार—गजभूषण—का अभाव देखा जाता था, परन्तु मनुष्यों में शृंगाररस की कमी न पाई जाती थी। कटक आदि भूषणों में ही दुर्वर्णरजत का मेल रहता था परन्तु कामिनियों की कान्ति कभी फीकी न पड़ती थी। रागों में ही गन्धार स्वर का विच्छेद पाया जाता था, नागरिक ललनाओं में सिन्दूर का विच्छेद न होता था। गाने में मूर्च्छा—स्वरावरोहक्रम—प्राप्ति होती थी, प्रजा में मूर्च्छा—संज्ञानाश प्राप्ति—नहीं होती थी। नीच सेवकों में ही परम्परागत अशुद्धि पाई जाती थी, परिजनों में पौरुष का अभाव न था। स्त्रियों में ही अकाश से अस्वच्छता दिखाई पड़ती थी, मनुष्यों में किसी के वस्त्र मलिन दिखाई न पड़ते थे। गानों में ही रागों की चञ्चलता विदित होती थी परन्तु विदग्ध पुरुषों के राग-प्रेम में चञ्चलता—अस्थिरता—न थी। काम-केलियों में ही वीर्यस्खलन होता था, पुरवासियों में धर्म का परित्याग न देखा जाता था। राजविकारों में ही भङ्गुरता—उतार-चढ़ाव—पाई जाती थी, किसी के मन में कुटिलता न रहती थी। कामदेव में ही देह-शून्यता पाई जाती थी, किन्तु परिजनों में अनङ्गता—असंबद्धता—न थी।'

दूसरी ओर राजा शूद्रक के गुण वर्णन करते समय बाण ने भी क्या ही अनूठे परिसंख्या अलंकार का आश्रम लिया है[१]—'सम्पूर्ण जगत् की विजय कर उसका पालन करने वाले शूद्रक के शासन काल में वर्ण-सङ्कर (रंग-मिश्रण) केवल चित्र रचनाओं में था, ब्राह्मण-क्षत्रियादि में वर्ण-संकरता की परिपाटी नहीं थी। केशग्रहण की क्रिया केवल काम-क्रीड़ा में होती थी, लड़ाई-झगड़ों में एक दूसरे के बाल नहीं पकड़े जाते थे। दृढ़ बन्ध (विशिष्ट रचना शैलियों) का प्रयोग केवल काव्यों में होता था, कारागार आदि में कठोर बन्धन नहीं थे। चिन्ता (चिन्तन) केवल शास्त्रों में होता था, जीवननिर्वाह की चिन्ता लोगों के हृदय में नहीं थी। वियोग की दशा केवल

न विदग्धेषु, वृथाहानिः निधुवनलीलासु न पौरेषु, भङ्गुरत्वं रागविकृतिषु न चित्तेषु, अनङ्गता कामदेवे न परिजने।''

(वासवदत्ता—पृ० १०५-१०६ ; वि० सं० ग्रं०—२)

१. ''यस्मिंश्च राजनि जितजगति पालयति महीं चित्रकर्मसु वर्णसंकराः, रतेष केशग्रहाः, काव्येषु दृढ़बन्धाः, शास्त्रेषु चिन्ताः, स्वप्नेषु विप्रलम्भाः, छत्रेषु कनकदण्डाः ध्वजेषु प्रकम्पाः, गीतेषु रागविलसितानि, करिषु मदविकाराः, चापेषु गुणच्छेदाः गवाक्षेषु जालमार्गाः, शशिकृपाणकवचेषु कलङ्काः, रतिकलहेषु वृतप्रेषणानि, सार्यक्षेः शून्यगृहा न प्रजानामासन्। यस्य च परलोकाद्भयम्, अन्तः पुरिका कुन्तलेषु भंगः नूपुरेषु मुखरता, विवाहेषु करग्रहणम्, अनवरत मुक्ताग्निधूमेनाश्रुपातः, तुरंगे कशाभिघातः, मकरध्वजे चापध्वनिरभूत्।''

(कादम्बरी पूर्वभाग—पृ० १५, १७, क० सं० ग्र०—१५१

स्वप्न में होती थी, वास्तविक जीवन में वियोग नहीं था । स्वर्ण-दण्ड (सोने के डण्डे) केवल राजछत्रों में पाए जाते थे, सोने के अर्थदण्ड की व्यवस्था नहीं पाई जाती थी। वायु से उत्पन्न कम्पन केवल पताकाओं में था, भय से काँपने की स्थिति किसी में नहीं थी। राग-रागिनियों का विलास केवल गीतों में था, प्रजा में मद-मोह-क्रोधादि राग अर्थात् मनोविकार नहीं थे। मद का विकार केवल हाथियों में था, प्रजाजनों में अहंकार रूपी मनोविकार नहीं था। गुणों (डोरियों) का टूटना केवल धनुषों में दिखाई पड़ता था, प्रजा में गुणों का नाश नहीं होता था । जलमार्ग (जालियों के मार्ग) केवल झरोखों में थे, प्रजा में जालमार्ग अर्थात् कपट आदि नहीं था। कलंक की कालिमा काले काले धब्बों के रूप में केवल चन्द्रमा-तलवार तथा कवचों में लगी हुई थी, कुलों में कलंक नहीं था। दूत-प्रेषण केवल प्रेम-कलह में होता था, युद्ध के लिए दूत नहीं भेजा जाता था। खाली गृह (खाने) केवल चौपड़ आदि खेल में होता था, घर का सूना होना—पुत्र न होने या गृहत्याग के कारण प्रजाओं में नहीं था। लोगों को यदि भय था तो परलोक (दूसरे जन्म के लोक) से, परलोक अर्थात् शत्रु लोगों से नहीं था । भङ्ग (कुटिलता या घुंघरालापन) तो अन्तःपुर की स्त्रियों की लटों में था, अन्यथा कुटिलता य युद्धा में भंग अर्थात् पराजय नहीं थी । नूपुरों में ही मुखरता (झंकार) थी, प्रजा में वाचालता नहीं थी। करग्रहण (पाणि-ग्रहण) केवल विवाहों में था, प्रजा से कर अर्थात् टैक्स नहीं लिया जाता था। निरन्तर उठने वश के धूओं से ही आँसूओं का गिरना होता था, शोक आदि के कारण नहीं। कोड़ों (चाबुक) की चोट थी तो केवल घोड़ों पर, अपराधियों पर नहीं। और धनुष्टङ्कार भी केवल कामदेव के धनुष में ही होती थी, अन्यथा धनुष्टंकार की आवश्यकता नहीं थी क्योंकि वहाँ युद्ध का अभाव था।' इन दोनों उदाहरणों के परिशीलन से यह कहा जा सकता है कि सुबन्धु की वर्णन प्रतिभा तथा कल्पना-शक्ति बाण सरीखी नहीं है। सुबन्धु की अपनी शैली के विषय में यह गर्वपूर्ण प्रतिज्ञा है :

"प्रत्यक्षरश्लेषमयप्रबन्धविन्यासवैदग्ध्यनिधिर्निबन्धम् ।
सरस्वतीदत्तवरप्रसादश्चक्रे सुबन्धुः सुजनैकबन्धुः ॥"

इस प्रकार सुबन्धु की गद्य शैली में उसकी प्रतिज्ञानुसार 'प्रत्यक्षरश्लेष विन्यास' के दर्शन होते हैं। सुबन्धु ने अपनी कृति में सर्वत्र प्रौढ़ पाण्डित्य का प्रचुर प्रदर्शन किया है। श्लेष निर्माण में तो वे सिद्धहस्त माने ही जाते हैं और इसी के चक्र में पड़कर उन्होंने कहीं कहीं तो कथा की सरसता तथा घटना की रूप रेखा को भी भुला दिया है। इसके अतिरिक्त चित्रकाव्य-रचना में भी सुबन्धु में विशेष रुचि पाई जाती है पर बाण ऐसे चक्कर में बहुत ही कम पड़े हैं।

पर एक बात अवश्य है कि बाण के गद्य को भी दुर्गम महाकान्तार माना जाता

है, और इस प्रकार उनका गद्य—समासों की बहुलता, अलंकारों की विविधता तथा विशदता, वर्णनों की प्राचुर्यता, कल्पना एवं पाण्डित्य की प्रगाढ़ता, तथा पौराणिक संकेतों की प्रधानता के आ जाने पर चाहे कुछ क्लिष्ट सा अवश्य प्रतीत होता है, पर सरसता, भावोत्कृष्टता तथा सजीव वर्णन शैली के कारण अपने में एक बेजोड़ साहित्य है, और इसका मुख्य कारण है—बाण की अद्भुत वर्णन शक्ति तथा प्रसाद गुण। इसके विपरीत सुबन्धु में श्लेषादि अलंकारों की छटा चाहे सर्वत्र दर्शनीय है पर उनका उद्देश्य वर्णन भाग की ओर ही विशेष रूप से रहा अतः सुबन्धु की शैली कोई विशेष रोचक नहीं बन पाई। गौड़ी रीतिप्रधान अपनी गद्य शैली से ओतप्रोत अपने लम्बे लम्बे वर्णनों में उन्होंने श्लेष, अतिशयोक्ति, अनुप्रास तथा दीर्घ काय समासों की भरमार सी लगा दी है। और सम्भवतः इसीलिए इनके काव्य में काव्य-सौन्दर्य तथा रसास्वादन का प्राप्त करना बड़ा ही दुर्लभ हो गया है। दूसरी ओर बाण की शैली का आदर्श पाञ्चाली रीति है। इसी कारण से सुबन्धु की शैली में जहां आडम्बर, कृत्रिमता तथा गति-शैथिल्य अधिक दिखाई देता है वहां इसके विपरीत बाण की शैली में सौष्ठव, प्रसाद तथा माधुर्य की मात्रा ही अधिक दृष्टिगोचर होती है।

इस पर भी इतना तो अवश्य कहा जा सकता है कि सुबन्धु ने जहां श्लेष, विरोधाभासादि का आश्रय लिए बिना काव्य का प्रणयन किया है वहां इनकी शैली बड़ी ही सरस, उदात्त तथा हृदय-स्पर्शी है। सुबन्धु की अनुप्रास प्रायः, भाव-प्रधान-कोमल शब्दरचना का एक उदाहरण देखिए[10]—'कन्दर्पकेतु प्रमदाजनों की प्रेम-पूर्ण मनोहर वार्तालाप सुनते हुए मकरन्द के साथ वासवदत्ता भवन में प्रविष्ट होता है उस समय वहां की रमणियाँ परस्पर इस प्रकार वार्तालाप कर रही थी—'अयि भद्र! तुम बिना कहे ही परिहास के लिए दौड़ रही हो। यह चपला क्यों दौड़ रही है? (अथवा) यह विद्युत के समान क्यों इधर-उधर फिर रही है? अरी! तुम्हारे कान से यह फूलों का गुच्छा गिर पड़ा है। अयि! तुम्हारे कपोल बड़े ही सुन्दर हैं, तुम्हारी चाल भी मनोहर है। इसलिए देवता भी तुम पर मुग्ध हैं, तुम साक्षात् शोभा ही हो, (अथवा) तुम साक्षात् लक्ष्मी ही हो क्योंकि तुम मद्यपायिनी हो और वह भी मद्य के साथ

---

10. "भद्रे द्रवसि द्रवसिद्धेरगदिता! चपला च पलायते किमेषा। स्तबकस्तव कर्णतः पतितोऽयम्। सुरेखे सुकपोलरेखे सुरया सुरयाचिताश्रीस्त्वमसि। मत्ते कलहे! कलहेमकाञ्चीदाम क्वणितैः स्मरमिवाह्वयसि। मलये मलयेप्सितं कुरु दृशैवाधिगतासि। कलिके! कलिकेतुमिनां मुखरां मुञ्च मेखलाम्; शृणुमः कलवल्लकीविरुतम् मेखला मेखला न भवति, त्वमेव मुखरतया खरतया च।"

(वासवदत्ता—पृ० १६७-२०० वि० सं० ग्रं०-२)

उत्पन्न हुई है। तुम्हें सुर चाहते हैं और उसे सुर-भगवान नारायण अङ्कशायिनी बनाते हैं। अरी मदमत्त कलहे! तुम अपने मधुर स्वर्णमय काञ्ची ध्वनि से मानों काम को ही बुला रही हो। हे मलये! मलयपर्वत की अभिलषित वस्तु-चन्दन तुमने अपनी दृष्टि से ही पा लिया है। तुम्हारी दृष्टि ही चन्दन के समान ताप-नाशक है। हे कलिके! (अपने शब्द द्वारा) रति-कलह की सूचना देने वाली इस मेखला-काञ्ची को दूर कर उतार दे। मैं मधुर-वीणा शब्द सुनूंगी—मैं तुम्हारा रति-कूजित सुनने को अत्यन्त उत्कण्ठित हो रही हूं। परन्तु तुम्हारी यह मेखला सुनने नहीं देती अतः इसे उतार दे। सखी उत्तर देती है—मेरी मेखला दुष्ट नहीं है तू ही अपनी वाचालता और क्रूरता से दुष्टता कर रही है।'

पर खेद की बात है कि इस प्रकार की कोमलकान्त पदावली के दर्शन सुबन्धु के काव्य में बिरले ही होते हैं। अतः हम यह कह सकते हैं कि सुबन्धु में न तो दण्डी की सी सरलता, सरसता, हास्य, ओज एवं वैचित्र्य है और न ही बाण की सी उत्कृष्टता, मनो- मोहकता, उदात्त कल्पना शक्ति, विचित्र वर्णन प्रतिभा तथा सहज स्वाभाविक तीव्र पर्यवेक्षण शक्ति ही है।

सुबन्धु तथा बाण—दोनों ही यद्यपि गद्य काव्य के उत्कृष्ट कवि माने जाते हैं पर इन दोनों की शैली में अन्तर बहुत ही पाया जाता है। आचार्य बलदेव उपाध्याय इन दोनों की गद्य-शैली के मुख्य मुख्य अन्तर बतलाते हुए एक स्थान पर स्पष्ट कहते हैं—

'सुबन्धु तथा बाणभट्ट की शैली में महान अन्तर है। सुबन्धु का गद्य यदि अक्षर-डम्बर का साक्षात् रूप है, तो बाण का गद्य स्निग्ध, रसपेशल 'पाञ्चाली' का भव्य प्रतीक है। सुबन्धु ने आँख मूंदकर सन्दर्भ का बिना विचार रखे श्लेष का ही व्यूह खड़ा किया है, परन्तु बाणभट्ट की दृष्टि वर्ण्य विषय तथा अवसर के ऊपर गड़ी हुई है। वह जो लिखते हैं वह अवसर तथा सन्दर्भ से युद्ध नहीं करता। स्निग्ध, रसपेशल, तथा हृदयावर्जक गद्य का जीवित प्रतीक बाण इसीलिए सहृदयों के हृदय को स्पन्दित करता है जब कि सुबन्धु का गद्य केवल मस्तिष्क से ही टक्कर खाता हुआ कथमपि प्रवेश पाता है।[11]

जहाँ तक दण्डी तथा बाण की शैली का सम्बन्ध है, उस विषय में बाण तो अपनी ओजस्वी शैली द्वारा अपने काव्य को सुन्दर एवं आकर्षक बनाने के लिए प्रायः समस्त साहित्यिक उपकरणों को प्रयोग में लाया है। अलंकारों की प्रचुरता, वर्णन बाहुल्य, दीर्घ समासों, क्लिष्ट तथा क्लिष्ट पदावली तथा पौराणिक सन्दर्भों से बाण के काव्य भरे पड़े हैं। पर दण्डी ने प्रायः इन सबका त्याग ही किया है। इस प्रकार दण्डी की

[11]. 'संस्कृत साहित्य का इतिहास'—पृ० ३४२-४३)

शैली बाण की शैली की भान्ति ओजस्वी चाहे नहीं पर अश्लिष्ट, अक्लिष्ट पदावली युक्त होने के कारण सरल, स्निग्ध, मनोहर तथा स्पृहणीय अवश्य है। कष्ट-साध्य कल्पनाओं के अभाव, स्वभाव सुन्दर रूपक तथा उपमाओं, प्रभावोत्पादक पद-लालित्य तथा वर्णनाशक्ति के अपूर्व सौष्ठव के कारण 'दशकुमारचरित' संस्कृत साहित्य का एक जनप्रिय गद्य-काव्य है, और इसकी जनप्रियता का मुख्य कारण है इसकी सरल शैली जो हितोपदेश तथा पंचतंत्रादि कथा कृतियों की शैली की तरह अत्यन्त सुगम तथा परिस्फुट है। पंचतन्त्र की भाषाशैली से मिलता जुलता उनकी शैली का एक उदाहरण देखिए[12] :—

'फिर एक दिन वामदेव के आश्रम में रहने वाला उसका शिष्य देवताओं के यश को पाने वाले, कामदेव के स्वरूप को धिक्कारने वाले फूल के समान कोमल एक कुमार को पहुँचा कर राजा से बोला—'महाराज तीर्थयात्रा के बीच कावेरी नदी के किनारे आया हुआ मैं लहराते हुए बालों वाले बालक को अपनी गोद में रखकर रोती हुई एक बूढ़ा स्त्री को देखकर बोला—बुढे। तुम कौन हो, यह लड़का किसके नेत्रों को सुख देने वाला है। जंगल में किस लिए आई हो। तेरे शोक का क्या कारण है?'

इसके अतिरिक्त दण्डी द्वारा प्रयुक्त अनुप्रास तथा यमक की मनोहर छटा भी सर्वदा प्रेक्षणीय है और सम्भवतः इन्हीं ललित तथा सुन्दर अलंकारों के प्रयोग के कारण ही दण्डी का पदलालित्य अनुपम बन पाया है। एक उदाहरण देखिए[13]—'कामदेव के समान सुन्दर, राम आदि के (पराक्रम के समान) पराक्रम वाले, क्रोध से शत्रुओं को भस्म करने वाले, वेग में वायु की हँसी उड़ाने वाले कुमारों ने युद्ध के लिए प्रस्थान करके राजा को उन्नति की आशा से भर दिया।'

इससे बढ़कर दण्डी की भाषा में संगीत भी है और पदावली की मधुरिमा भी "मणिमयमण्डनमण्डलमण्डिता सकललोकललना कुललक्षामभूता।" अर्थात्—'फिर

---

12. ततः परस्मिन् दिवसे वामदेवान्तेवासी तदाश्रमवासी समाराधितदेवकीर्तिर्निर्भर्त्सितमारमूर्तिः कुसुमसुकुमारं कुमारमेकमवगम्य नरपतिमवादीत्—। 'देव, तीर्थयात्राप्रसङ्गेन कावेरीतीरमागतोऽहं विलोलालकं बालकं निजोत्सङ्गतले निधाय रुदतीं स्थविरामेकां विलोक्याबोचम्—'स्थविरे, का त्वम्, अयमर्भकः कस्य नयनानन्दकः, कान्तारं किमर्थमागता, शोककारणं किम् इति"।

(दशकुमारचरित—प्रथम उच्छ्वासः)

13. कुमारा मारामिरामा रामाद्यपौरुषा रुषा भस्मीकृता रयो रयोपहसितसमीरणा रणायियानेन यानेनाभ्युदयाशंसं राजानमकार्षुः।"

(दशकुमारचरित-द्वितीय उच्छ्वासः)

मणियों के बने हुए आभूषणों के समूह से सजी हुई, सारे लोकों के स्त्री कुलों की आभूषण, कोई कन्या अनेक विनम्र सखियों से अनुसरण की जाती हुई—।'

कुछ लोग कहने को चाहे यह कह दें कि दण्डी के वर्णन सजीव तथा रमणीय तो अवश्य है, पर उनमें सुबन्धु तथा बाण की भान्ति वर्णन बाहुल्य नहीं और दूसरे उनकी शैली में सुबन्धु के गद्य के 'प्रत्यक्षरश्लेषमय' तथा बाण की सरसस्वर वर्णपदा शैली के दर्शन भी नहीं होते, पर फिर भी दण्डी की शैली अपना एक वैशिष्ट्य लिए हुए है। सुबन्धु तथा बाण अपनी वर्णना-शैली को सौन्दर्यमय तथा चित्ताकर्षक बनाने के लिए जहाँ प्राय: समस्त साहित्यिक उपकरणों का प्रचुरता में प्रयोग करते हैं, वहाँ दण्डी थोड़े नपे तुले शब्दों में ही अपने लक्ष्य को प्राप्त कर लेते हैं। उन्हें सुबन्धु तथा बाण की भान्ति अलंकारों की भरमार तथा वर्णन बाहुल्य के चक्र में फंसकर अपने कथानक के प्रवाह में बाधक होना कदापि रुचिकर नहीं। और फिर यह बात भी सच नहीं है कि दण्डी चित्रकाव्य का निर्माण करना नहीं जानता था। वास्तव में देखा जाए तो वह इस कला में भी नितान्त प्रवीण थे। 'दशकुमारचरित' के सातवें उच्छ्वास में उन्होंने ओष्ठ्य वर्णों का कहीं भी प्रयोग नहीं किया। इस विषय में वे स्वयं कहते हैं— **''ललितवल्लभारभसदत्तदन्तक्षतव्यसनविह्वलाधरमणिर्निरोष्ठ्यवर्णमात्मचरितमाचचक्षे।''** पर दण्डी, सुबन्धु एवं बाण के चित्रकला निर्माण में केवल इतना ही अन्तर देखने में आता है कि दण्डी के चित्रकाव्य में कहीं भी दुरुहता नहीं आई और बाण तथा सुबन्धु के चित्रकाव्य तथा क्लिष्ट श्लिष्ट पदावली से भरे पड़े हैं। सम्भवत: इन्हीं गुणों के कारण कुछ भारतीय विद्वान् दण्डी को सर्वश्रेष्ठ कवि मानते हुए उनकी मुक्त-कण्ठ से प्रशंसा करते हैं—**''दण्डिन: पदलालित्यम्।'' ''कविर्दण्डी, कविर्दण्डी, कविर्दण्डी न संशय:।''**

तथा— **''जाते जगति वाल्मीकौ कविरित्यभिधाभवत्।**
कवी इति ततो व्यासे कवयस्त्वयि दण्डिनि।''

पर वास्तव में देखा जाए तो ये प्रशस्तियाँ तथा उक्तियाँ दण्डी के किसी प्रशंसक की ही हैं। दण्डी बाण की टक्कर के शैलीकार अथवा गद्यकार कभी नहीं माने जा सकते। दण्डी का 'पदलालित्य' चाहे प्रशंसनीय है पर उसमें बाण की शैली जैसी रस-मयता, भावपूर्णता, समास बहुलता तथा ओजस्विता कहीं भी दिखाई नहीं देती। इसके अतिरिक्त बाण की अपूर्व सौष्ठव वर्णना शक्ति, उदात्त कल्पनाओं, प्रभावोत्पादक अलंकारों की छटा, मनोमुग्धकारी पद-योजना, श्लिष्ट-क्लिष्ट शब्द-विन्यास, सारगर्भित उक्तियों, असाधारण पाण्डित्य तथा सरसस्वरवर्णपदा शैली के आगे भला दण्डी की केवलमात्र सरल, सरस तथा सुगम शैली कब टिक सकती है।

'हर्षचरित' के प्रारम्भ में ही बाण ने अपनी गद्य-शैली का आदर्श बतलाते हुए

लिखा है[14] कि—'अर्थकल्पना में मौलिकता, सुरुचिपूर्ण स्वाभाविकता, अश्लिष्ट-सुगम-सरल श्लेष, स्फुट अथवा स्पष्ट रस, तथा विकटाक्षरपदावली आदि इन समस्त गुणों का एक स्थान पर उपलब्ध होना कठिन है, पर ये समस्त गुण यदि कहीं एकत्र उपलब्ध हैं तो केवल बाणभट्ट की कृतियों में ही।'

बाण दूसरे के मनोभावों के यथार्थ चित्रण तथा नवीन अर्थ-कल्पना का आदर्शमय तथा उत्कृष्ट गद्य-शैली का प्रधान लक्षण मानते हैं। तभी तो बाण स्वयं विषयानुकूल भाषा के, अर्थानुरूप शब्दों के तथा भावानुकूल शैली के प्रयोग में अद्वितीय हैं।

सुबन्धु का गद्य जहाँ समासयुक्त, श्लेषमय तथा दण्डी का सुललित पदान्वित-ओजगुणमय है, वहाँ बाण ने इन दोनों के समन्वयात्मक रूप को अपने गद्य में अपनाया। पाञ्चाली रीति—जिसमें शब्द और अर्थ का समान गुम्फन रहता है—के प्रयोग में बाण कुशल-हस्त है। इस प्रकार गौडी तथा वैदर्भी रीति के समन्वित रूप—सुललित-मधुर तथा सरस पदावली के साथ ही साथ विकटाक्षरबन्धयुक्त-समास बाहुल्य श्लेषमयी शैली का प्रयोग करने में भी बाण किसी से पीछे नहीं रहे। ऐसा प्रतीत होता है कि उन्होंने ऐसा सम्भवतः उस काल की मांग के अनुसार ही किया होगा। और प्रशंसा की बात यह है कि इस पांचाली रीति के निर्वाह में बाण को सर्वत्र सफलता ही प्राप्त हुई। राजशेखर ने बाण की इस पांचाली रीति की बड़ी प्रशंसा की है—

"शब्दार्थयोः समो गुम्फः पाञ्चालीरीतिरिष्यते।
शिला-भट्टारिका-वाचि बाणोक्तिषु च सा यदि।"

पाञ्चाली रीति उत्कृष्ट तथा सशक्त शैली का प्राण है। वर्ण्य विषय के अनुरूप पदविन्यास तथा जैसा अर्थ वैसा शब्द इसकी विशिष्ट विशेषता है। यदि वर्ण्य-विषय घनघोर अटवी अथवा अरण्यानी है तो कवि की वाणी भी उत्कट पदावली से मण्डित होनी चाहिए, यदि कवि कामिनी के रूप लावण्य का चित्रण करना चाहता है तो उसका पदविन्यास भी नितान्त ललित तथा कमनीय होना चाहिए।

तभी तो भयंकर तथा विकट विन्ध्याटवी का वर्णन करते समय बाण ने दीर्घ काय समासों तथा विकट रचनावाले शब्दों का ही यथेच्छ प्रयोग किया है। देखिए विन्ध्याटवी का क्या ही सुन्दर वर्णन बाण ने किया है[15]—'मध्यप्रदेश की अलङ्कार-

---

[14]"नवोऽर्थो जातिरग्राम्या श्लेषोऽश्लिष्टः स्फुटो रसः।
विकटाक्षरबन्धश्च कृत्स्नमेकत्र दुष्करम्॥"
(हर्षचरित-प्रस्तावना—८)

15. मदकलकुररकुलदश्यमानमरिचपल्लवा, करिकलभकरमृदिततमालकिसलया-मोदिनी, मधुमदोपरक्तकेरलोकपोलच्छविना संचरद्वनदेवताचरणालक्तकरसरञ्जितेनेव पल्लवचयेन संच्छादिता, शुककुलललितबाडिमीफलद्रवार्द्रीकृततलैरतिचपलकपिकम्पित-

स्वरूप, पूर्वी तथा पश्चिमी समुद्र के तटों तक फैली हुई विन्ध्यानाम की एक अटवी है — जहां मद के कारण सुन्दर कुरर पक्षियों के समूह द्वारा मरिच वृक्षों के पल्लवों को नोच कर खाया जाता है और जो हाथी के बच्चों के सूंडों से मर्दन किए गए तमाल के पत्तों से सुगन्धमय है, जो केरली स्त्रियों के मधुमद की ललाई लिए हुए कपोलों की छवि वाले, या वन-विहारिणी किसी देवी के चरणों के आलक्तक रस से रंगे हुए लाल लाल पल्लव समूह से ढकी हुई है, जो शुक-समूह द्वारा विदारित अनार फलों के द्रव से आर्द्र किए गए तल वाले, अत्यन्त चंचल कपियों द्वारा कम्पित कक्कोल वृक्ष से गिरे हुए पल्लवों और फलों से चितकबरे, निरन्तर गिरे हुए पुष्प-पराग से रेणु युक्त, पथिकों द्वारा निर्मित लवङ्ग पल्लवों की शय्या से युक्त, अत्यन्त कठोर नारियल, केतकी, करीर और बकुल के वृक्षों से आवेष्टित प्रान्त भाग वाले, ताम्बूल लता से घिरे हुये पूग वृक्षों से सुशोभित, वनलक्ष्मी के वासगृह जैसे लता-मण्डपों से सुशोभित है।'

एक अन्य स्थान पर विन्ध्याटवी के लिए अनुरूप उपमा देने के लिए विविध उपमान ढूंढते हुए बाण व्यग्र से दिखाई देते हैं। वह स्पष्ट कहते हैं कि उस विन्ध्याटवी की उपमा किस किस से दी जाए[16] ? 'तमालनील शोभा के कारण वह विष्णु भगवान् की मूर्ति के समान जान पड़ती है; वानरों से आक्रान्त वह अर्जुन के रथ की पताका के समान है; जो सैंकड़ों बेंतों की लताओं के कारण दुर्गम राजाओं की द्वार-भूमि के समान है ; कहीं सैंकड़ों बांसों की झाड़ियों से युक्त, कीचकों—विराट के साले कीचक के अनुयायी—से भरी विराट की नगरी के समान है; चंचल तारक मृगों का पीछा करते हुए व्याधों से वह अंबर-श्री जैसी सुवाहनी है तथा कुश, चीर नामक तृण, जटा और वल्कलों के कारण वह ऐसे प्रतीत होती है जैसे कोई व्रतधारण किया हो।'

इसके विपरीत वसन्त-ऋतु के वर्णन में बाण ने वसन्त के समान ही कोमल

कक्कोलच्युतरल्लवफलशबलैरनवरतनिपतितकुसुमरेणुपांसुलैः पथिकजनरचितलवङ्गपल्लव-संस्तरैरतिकठोरनालिकेरकेतकीकरीरबकुलपरिगतप्रान्तैस्ताम्बूलीलतावनद्धपूगखण्डमण्डितै-र्वनलक्ष्मीवास भवनैरिवविराजिता।"

(कादम्बरी पूर्वभाग: — पृष्ठ ५५-५६ ; क० सं० ग्र०—१५१)

16. "क्वचिन्नारायणमूर्त्तिरिव नीला, क्वचित्पार्थरथपताकेवकप्याक्रान्ता, क्व-चिद्वनिपतिद्वारभूमिरिव वेत्रलताशतदुष्प्रवेशा, क्वचिद्विराटनगरीव कीचकशतावृता, क्वचिदम्बरश्रीरिवव्याधानुगम्यमानतरलतारकमृगा, क्वचिद् गृहीत व्रतेव दर्भचीरज-टावल्कलधारिणी।" (कादम्बरी—पृ० ६०-६१ ; क० सं० ग्र०—१५१)

कान्त पदावली का चयन किया है[17]। जिस समय अपनी माता के साथ महाश्वेता अच्छोद सरोवर में स्नान के लिए प्रस्थान करती है उस समय जीव लोक के हृदयों को आह्लादित करने वाले मधु-मास की शोभा का जो चित्रण बाण ने कोमल कान्त पदावली में किया है, वह अपने में अद्वितीय है।

मधुमास के उन दिनों में—'मद से मतवाली कामिनीयों के मद्य से पूरित मुख के सिंचन से मौलश्री के वृक्ष खिलने के लिए पुलकित हो रहे थे, कहीं कुल-कलंक जैसे काले काले भ्रमरों से आच्छादित कालेयक पुष्पों की कलियां सांवले रंग की कर दी गई थीं। कहीं अशोक वृक्षों में दोहद पूर्ण करने वाली रमणियों के ताडन से बजते हुए सुन्दर मणि नूपुरों की झंकार सहस्रों ढंग से मुखरित हो रही थी; कहीं विकसित हुई मंजरियों की सुगन्ध से एकत्रित हुए भ्रमरों की मधुर गुंजार से आम्र के वृक्ष शोभायमान हो रहे थे; कहीं पुष्पों की धूल से पटी हुई पृथ्वी पुलिनों जैसी धवल हो उठी थी; कहीं पुष्प मधुपान से मत्त भ्रमरों द्वारा लता रूपी हिंडोलों को झुलाया जा रहा था; कहीं लवली लताओं के नए पल्लवों में छिपी मत्त कोकिलें पुष्प कणों को उड़ा उड़ा कर वर्षा दिवस का दृश्य उपस्थित कर रही थी—ऐसे एक दिन में माता के साथ इस अच्छोद सरोवर पर जिस की शोभा को मधुमास ने बढ़ा दिया था, स्नान करने के लिए आई।'

इस प्रकार प्रकृति के विकट तथा सुरम्य दोनों प्रकार के दृश्यों का चित्रण करने में बाण ने अपनी अपूर्व-कौशलता का परिचय दिया है। इस दीर्घकाय समासबहुला शैली के विपरीत समास-रहित, सरल तथा सरस शैली के प्रयोग में भी बाण अपना कोई सानी नहीं रखता। अमात्य शुकनास युवराज चन्द्रापीड़ को लक्ष्मी-दोष का वर्णन करते हुए कहते हैं[18]—यह राज्य लक्ष्मी—न परिचय की परवाह करती है, न कुल के प्रति दृष्टिपात करती है, न सुन्दर रूप को देखती है, न कुल परम्परा का अनुसरण करती है, न शील को देखती है, न चातुर्य को समझती है, न शास्त्र को सुनती है, न

---

[17]. मदकलितकामिनी गण्डूषसीधुसेकपुलकितबकुलेषु, मधुकरकुलकलङ्ककालीकृतकालेयककुसुमकुड्मलेषु, अशोकतरुताडनरणितरमणीयमणिनूपुर झंकारसहस्रमुखरेषु, विकसन्मुकुलपरिमलपुञ्जितालिजालमञ्जुशिञ्जितसुभगसहकारेषु, अविरलकुसुमधूलिबालुकापुलिनधवलितधरातलेषु, मधुमदविडम्बितमधुकरकदम्बकसंवाह्यमानलतादोलेषु, उत्फुल्लपल्लवलवलीलीयमानमत्तकोकिलोल्लासित मधुशीकरोद्गमदुर्दिनेषु......................
......मधुमासदिवसेष्वेकदाहमम्बया सह मधुमासविस्तारितशोभं......अच्छोदं सरः स्नातुमभ्यागमम्।" (कादम्बरी पूर्वभाग-पृ० ४१५-१६; क० सं० पृ० १५१)

[18]"न परिचयं रक्षति। नाभिजनमीक्षते। न रूपमालोकयते। न कुलक्रममनुवर्तते। न शीलं पश्यति। न वैदग्ध्यं गणयति। न श्रुतमाकर्णयति। न धर्ममनुरुध्यते। न

धर्म का अनुरोध करती है, न त्याग का आदर करती है, न विशेष-ज्ञान का विचार करती है, न शिष्टाचार का पालन करती है, न सत्य को जानती है, न मनुष्य के उत्तम लक्षणों को प्रमाण बनाती है और फिर आकाश में गन्धर्व नगर-रेखा के समान यह देखते देखते ही नष्ट हो जाती है।'

इसी प्रकार सरल तथा सरस भाषा में कपिंजल के ओजस्वी भाषण का अवलोकन कीजिए।[9] मुनिकुमार कपिंजल, पुण्डरीक का महाश्वेता के प्रति धैर्य-स्खलन देखकर कुछ प्रणय-कोप प्रकट करते हुए उसकी भर्त्सना करता है—'मित्र पुण्डरीक ! इस प्रकार का आचरण करना आपके अनुरूप नहीं है। यह तुच्छ व्यक्तियों के ही व्यवहार का मार्ग है। साधुजनों का तो धैर्य ही धन होता है। एक साधारण व्यक्ति की भान्ति विकल होते हुए अपने को क्यों नहीं रोकते हो ? यह अब तक अननुभूत अपूर्व इन्द्रियों का उपद्रव कहाँ से उपस्थित हो गया, कि जिससे आपकी यह दशा कर दी गई ? आप का वह धैर्य कहाँ है ? वह जितेन्द्रियता कहाँ है ? वह चित्त की स्वाधीनता कहाँ है ? वह प्रशान्ति कहाँ है ? वह कुल-क्रमागत ब्रह्मचर्य कहाँ है ? वह समस्त विषयों के प्रति निरुत्सुकता कहा है ? वह आपका गुरुओं का उपदेश कहाँ है ? वे सब शास्त्र ज्ञान कहाँ हैं ? वह वैराग्य-बुद्धि कहाँ है ? उपभोग के प्रति वह विद्वेष कहाँ है ? वह सुख-पराङ्मुखता कहां है ? तपस्या के प्रति वह आग्रह कहां है ? वह संयतभाव कहां है ? भोगों के प्रति वह अरुचि कहाँ है ? वह यौवन का नियन्त्रण कहां है ? आज बुद्धि सब प्रकार से निष्फल हो गई, धर्मशास्त्रों का अभ्यास सदसद्विवेक जननरूपगुण रहित हो गया संस्कार निरर्थक हो गया एवं तत्वज्ञान निष्फल हो गया क्योंकि आप जैसे लोग भी विषयासक्ति से कलुषित और प्रमादों द्वारा अभिभूत कर लिए जाते हैं'।

त्यागमाद्रियते। न विशेषज्ञतां विचारयति। नाचारं पालयति। न सत्यमवबुध्यते। न लक्षणं प्रमाणीकरोति। गन्धर्वनगरलेखेव पश्यत एव नश्यति।''
(कादम्बरी पृ० ३२०-२१ ; क० सं० प्र०-१५१)

[10] ''सखे ! पुण्डरीक ! नैतदनुरूपं भवतः। क्षुद्रजन क्षुण्ण एष मार्गः। धैर्यधना हि साधवः। किं यः कश्चन प्राकृत इव विक्लवीभवन्नात्मानं न रुणत्सि। कुतस्तवापूर्वोऽयमद्येन्द्रियोपप्लवः ? येनास्येवं कृतः। क्व ते तद्धैर्य्यम्, क्वासाविन्द्रियजयः, क्व तद्वशित्वं चेतसः, क्व सा प्रशान्तिः, क्व तत्कुलक्रमागतं ब्रह्मचर्यम्, क्व सा सर्वविषयनिरुत्सुकता, क्व ते गुरूपदेशाः, क्व तानि श्रुतानि, क्व ता वैराग्यबुद्धयः क्व तदुपभोगविद्वेषित्वम् क्व सा सुखपराङ्मुखता, क्वासौ तपस्यभिनिवेशः, क्व सा संयमिता, क्व सा भोगानामुपर्य्यरुचिः, क्व तद्यौवनानुशासनम्। सर्वथा निष्फला प्रज्ञा, निर्गुणो धर्मशास्त्राभ्यासा, निरर्थकः संस्कारः, निरुपकारको गुरूपदेशविवेकः, निष्प्रयोजना प्रबुद्धता, निष्कारणं ज्ञानम्, यदत्र भवादृशा अपि रागाभिषङ्गैः कलुषी क्रियन्ते''।
(कादम्बरी पृ०,४३८-३९, क० सं० प्र०-१५१)

देखिए इन दोनों प्रसंगों में लघु-कलेवर तथा प्रासादिक वाक्यों की क्या ही शोभा प्रस्तुत की गई है। इन वाक्यों में दीर्घ-समासों का अभाव तथा विशेषण पदों की भी सर्वथा-न्यूनता है। कितना भावोद्रेग है इन छोटे छोटे वाक्यों में—मानों बाण पाठकों के समक्ष हृदय-पट को खोलकर बिछा देना चाहता है। और ऐसा करने में वह पूर्णरूपेण सफल भी हुआ है। इसके अतिरिक्त कपिंजल की भर्त्सना इस बात के लिए भी प्रमाण है कि बाण सर्वथा उच्छृंखल, वासनामय तथा उद्दाम प्रेम के पक्षपाती नहीं है।

अपने काव्य में अलंकारों का प्रयोग भी बाण ने सचमुच ही बड़े स्वाभाविक रूप से किया है। अपने वर्णनों को सजीव, प्रभोत्पादक तथा सुन्दर बनाने के लिए ही बाण ने उपमा, उत्प्रेक्षा, रसनोपमा, परिसंख्या, रूपक, श्लेष, अनुप्रास तथा विरोधाभासादि अलंकारों का बड़े ही सफल ढंग से प्रयोग किया है। विशेष कर उपमा, उत्प्रेक्षा, विरोधाभास तथा परिसंख्या आदि के स्तूप खड़े कर बाण ने अपने वर्ण्य-विषयों की सुन्दर अभिव्यञ्जना प्रस्तुत की है। और फिर इन अलंकारों ने मानों बाण के गद्य में संजीवनी फूंक दी है, उसकी शैली में विशेष चारुता ला दी है—यदि ऐसा कहा जाए तो इसमें कोई अत्युक्ति नहीं होगी। देखिए महाश्वेता का वर्णन करते समय उपमा अलंकार का क्या ही सुष्ठु तथा संयत प्रयोग बाण ने किया है :[10]— 'चन्द्रापीड़ ने एक ऐसी कन्या (महाश्वेता) को देखा जो आकाश से उतरी हुई देव नदी गंगा के समान थी; यज्ञ में दीक्षित व्यक्ति की प्राकृत से भिन्न भाषा—संस्कृत के समान अप्राकृत-अनुगामी थी; त्रिपुरविनाशक भगवान शंकर की तेजोमयी बाण-शलाका के समान जो तप से अथवा तेज से युक्त थी; अमृत पिए हुए सभी तृष्णाओं से रहित व्यक्ति के समान जो सभी प्रकार की कामनाओं से रहित थी; शिव के मस्तक में स्थित उदयास्त की लालिमा रहित शशिकला के समान जिसमें आसक्ति उत्पन्न नहीं हुई थी; अन्दर से अत्यन्त निर्मल मंथन न किए गए समुद्र जल की सम्पत्ति के समान जो हृदय में काम-क्रोधादि के मंथन से रहित अत्यन्त प्रसन्न-निर्मल थी; जैसे समास रहित पदों

---

[10] "अमरापगामिव नभसोऽवतीर्णाम्, दीक्षितवाचमिवाप्राकृताम्। त्रिपुरारिशर-शलाकामिव तेजोमयीम्; पीतामृतामिव विगततृष्णाम्, ईशानशिरः शशिकलामिवानुपजातरागाम्, अमथितोदधिजलसम्पदमिवान्तः प्रसन्नाम्, असमस्तपदवृत्तिमिवाद्वन्द्वाम्, बौद्धबुद्धिमिव निरालम्बनाम्, वैदेहीमिव प्राप्तज्योतिः प्रवेशाम्, द्यूतकलाकुशलामिव वशीकृताक्षहृदयाम्, महीमिव जलभृतदेहाम् हिमसमयदिवसमुखलक्ष्मीमिव परिगृहीतभास्करातपाम्, आर्य्यामिव समुपात्तयतिगोचितमात्राम्, आलिखितामिवाचलावस्थानाम्... कन्यकां ददर्श।" (कादम्बरी—पृ० ३९८ - ४०० ; का० सं० पं०-१११)

में दो पदों का मेल नहीं होता उसी प्रकार उसका हृदय भी सुख दुःखात्मक सांसारिक द्वन्द्वों से रहित था ; आलम्बन रहित बौद्धों के विज्ञान समान जो आधार अथवा आश्रय से रहित थी ; अग्नि में प्रवेश प्राप्त करने वाली पवित्र जानकी के समान जिसने ब्रह्मतेज में प्रवेश पा लिया था ; द्यूतकला में प्रवीण जुआड़ी पासों की चाल को जैसे अपने वश में किए होता है उसी प्रकार जिसने सभी इन्द्रियों और मन की चाल को अपने वश में कर लिया था ; जैसे पृथ्वी जल से ही वेष्टित हो स्थित रहती है उसी प्रकार केवल जलपान ही से इसके शरीर का पोषण हो रहा था ; शीतकाल में प्रातःकाल की हिममयी शोभा जैसे सूर्य की धूप को ढँक लेती है उसी प्रकार जिसने पंचाग्नि साधना द्वारा सूर्य के तेज को आत्मसात् कर लिया था ; यति और गणों के अनुकूल मात्राओं वाली आर्या छन्द के समान जिसने यतियों के योग्य दंड-कमंडलु आदि उपकरण ग्रहण कर रखे थे तथा जो चित्रलिखित के समान शैल-शिला पर निश्चल भाव से आसीन थी।'

यहाँ बाण ने महाश्वेता के शरीर तथा क्रिया-कलापों को अधिक स्पष्ट करने के लिए जिन उपमानों का आश्रय लिया है वे उसकी धवलता तथा सहज गम्भीरता की अमिट छाप पाठक के हृदय पर छोड़ देते हैं। सुबन्धु तथा दण्डी के वर्णन इस प्रकार का प्रभाव पाठक के हृदय पर कदापि नहीं छोड़ते। सुबन्धु ने भी वासवदत्ता के नखशिख का वर्णन बड़े विस्तार से किया है पर वह वर्णन बाण के वर्णन की भान्ति प्रभावी तथा सजीव नहीं कहा जा सकता।

रूपक अलंकार का भी एक मनोरम उदाहरण देखिए[21]—यह लक्ष्मी तृष्णा रूपी विषलता समूह के संवर्धन के लिए जलधारा है ; इन्द्रिय रूपी हरिणों के लिए व्याध की गीति है ; सच्चरित्र रूपी चित्रों के लिए आवरण करने वाली धूम-पंक्ति है ; मोह रूपी दीर्घ निद्रा के लिए कोमल-विलास शय्या है ; धनाभिमान रूपी पिशाचनियों के निवास के लिए जीर्ण-शीर्ण अटारी है; शास्त्र रूपी नेत्रों के लिए तिमिर नामक नेत्र रोग की उत्पत्ति है ; गुण रूपी कलहंसों के लिए असामयिकोत्थित वर्षा है ; लोक

---

[21] इयं संवर्धनधारिधारा तृष्णा विषवल्लीनाम्, व्याधगीतिरिन्द्रियमृगाणाम्, परामर्श-धूमलेखा सच्चरितचित्राणाम् विभ्रमशय्या मोहदीर्घनिद्राणाम्, निवासजीर्णबलभी धनमदपिशाचिकानाम्, तिमिरोद्गतिः शास्त्रदृष्टिनाम्, ... अकालप्रावृट् गुणकल-हंसकानाम्, विसर्पणभूमिर्लोकापवादविस्फोटकानाम्, प्रस्तावना कपटनाटकस्य, कवितका कामकरिणः।" (कादम्बरी पृ० ३२५-२६ ; का० सं० ग्रं०-१५१)

निन्दा रूपी विस्फोट (फोड़ों) का विस्तार करने वाली—उपयुक्त-भूमि है ; कपटाचरण रूपी नाटक की प्रस्तावना है तथा काम रूपी हाथी के लिए कदलीवन है ।'

इसी प्रकार उपमा तथा रूपक के अतिरिक्त—उत्प्रेक्षा, रसनोपमा, अर्थापत्ति, अर्थान्तरन्यास, परिसंख्या आदि अलंकारों का भी बाण ने यथास्थान अपने काव्य में सुन्दर प्रयोग किया है और उनकी यह अलंकार योजना सर्वत्र प्रशंसनीय है। इन अलंकारों ने बाण के काव्य को इन्द्रधनुषी रंगों की भान्ति खूब सुसज्जित बना दिया है। इस के अतिरिक्त इन विविध प्रकार के अलंकारों के प्रयोग से यह भी स्वतः सिद्ध हो जाता है कि बाण की अलंकारों के प्रति विशेष अभिरुचि थी।

बाण का शब्द भण्डार भी अक्षय तथा अजस्र था। उनका शब्द-कोश पर पूर्ण अधिकार था। वे लम्बे लम्बे वर्णनों का चित्रण करते हुए तब तक विराम नहीं लेते जब तक कि उनके पास पर्यायवाची विशेषणों की राशि समाप्त प्रायः नहीं हो जाती। उपयुक्त शब्दों का प्रसंगानुकूल प्रयोग बाण के उच्च कोटि के कौशल तथा असाधारण पाण्डित्य का द्योतक है। बाण की कल्पना शक्ति बहुत ही उदात्त थी। उन के प्रायः समस्त वर्णन सजीव तथा रमणीय हैं। इस दिशा में हर्षचरित के अन्त में सूर्यास्त तथा चन्द्रोदय, कादम्बरी में जाबाल्याश्रम-वर्णन तथा अच्छोदसर-वर्णन विशेषतया देखने योग्य हैं। इनके अतिरिक्त प्रकृति के वर्णनों में—प्रभात, सायं एवं रात्रि के वर्णन भी बाण ने अद्भुत क्षमता से किए हैं। न तो दण्डी की भान्ति केवल चलते ढंग से, अत्यन्त संक्षिप्त रूप में ही उन्होंने प्रकृति को चित्रित किया है और न ही सुबन्धु की भान्ति अस्वाभाविक रूप में वे प्रभात अथवा रात्रि की खोज में कथावस्तु की बलि देने को तत्पर रहे हैं। बाण ने तो सर्वत्र सन्तुलन देकर प्रकृति के स्वाभाविक रूप को पाठक के मानस पटल पर अंकित कर तत्पश्चात् अलंकारों की छटा से उसे खूब सुसज्जित किया है।

मुख्यतया उत्प्रेक्षा अलंकार का सहारा लेकर महर्षि जाबालि के आश्रम में सन्ध्या-काल का क्या ही सजीव चित्र बाण ने प्रस्तुत किया है[22]—'इसी बीच में दिन ढल

---

[22] ''अनेन च समयेन परिणतो दिवसः। स्नानोत्थितेन मुनिजनेनार्घविधिमुपपादयता यः क्षितितले दत्तस्तमम्बरतलगतः साक्षादिव रक्तचन्दनाङ्गरागं रविरुदवहत्। ऊर्ध्व-मुखैरर्कबिम्बविनिहित दृष्टिभिरूष्मपैस्तपोधनैरिव परिपीयमान तेजः प्रसरो विरलातपतल-िमानमभजत्। उद्यत्सप्तर्षिसार्थस्पर्शपरिजिहीर्षयेव संहृतपादः पारावतपादपाटलरागो रविरम्बरतलादवालम्बत। आलोहितांशुजालं जलशयनमध्यगतस्य मधुरिपोर्विगलन्मधुधार-मिवनाभिनलिनं प्रतिमागतमपरार्णवे सूर्यमण्डलमलक्ष्यत। विहायाम्बरतलमुन्मुच्य च कमलिनीवनानि शकुनय इव दिवसावसाने तरुशिखरेषु पर्वताग्रेषु च रविकिरणाः स्थितिम-कुर्वत। आलग्नलोहितातपच्छेदा मुनिभिरालम्बितलोहित वल्कला इव रक्ताः क्षणमदृश्यन्त।

गया। स्नान करने के अनन्तर उठे हुए मुनियों ने अर्घ्य देते समय सूर्य को जो लाल चन्दन का अङ्गराग भूमि पर अर्पण कर दिया था, उसे ही मानों आकाश तल में गए हुए सूर्य ने साक्षात् अपने शरीर पर धारण कर लिया और वह रक्त-वर्ण हो गया। विरल आतप वाले सूर्य ने सम्भवत: इसलिए क्षीणता को प्राप्त किया मानों, वन्हिपान करने वाले ऊर्ध्वमुखी, सूर्य बिम्ब पर दृष्टि जमाए हुए, तपस्वियों द्वारा सूर्य के तेज का प्रसार पिया जा रहा हो। और फिर सायंकाल के समय निकलते हुए सप्तर्षि-मण्डल को कहीं रश्मि-रूपी चरण स्पर्श न कर लें इस भय से अपनी किरणों को समेट कर, कबूतर के चरणों के समान गुलाबी रंग वाला सूर्य आकाश तल से एक ओर लटक गया। और पश्चिमी समुद्र में कुछ कुछ लाल किरण समूह वाला सूर्य-मण्डल प्रतिबिम्बित होकर ऐसा लगने लगा मानों जल शय्या के मध्य में शयन करते हुए विष्णु का मधुधारा बहाता हुआ नाभि कमल हो। दिवस के अवसान पर सूर्य की किरणें पृथ्वी तल को छोड़कर पर्वत की चोटियों पर जा पहुँची, मानों कमल वनों के पक्षी उड़कर तपोवन वृक्षों के शिखरों पर जा बैठे हों। जिन पर कहीं कहीं लाल धूप के खण्ड अभी तक अवशिष्ट थे, वे आश्रम के वृक्ष क्षण भर को ऐसे प्रतीत हुए मानों मुनियों ने उन पर अपने लाल वल्कल लटका दिए हों। इस प्रकार भगवान सूर्य के अस्त हो जाने पर, पश्चिमी समुद्र से निकलती हुई विद्रुम वल्ली के समान गुलाबी सन्ध्या दिखलाई पड़ी।'

कुछ आलोचकों की यह धारणा है कि प्रकृति-वर्णन के स्थलों में बाण ने अधिकतर अपने पौराणिक तथा शास्त्रीय ज्ञान को ही उंडेल कर रखा है। हर्ष-चरित्र के अन्त में सूर्यास्त तथा चन्द्रोदय का वर्णन इस बात का ज्वलन्त उदाहरण है। इस प्रकार उनका विचार है कि ऐसे वर्णनों में बाण के पाण्डित्य तथा उनकी शैली के चमत्कार का ही अधिक बोध होता है, प्राकृतिक दृश्यों का सौन्दर्य तो गौण सा ही रह जाता है। पर यह बात पूर्णतया ठीक नहीं कही जा सकती क्योंकि बाण के प्राय: समस्त प्रकृति चित्रण अन्त: प्रकृति के सर्वथा अनुरूप बन पड़े हैं। विशेषतया प्रात:काल तथा सन्ध्या, वसन्त एवं शरद् ऋतु के वर्णन में उनकी यह विशेषता स्पष्ट दृष्टि-गोचर होती है। अत: सजीव, सुन्दर, रोचक तथा विशद प्रकृति-चित्रण करने में बाण को सर्वत्र अद्वितीय सफलता ही मिली है। बलदेव उपाध्याय बाण को एक सच्चा प्रकृति निरीक्षक मानते हुए एक स्थान पर उल्लेख करते हैं—'संस्कृत के कुछ महाकवि प्रकृति के मंजुल रूप के चित्रण में ही चतुर दीख पड़ते हैं, तो कुछ कवि प्रकृति के

अस्तमुपगते च भगवति सहस्रबीधितावपरार्णवतलादुल्लसन्ती विद्रुमलतेव पाटला संध्या समदृश्यत।'' (कादम्बरी—पृ० १४६-४७; का० सं० ग्रं०—१५१)

भयावह तथा रोमांचकारी स्वरूप के वर्णन में कृतकार्य प्रतीत होते हैं। परन्तु बाणभट्ट की यह भूयसी विशेषता है कि उनकी लेखनी ने प्रकृति के उभय प्रकार के मधुर तथा भयावह दृश्यों के वर्णन में समभाव से सफलता प्राप्त की है। इन दृश्यों के स्वरूप को हृदयङ्गम कराने के लिए कवि ने नाना अलङ्कारों की सहायता भी ली है।[23]

बाण, सचमुच ही प्रकृति के महान अनुरागी हैं। प्रकृति का उन्होंने सूक्ष्माति-सूक्ष्म निरीक्षण किया है। हां इतनी बात अवश्य कही जा सकती है कि अपने प्रकृति वर्णनों को चित्ताकर्षक बनाने के लिए बाण ने अनेकों अलकारों तथा कहीं-कहीं पौराणिक सन्दर्भों का आश्रय अवश्य लिया है।

यद्यपि बाण को लम्बे २ वर्णन देना विशेष रुचिकर है पर एक बात जो बाण में अन्य सब गद्यकारों से बढ़ चढ़कर दिखाई देती है, वह है उनका वर्णनानुकूल शैली का प्रयोग। एक भाव से दूसरे भाव के बदलते ही वह अपनी शैली को भी नए सांचे में ढाल लेते हैं—इस बात की पुष्टि के लिए हम राज्यवर्धन का क्रोध करना और युद्ध के लिए प्रस्थान करने का प्रसंग ले सकते हैं। शोक को एकदम क्रोध में बदलना कोई आसान कार्य नहीं। पर बाण ने अपनी विलक्षण प्रतिभा से एक ऐसी घटना का सृजन किया है जो निश्चय ही स्वभावत: शोकग्रस्त आदमी को भी क्रुद्ध कर देती है। कहीं तपश्चर्या के निमित्त उद्यत राज्यवर्धन की निर्वेदमयी आग्रहपूर्ण उक्तियां और खड्ग का त्याग और कहां अगले ही क्षण संवादक नामक परिचारक के आगमन पर उसकी टेढ़ी हुई भृकुटियां—दोनों का संयोग बाण जैसा सुलझा हुआ कलाकार ही कर सकता है।

प्रभाकर वर्धन की मृत्यु के अनन्तर शोकाकुल राज्यवर्धन अपने छोटे भाई हर्ष को कहता है[24]—'शोक जिस व्यक्ति को अभिभूत कर देता है उसे शास्त्रज्ञ लोग कायर

---

[23] 'संस्कृत साहित्य का इतिहास'—पृ० ३५६-५७।

[24] "यत्र किल शोकः समभिभवति तं कापुरुषमाचक्षते शास्त्रविदः। स्त्रियो हि विषयः शुचाम्। तथापि किं करोमि। स्वभावस्य सेयं कापुरुषता वा स्त्रैणं वा यदेव-मास्पदं पितृशोकहुतभुजो जातोऽस्मि। मम हि भूभृति पर्यस्ते निरवशेषतः प्रस्रवणानीव स्रुतान्यश्रूण्यस्तमिते महति तेजस्यन्धकारीभूतदशाशास्य प्रनष्टः प्रज्ञालोकः, प्रज्वलितं हृदयम्, आत्मदाहभीत इव स्वप्नेऽपि नोपसर्पति विवेकः, बलीयसा संतापेन जातुषमिव विलीन-मखिलं धैर्यम्,......राज्ये विष इव चकोरस्य मे विरक्तं चक्षुः। बहुमृतपटा-वगुण्ठनां रञ्जितरङ्गां जनंगमानामिव वंशबाह्यामनार्यां श्रियं त्यक्तुमभिलषति मे मनः। क्षणमपि दग्धगृहे शकुनिरिव न पारयामि स्थातुम्।......परित्यक्तं मया शस्त्रम्।"

(हर्षचरित षष्ठ उच्छ्वास:-पृ० ३०७–३०६; वि० सं० ग्रं०-३६)

कहते हैं। शोक स्त्रियों में उत्पन्न होता है, तब भी मैं क्या करूँ ? मेरे स्वभाव की यह कापुरुषता या मेरा स्त्रीभाव है जो मैं पितृ शोकाग्नि का स्थान हो गया हूँ । पिता के दिवंगत हो जाने पर मेरे आंसू झरने के समान बहते रहे । उस महान् तेज सूर्य के अस्त हो जाने पर मेरे लिए दशों दिशाओं में अन्धकार छा गया और मेरा प्रज्ञालोक नष्ट हो गया, मेरा हृदय जल गया । अतः मानों मेरा विवेक अपने भी जल जाने के भय से स्वप्न में भी पास नहीं आता । प्रबल सन्ताप के कारण मेरा धैर्य लाख की भांति विलीन हो गया । और इस प्रकार के दुःख के सहने से चोकोर से समान मेरी दृष्टि विष तुल्य राज्य से विरक्त हो गई । राज्य लक्ष्मी को उस प्रकार त्याग देने को मन करता है जैसे बहुत से मरे लोगों के रंग बिरंगे कफन के घूंघट से सजाई हुई, लोगों का मन बहलाने वाली, बांस के ऊपर लगी हुई टेसू की पुतली को डोम लोग फैंक देते हैं । इस जले हुए घर में मैं पक्षी की तरह एक क्षण भर भी नहीं रह सकता । मैंने शस्त्र का अब परित्याग भी कर दिया ।

इस प्रकार राज्यवर्धन ने राज्य परित्याग का अपना दृढ़ निश्चय व्यक्त कर दिया । हर्ष वर्धन के समझाने तथा उसकी चिन्ता का भी उस पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा । और वस्त्र-कर्मान्तिक ने रोते हुए उसके लिए वल्कल भी ला दिया । सारे प्रासाद में हाहाकार मच गया । स्त्रियां विलाप करने लगीं । ब्राह्मण हाथ उठा उठा कर जोर जोर से 'हमारा त्याग न करो' इस प्रकार पुकारने लगे । सामन्त लोग भी निराश हो गए । यहां तक कि सारी प्रजा तपोवन में जाने के लिए प्रस्थान करने लगी । तब उसी समय अकस्मात् शोकाकुल संवादक नामक परिचारक आ उपस्थित हुआ और उससे मालवराज द्वारा ग्रहवर्मा की मृत्यु तथा राज्यश्री के कारावास का समाचार पाकर राज्यवर्धन दर्प युक्त क्रोध से, हर्ष से बोले[35]

'आयुष्मन् ! यह राजकुल है, ये बांधव हैं, ये परिजन हैं, यह राज्य है, महाराज के भुजदण्ड से रक्षित ये प्रजाएँ हैं—इन्हें सम्भालो । अब मैं आज ही मालवराज

[35] ''आयुष्मन् ! इदं राजकुलम्, अमी बान्धवाः, परिजनोऽयम्, इयं भूमिः, भूपतिभुजपरिघपालिताश्चैताः प्रजाः, गतोऽहमद्यैवमालवराजकुलप्रलयाय । इदमेव तावद्वल्कलग्रहणमिदमेव तपः शोकापगमोपायश्चायमेव यदत्यन्ताविनीतारिनिग्रहः । सोऽयं कुरङ्गकैः कचग्रहः केसरिणः, भेकैः करपातः कालसर्पस्य, वत्सकैर्बन्दिग्रहो व्याघ्रस्य, अलगर्दैर्गलग्रहो गरुडस्य, दारुभिर्दाहादेशो दहनस्य, तिमिरैस्तिरस्कारो रवेः, यो मौखराणां मालवैः परिभवः पुष्पभूतिवंशस्य । अन्तरितस्तापो मे महीयसा मन्युना । तिष्ठन्तु सर्व एव राजानः करिणश्च त्वयैव सार्धम् । अयमेको भण्डिरयुतमात्रेण तुरङ्गमाणामनुयातु माम् ।''

(हर्षचरित षष्ठ उच्छ्वासः पृ०-२१६; वि० सं० ग्रं०—३६)

के कुल के विनाश के लिए आ रहा हूं । मेरे लिए अब यही वल्कल ग्रहण है, यही तप है, और यही शोक दूर करने का उपाय भी है कि मैं अत्यन्त अविनीत इस शत्रु का निग्रह करूं । मालवों ने पुष्प-भूति वंश का जो अपमान किया है यह हिरण द्वारा शेर की मूंछ मरोड़ना है, मेंढक द्वारा काल सर्प को चपत लगाना है, बछड़े द्वारा बाघ को बन्दी बनाना है, जलसर्प द्वारा गरुड़ की गर्दन दबाना है, ईंधन द्वारा स्वयं अग्नि को जलने का आदेश देना है, तिमिर द्वारा सूर्य का तिरस्कार करना है । इस महाक्रोध से मेरा ताप मिट गया है । समस्त नृप-समूह और हाथी तुम्हारे साथ ही रहें, केवल यह भण्डी दस सहस्र घुड़सवारों के साथ मेरा अनुगमन करे ।

नारी रूप छटा अथवा राज-वैभव के चित्रण में भी बाण ने अपनी अद्वितीय कवित्व प्रतिभा तथा सशक्त शैली का परिचय दिया है । महाश्वेता का बैठना, उसका ब्रह्मासन, शरीर का तेज, धवलता, शिवाश्रय, आराधना-तत्परता, भूति-विलेपन, गायन, अक्षमाला से युक्त कण्ठ, उन्नत स्तन युगल, वल्कलोत्तरीय की ग्रन्थी, ब्रह्मसूत्र की परिवेष्टन, पांवों तक लटकते हुए दुकूलपट से ढके नितम्ब, वीणा वादन, मण्डप में प्रतिबिम्बित आकृति आदि उसकी विविध क्रिया-कलापों एवं अवस्थाओं का उपमा और उत्प्रेक्षा के माध्यम से ऐसी रंगीनी प्रदान की है जो एक ओर तो बाण के निस्सीम शब्द भण्डार की परिचायक है तो दूसरी ओर बाण के नखशिख वर्णन की अपूर्व क्षमता की द्योतक है[26] ।

जहां तक राजवैभव के चित्रण का सम्बन्ध है उतना स्पष्ट, सजीव तथा विस्तीर्ण वर्णन कदाचित् ही कोई संस्कृत का कवि कर पाया हो । राजा की सभा के समीपस्थ भवनों, राज्यश्री के विवाह से पूर्व के उपकरण-संचय तथा पुत्रजन्मोत्सव आदि के वर्णन तत्कालिक वर्धन वंश की समृद्धि तथा उस समय की सामाजिक अवस्था के चित्रण के ज्वलन्त उदाहरण हैं । हर्ष के जन्म के समय होने वाले शुभ शकुनों तथा मनाए जाने वाले उत्सव का एक दृश्य देखिए[27]—'थोड़े ही समय में मानों विष्णु

---

[26] देखिए-'कादम्बरी कथायाम् महाश्वेता प्रसंग ।

[27] ''ववौ चाचिराच्चक्रायुधभुजलक्ष्म्या लक्ष्म्या निःश्वास इव सुरामोदसुरभिर्दिव्यानिलः, यज्वनां मन्दिरेषु प्रदक्षिणशिखाकलाप कथितकल्याणागमाः प्रजज्वलुरनिन्धना वैतानवह्नयः । भुवास्तलात्तपनीयशृङ्खलाबन्धबन्धुरकलशीकोशाः समुदगुर्महानिधयः । प्रहतमङ्गलतूर्यप्रतिशब्दनिभेन दिक्षु दिक्पालैरपि प्रमोदादक्रियतेव दिष्टवृद्धिकलकलः । ... .
बहुबालव्याकुला ननृतुर्वृद्धधात्र्यः । प्रावर्तत च विगतराज कुलस्थितिरधःकृतप्रतीहाराकृतिरपनीतवेत्रिवेशो निर्दोषागतः पुरप्रवेशः, समस्वामि परिजनो निर्विशेषबालवृद्धः समानशिष्टाशिष्टजनो दुर्ज्ञेयमत्तामत्तप्रविभागस्तुल्यकुलयुवतिवेश्यालापविलासः प्रनृत्तसकल, कटकलोकः पुत्रजन्मोत्सवो महान् ।''

(हर्षचरितचतुर्थ उच्छ्वासः-पृ०२१३-१४; वि० सं० प्र०-३६)

को छोड़ती हुई लक्ष्मी के विरहजन्य निःश्वास के समान मदिरा की मादक गन्ध वाली दिव्य पवन बहने लगी। याज्ञिकों के घर में बिना इन्धन के ही यज्ञाग्नियां अपनी दक्षिणामुख शिखाओं से शुभागम का सन्देश प्रकट करती हुई प्रज्वलित हो उठीं। स्वर्ण-निर्मित शृंखलाओं में बंधे हुए कलशों की बड़ी बड़ी निधियां भूगर्भ से निकलने लगी। बनाए जाते हुए मंगलतूर्यों के प्रतिशब्द के रूप में, दिशाओं में मानों दिक्पाल आनन्दित होकर भाग्यवृद्धि के होने से उत्सव मनाने लगे। दूसरी ओर महल में बूढ़ी धात्रियां नाचने लगीं। राजकुल के नियम शिथिल कर दिए गए। प्रतीहार लोगों ने अपना वेष उतार दिया और इस प्रकार प्रतिबन्ध के हट जाने से लोग बेरोक टोक राज-प्रासाद में प्रवेश पाने लगे, स्वामी और सेवक में कोई अन्तर न रहा। बाल और वृद्ध सब एक हो गए, शिष्ट और अशिष्ट का भी अन्तर नहीं के बराबर हो गया, कुलयुवतियों और वाराङ्गनाओं (वेश्याओं) के वार्तालाप में किसी प्रकार का भेद भाव नहीं रहा। शिविर में रहने वाले लोग भी नाचने लगे। इस प्रकार धूम धाम से पुत्र का जन्मोत्सव मनाया गया'।

इसके अतिरिक्त, पात्रों के मनोद्वन्द्व, हृदयोद्वेग तथा काम-भावना से उद्भूत विकारों, भावों अनुभावों तथा संचारी भावों आदि का अत्यन्त सूक्ष्म एवं सुन्दर चित्रण प्रस्तुत करने में भी बाण पूर्ण सिद्धहस्त माने जाते हैं। बाण ने वास्तव में चेतना प्राणी के अन्तस्तल में बैठ कर उसके अन्तर्गत उठने वाले विविध भावों का अपने प्रातिभ-चक्षु से दर्शन कर फिर ऐसे कलात्मक ढंग से उनका वर्णन किया है कि पाठक उन्हें पढ़कर मनोमुग्ध हो उठता है।

इनकी शैली का लावण्य ऐसे प्रसंगों में सर्वथा प्रेक्षणीय है। पुण्डरीक के प्रथम दर्शन करने पर उसके रूप लावण्य पर मोहित हुई महाश्वेता में जो कम्प, रोमांच, तथा स्वेद उत्पन्न हुआ एवं इसके साथ ही साथ उसके मन में जो काम भावना एवं रति भावना का जन्म हुआ—उन्हें व्यक्त करने के लिए बाण ने जिन हेतूत्प्रेक्षाओं का सहारा लिया है वह सर्वदा अपने में अनूठी हैं। महाश्वेता की मनोदशा का इतना सुन्दर सजीव तथा आकर्षक चित्रण शायद ही कोई अन्य कवि कर पाता।

कामदेव से अभिभूत तथा पुण्डरीक के रूप से सतम्भित महाश्वेता अपनी मनोदशा का वर्णन करती हुई कहती है[28]। 'इसके अनन्तर अक्षि प्रभृति इन्द्रियों

---

[28] "उत्क्षिप्य नीयमानेव तत्समीपमिन्द्रियैः, पुरस्तादाकृष्यमाणेव हृदयेन, पृष्ठतः प्रेर्य्यमाणेव पुष्पधन्वना, कथमपि मुक्तप्रयत्नमप्यात्मानम् अधारयम्। अनन्तरञ्च मेऽन्तर्मदनेन अवकाशमिव दातुमाहितसन्ताना निरीयुः श्वासमरुतः। सामिलाषं हृदय-

द्वारा मानों उठाकर उसके पास ले जाई जाती हुई, आगे से मानों हृदय द्वारा आकर्षित की जाती हुई, तथा पीछे से मानों कामदेव द्वारा प्रेरित की जाती हुई इस अवस्था में मैंने चेष्टा परित्याग कर अति कष्ट से अपने आपको सम्भाला। तदनन्तर मेरे हृदय में उस मुनि कुमार को वास करने का स्थान देने के लिए ही कामदेव द्वारा विस्तृत श्वासवायु ने बाहर निकलना प्रारम्भ किया। उसके प्रति अभिलाषा-युक्त मन के प्रिय संवाद को कहने के इच्छुक होने के कारण ही मानों मेरे स्तनयुगल के मुल स्फुरित होने लगे। लज्जा मानों घर्म जल बिन्दुओं से प्रक्षालित होकर धूलि की तरह बहा दी गई। मानों कामदेव के तीक्ष्ण बाणों के प्रहार के भय से भयभीत हुई मेरी देह कांपने लगी। उसके असाधारण रूप को देखने के लिए ही मानों कौतुकवश आलिंगन की लालसा वाले अंगों से रोमांच समूह निकलने लगा और पसीने के जल से पूर्ण रूप से प्रक्षालित होकर भी मानों अनुराग, लालिमा ने चरण-युगल में से मेरे हृदय में प्रवेश किया।'

इस प्रकार हम देखते हैं कि महाश्वेता के प्राथमिक अनुराग के चित्रण द्वारा बाण ने वास्तव में मानव-मन के सूक्ष्मातिसूक्ष्म भावों का ही चित्रण किया है।

इसके अतिरिक्त रसपरिपाक में तो बाण की शैली विशेष रूप से प्रस्फुटित हुई है। प्रभाकर वर्धन के मृत्यु शय्या पर होने के समय यशोमती द्वारा जो हृदय विदारक विलाप करवाया गया है उसमें केवल बाण सरीखा कलाकार ही सफल हो सकता था। यशोमती के मुख द्वारा कहलाए गए वाक्य बाण की प्रशस्त तथा मंजी हुई शैली के चरम द्योतक हैं। कब्रर यमराज की भर्त्सना करती हुई—"मुषितास्मि, कृतान्त-नृशंस"—'तूने मुझे लूट लिया' कहती हुई फूट २ कर रोने लगी। पर फिर अपने शोक पर नियन्त्रण करते हुए अपने पुत्र को मातृ-स्नेह भरे यह वचन कहे[२७]—

माख्यातुकाममिव स्फुरितमुखमभूत् कुचयुगलम्। स्वेदलवलेखा क्षालितेवागलल्लज्जा। मकरध्वजनिशितशरनिकरनिपातत्रस्तेवाकम्पत गात्रयष्टिः। तद्रूपातिशयं द्रष्टुमिव कुतूहलादालिङ्गनलालसेभ्योऽङ्गेभ्यो निरगाद्रोमाञ्चजालकम्। अशेषतः स्वेदाम्भसा धौतश्चरणयुगलादिव हृदयमविशद्रागः।"

(कादम्बरी पृ०-४२६-२७; क०सं०प्र-१५१)।

[२७] "वत्स! नासि न प्रियो निर्गुणो वा परित्यागार्हो वा स्तन्येनैव सह त्वया पीतं मे हृदयम्। अस्मिंश्च समये प्रभूतप्रभुप्रसादान्तरिता त्वां न पश्यति दृष्टिः। अपि च पुत्रक! कुलकलत्रमस्मि चारित्रमात्रधना धर्मधवले कुले जाता। किं विस्मृतोऽसि मां समरशतशौण्डस्य पुरुषप्रकाण्डस्य केसरिण इव केसरिणीं गृहिणीम्? वीरजा, वीरजाया वीर जननी च मादृशी पराक्रमक्रयक्रीता कथमन्यथा कुर्यात्। मर्तुमविधवैव वाञ्छामि। न च

"वत्स ! तुम मेरे प्रिय नहीं हो ऐसी बात नहीं और निर्गुण अथवा त्याज्य भी नहीं हो—मेरे स्तन के दूध के साथ ही तुमने मेरे हृदय को पी लिया है किन्तु इस समय अतिशय स्वामी भक्ति से आच्छादित मेरी दृष्टि तुम्हें नहीं देख रही है। और भी, हे प्यारे पुत्र ! मैं कुलकलत्र हूं, मेरा चरित्र ही धन है और धर्म धवल कुल में मैंने जन्म लिया है। क्या तुम भूल गए कि मैं सैकड़ों समरों में मद करने वाले सिंह के समान उस विजयी पुरुष की गृहिणी हूं। मेरे समान वीरजा, वीर जाया एवं वीर जननी तथा पराक्रम शील स्त्री कुछ और कर ही क्या सकती है ? अतः मैं अविधवा ही मरना चाहती हूं क्योंकि विधवा रति की भांति मैं अपने पति के भस्म हो जाने पर उसके शोक में निरर्थक प्रलाप नहीं कर सकती। तुम्हारे पिता की पाद धूलि के समान पहले ही स्वर्ग में जाकर, उनके गमन को पहले ही सूचित करती हुई शूरानुरागिणी सुराङ्गनाओं के आदर का पात्र बनूंगी। अतः तात ! अब मैं ही तुम्हें मनाती हूं कि मेरे मनोरथ की प्रतिकूलता से मुझे फिर दुःखी न करना।'

'वत्स ! नासि न प्रियो निर्गुणो वा परित्यागार्हो वा। स्तन्येनैव सह त्वया पीतं मे हृदयम्'—यहां वात्सल्य की बीस वर्ष पर्यन्त पल्लवित जिस भावना का द्योतन बाण ने अपनी जिस सशक्त शैली में किया है वह एक पंक्ति में आबद्ध होते हुए भी प्रत्येक पाठक के सम्मुख दुध-मुंहे बच्चे से लेकर यौवन काल तक के सम्पूर्ण समय को मानों सामने उपस्थित कर देती है। और इस विस्तीर्ण काल के अविच्छेद सम्बन्ध में उपस्थित अकाण्ड व्यवधान कितना करुण हो सकता है—उसे बाण ही जानता था और पाठक को जतला सकता था।

इस प्रकार उपर्युक्त उद्धरणों से यह सिद्ध होता है कि बाण की वर्णन शक्ति बड़ी ही अद्भुत है। वे किसी एक शैली के क्रीतदास नहीं हुए। सशक्त तथा प्रभावोत्पादक शैली की रचना में उन्हें सर्वत्र पूर्ण सफलता मिली है। इसके अतिरिक्त विषयानुसार अपनी शैली को अकस्मात् परिवर्तित करने में भी बाण बड़े कुशल हैं। विविध वर्णनात्मक स्थलों में उन्होंने कई प्रकार की शैलियों का प्रयोग किया है। भावप्रधान तथा मार्मिक प्रसंगों के वर्णन में बाण—समास रहित, विशेषण पदों से मुक्त तथा छोटे छोटे वाक्यों वाली शैली को प्रयोग में लाए हैं। राजवैभव, रमणी

शक्नोमि दग्धाज्य स्वभर्तुरार्यपुत्रविरहिता रतिरिव निरर्थकान्प्रलापान्कर्तुम्। पितुश्च ते पादधूलिरिव प्रथमं गगनगमनमावेदयन्ती बहुमता भविष्यामि शूरानुरागिणीनां सुराङ्गनानाम्।......प्रसादयामि न पुनर्मनोरथप्रातिकूल्येन कदर्थनीयास्मि।"

(हर्षचरित-पञ्चम उच्छ्वास:-पृ० २८२-२८४; वि० सं० प्र०—२६)

विलास तथा भीषण प्रकृति-दृश्यों के चित्रण में उनकी शैली अपेक्षाकृत क्लिष्ट, अलंकृत, प्रगाढ़, दीर्घकाय समास बहुला तथा विपुल वाक्यों वाली होती है। तभी तो विन्ध्याटवी तथा सन्ध्या आदि का चित्रण करते समय उन्होंने दीर्घकाय समासों, अलंकारों से मण्डित पदावली तथा ओजोगुणपूर्ण शैली का आश्रय लिया और दूसरी ओर प्रकृति के मनोरम दृश्य-चित्रण अथवा विरह-वर्णन करते समय समासरहित, छोटे छोटे वाक्यों वाली कोमलकान्त पदावली का प्रयोग किया है। उपदेश देने के समय भी अपनी बात को प्रभावोत्पादक तथा सरस बनाने के लिए उन्होंने लघुकलेवर प्रसादगुणयुक्त शब्दावलि का प्रयोग किया है। इस प्रकार बाण की शैली सर्वत्र विषयानुकूल, सशक्त, हृदयग्राही तथा प्रभावोत्पादक है। इसके अतिरिक्त बाण की अलंकार योजना, कल्पना प्रसूत मौलिक अर्थों की उद्भावना तथा शब्द-सम्पत्ति भी सर्वथा दर्शनीय है।

पर कुछ एक विद्वान्, विशेषकर काले महोदय बाण तथा सुबन्धु की शैली को अधिक कृत्रिम तथा जटिल मानते हैं और दण्डी की शैली को स्वाभाविक तथा सरल। इसी प्रकार डा० भोलाशंकर व्यास ने भी बाण की शैली को कृत्रिमता का परिधान पहने हुए चित्रित किया है। उनका कथन है कि प्रकृति का ब्यौरेवार वर्णन करते समय बाण किसी समय इतनी कृत्रिमता में आ जाते हैं कि वह सिर्फ एक दिखावे की सी वस्तु बन कर रह जाती है। एक स्थान पर बाण की इस कृत्रिम शैली का विश्लेषन करते हुए डा० महोदय स्पष्ट लिखते हैं—'रेखाओं में रंग भर देने के बाद वह कोरी चटक-मटक, बाहरी नक्काशी को पसन्द करने वालों के लिए चित्र पर कहीं कहीं शाब्दी क्रीड़ा का सुनहरा पाउडर भी छिपका देता है और बाण के इन वर्णनों में यह सुनहरी पाउडर वर्णनों के अन्तिम अंश में दिखाई पड़ता है। सहृदय पाठक कभी कभी इस सुनहरी चमक से ऊब भी जाता है, जो वर्णन के अन्त तक पहुँचते २ वर्ण्य विषय की रेखाओं, रंगों और भाव-भंगिमाओं की रमणीयता को छिपा देती है। काश, बाण के इन वर्णनों में ये किलियां न होती। पूरा वर्णन कर चुकने पर जब वह श्लेष, विरोधाभास या परिसंख्या के चक्कर में आ फँसता है, तो सहृदय पाठक का माथा कुछ ठनक पड़ता है, फिर विचार आता है, बाण को पुराने पंडितों के शाब्द-क्रीड़ा-कुतूहल को भी तो तृप्त करना था[30]।'

इस प्रकार बाण की शैली में कृत्रिमता का चाहे कोई दोषारोपण करले पर उनके गद्य का महत्व उसके कवित्व तथा रसपरिपाक में ही है। उन्होंने जिस प्रकार के गद्य का प्रयोग अपनी कृतियों में किया है वह उनके लिए सर्वथा अनुरूप है। इसी लिए तो

[30] देखिए—'भारतीय साहित्य की रूपरेखा'—पृ० ४५–४६।

सम्भवत: त्रिलोचन कवि ने बाण की रसभाववती कविता के समक्ष अन्य कवियों की रचनाओं को केवल चपलता मात्र कहा है—

"हृदि लग्नेन बाणेन यन्मदोऽपि पदक्रमः ।
भवेत्कविकुरङ्गाणां चापलं तत्र कारणम्॥"

बाण के सर्वत्र नव-पदविन्यास, नूतन अर्थाभिव्यक्ति, मंजुल भाव-भंगी-भावाभिव्यंजना तथा ओजस्विता पर मुग्ध होकर धर्मदास भी किस विलक्षण ढंग से उनकी स्तुति करते हैं—

"रुचिरस्वरवर्णपदा रसभाववती जगन्मनो हरति ।
सा किं तरुणी ? नहि नहि वाणी बाणस्य मधुरशीलस्य ॥"

अर्थात्-'अभिराम स्वर-वर्ण-पदों से संवलित तथा रसभावमयी होकर यह संसरा के मन को आकृष्ट कर लेती है । वह क्या कोई सुन्दरी है ? नहीं, नहीं वह तो मधुर स्वभाव वाले बाण की वाणी है ।'

इसके अतिरिक्त बाण को वक्रोक्तिमार्ग का भी एक निपुण कवि माना गया है—

"सुबन्धुर्बाणभट्टश्च कविराज इति त्रयः ।
वक्रोक्तिमार्ग निपुणाः चतुर्थो विद्यते न वा ॥"

गोवर्धनाचार्य तो बाण को वाणी का साक्षात् अवतार मानते हैं—

"जाता शिखण्डिनी प्राग्यथा शिखण्डी तथाऽवगच्छामि ।
प्रागल्भ्यमधिकमाप्तुं वाणी बाणो बभूवेति ॥"

इसी प्रकार जयदेव बाण को कविता-कामिनी के हृदय-मन्दिर में निवास करने वाला साक्षात् कामदेव स्वीकार करते हैं—"हृदयवसतिः पंचबाणस्तु बाणः ।"

श्री चन्द्रदेव तो और भी विचित्र ढंग से बाण की प्रशंसा करते हुए कहते हैं कि 'कुछ कवि श्लेष प्रयोग में, कुछ शब्दों के अनुरूप गुम्फन में, कुछ रसाभिव्यक्ति में, कुछ अलंकार, कुछ अर्थव्यक्ति अथवा कथावर्णन में सिद्धहस्त होते हैं, परन्तु बाण तो कविता रूपी विन्ध्याटवी में कवि कुञ्जरों के गण्डस्थल को विदीर्ण करने वाले सिंह के समान है ।'

"श्लेषे केचन शब्दगुम्फविषये केचिद्रसे चापरे-
ऽलंकारे कतिचित्सदर्थविषये चान्ये कथावर्णने ।
आः सर्वत्र गभीरधीरकविताविन्ध्याटवी चातुरी-
सञ्चारी कविकुम्भिनिदुरो बाणस्तु पञ्चाननः ॥"

इस प्रकार बाण की शैली एक सन्तुलित शैली है। भावाभिव्यञ्जना का एक सफल माध्यम है। लम्बे लम्बे वाक्यों तथा दीर्घकाय समासों के अनन्तर उन्होंने प्रायः सर्वत्र छोटे छोटे सरल तथा सरस वाक्यों का प्रयोग किया है जिससे उनके काव्य के सौन्दर्य में और अधिक निखार आ गया है। उनका शब्द प्राचुर्य भी विशेष सराहनीय है क्यों कि किसी एक प्रसंग में जिस शब्द का बाण ने प्रयोग कर दिया उसे दुहराना बाण अपना अपमान समझता है। यही कारण है कि इस असाधारण शैली द्वारा वे वृहत्कथा के छोटे से कथानक को सुन्दरतम साहित्यिक रचना का रूप प्रदान कर सके। इसके साथ ही बाण ने हृदयपक्ष तथा कलापक्ष दोनों को सदा अपने ध्यान में रखा तभी तो उनकी सर्वातिशायिनी, सर्वव्यापिनी तथा सर्वोत्कृष्ट प्रतिभा को लक्ष्य में रखकर यह कहा जाता है—**"बाणोच्छिष्टं जगत्सर्वम्।"** इस प्रकार फिर पद्यकाव्य तथा नाटक के क्षेत्र में जिस प्रकार महाकवि कालिदास सर्वाग्रणी है, उसी प्रकार गद्य काव्य के क्षेत्र में सुबन्धु, दण्डी अथवा किसी अन्य गद्यकार का नहीं प्रत्युत बाण का ही सर्वोत्कृष्ट स्थान माना जाता है।

पर इन सभी प्रशस्तियों तथा गुणों के विद्यमान होने पर भी बाण की शैली को सर्वथा निष्कलंक नहीं कहा जा सकता। उनकी शैली का सब से बड़ा दोष है—प्रत्येक उपलब्ध वर्ण्य विषय का अनुचित विस्तार। कई स्थानों पर इस प्रकार के विस्तार से पाठक सचमुच ही उकता जाता है। दूसरा दोष जो बाण की शैली में उपलब्ध होता है—वह है पौराणिक तथा शास्त्रीय-संकेतों का आधिक्य। इन गाथाओं से अनभिज्ञ पाठक बाण की कृतियों का भली प्रकार रसास्वादन नहीं कर सकते। इसके अतिरिक्त बाण की सर्वश्रेष्ठ रचना कादम्बरी में कथा, पुनः कथा में कथा का कहना भी जटिल सा ही है क्योंकि साधारण पाठक इसे भी सुविधा से समझ नहीं सकता। तोते के मुख से भी कथा का बहुत बड़ा भाग कहलवाना उचित प्रतीत नहीं होता।

इस प्रकार सामान्यजन के लिए दुर्बोध शास्त्रीय उल्लेखों की प्रचुरता, पौराणिक सन्दर्भों की यत्र तत्र भरमार तथा दीर्घकाय समासों आदि के कारण ही बाण की आलोचना हुई है। कहीं कहीं तो बाण के वर्णन सचमुच ही बहुत विस्तृत हो गए हैं। कई स्थलों पर तो बाण ने अनावश्यक बातों के चित्रण पर व्यर्थ का ही बल दिया है। महाश्वेता वृत्तान्त में महाश्वेता की चर्चा करते हुए बाण प्रायः ८७ विशेषणों को प्रयोग में लाए हैं। और इस कारण इस वर्णन विस्तार से कथा प्रवाह कुछ अवरुद्ध सा हो गया है।

परन्तु बाण के ये थोड़े से दोष उनके गुणों की प्रचुरता के आगे भला कैसे

टिक सकते हैं। 'एको हि दोषो गुणसन्निपाते'—के अनुसार बाण के गुणों के समक्ष उनका कोई विशेष महत्व नहीं। इसके अतिरिक्त यह बात तो स्पष्ट ही है कि बाण ने अपने काव्य में यद्यपि दीर्घकाय समासों का प्रचुरता से प्रयोग किया है और कई स्थलों पर उनके वाक्य कई कई पृष्ठों तक भी चलते हैं, परन्तु सब स्थानों पर ऐसा नहीं हुआ। जहां बाण लम्बे लम्बे समासों का मोह छोड़ कर रचना करते हैं वहां उनके वाक्य भी छोटे छोटे ही होते हैं। शुकनासोपदेश तथा कपिंजल के भाषण में ऐसे समासरहित वाक्य प्रायः देखने में आए हैं।

दूसरे, बाण की अमर रचना 'कादम्बरी' पर कोई दोष लगाना सर्वथा अनुचित प्रतीत होता है, क्योंकि कादम्बरी तो बाण की सर्वोत्कृष्ट रचना है, उनकी उदात्त तथा सशक्त शैली का ज्वलन्त प्रमाण है। और फिर कादम्बरी पर लगाए गए ये दोष कोई विशेष दोष नहीं है जैसा कि उपरोक्त विवरण से स्पष्ट ही है। शेष कथा का दौर्बल्य केवल बाण का ही नहीं, अपितु समस्त संस्कृत साहित्य का दौर्बल्य है। इस पर भी इतनी बात तो बलपूर्वक कही जा सकती है कि बाण की रचनाओं का अध्ययन करने के अनन्तर कोई भी ऐसा व्यक्ति नहीं होगा जिस पर बाण की सर्वोत्कृष्ट शैली की एक अमिट छाप न पड़ जाए। तभी तो 'कीर्तिकौमुदी' में भी कादम्बरी की इस प्रकार से सराहना हुई है—

"युक्तं कादम्बरीं श्रुत्वा कवयो मौनमाश्रिताः।
बाणध्वनावनध्यायो भवतीति स्मृतिर्यतः॥"

इन सब बातों के होने पर भी कुछ एक विद्वान् फिर भी ऐसे हैं जो बाण की विपुलकाया, विकट समास बहुला, सूक्ष्म पौराणिक संकेत मण्डिता, क्लिष्ट तथा दुरूह शैली की कटु आलोचना करते नहीं हिचकिचाते। प्रो० वेबर उनमें सर्वाग्रणी हैं। उन्होंने बाण की शैली का अत्यन्त विरोध किया है और दण्डी की तुलना में उन्हें—अधिकर, अतिसूक्ष्मता तथा पुनरुक्तता का, अकेले शब्दों पर विशेषणों का धारातिशय बलात्कार पूर्वक लादने का दोषी ठहराया है। बाण की गद्य शैली को एक विकट जंगल से तुलना देते हुए प्रो० वेबर स्पष्ट कहते हैं—'यह एक ऐसा भारतीय जंगल है, जिस में यात्री जब तक अपने लिए स्वयं झाड़ियों को साफ कर रास्ता न बनावे, तब तक वह मार्ग को नहीं पा सकता। पर इसके अनन्तर भी अप्रचलित शब्दों के रूप में भयंकर वन-पशु उसको भयान्वित करते हुए मिल जाते हैं[31]।

पाश्चात्य विद्वान् ए. बी. कीथ भी वेबर के इस आक्षेप को न्याय्य मानते हैं।

[31] "In short, Bana's prose is an 'Indian Wood' where all progress is rendered impossible by the undergrowth until the traveller cuts out

उनके विचार में बाण सचमुच ही समास के रूप में समूहीकृत विशेषणों से समन्वित वाक्यों की रचना में आनन्द का अनुभव करते हैं। और इस प्रकार वे एक विभक्ति युक्त (inflected) भाषा के समस्त लाभों का तिरस्कार कर देते हैं। इसके अतिरिक्त श्लिष्टार्थों के बाहुल्य में उनको विशेष रुचि है, और इन श्लिष्टार्थों का सम्पादन वे पुनः पुनः या तो साधारण शब्दों के अप्रचलित अर्थों में प्रयोग द्वारा अथवा अत्यन्त असाधारण शब्दावली के प्रयोग द्वारा करते हैं।[34]

प्रो० वेबर की आलोचना में अतिशयोक्ति का कुछ अंश अवश्य पाया जाता है पर यह कहना कि उन की आलोचना निराधार है—तो यह उपयुक्त न होगा। क्योंकि बाण को सम्यक् रूप से समझना सचमुच ही साधारण व्यक्ति की पहुँच के बाहर की बात है। पर फिर भी बाण के गद्य को 'भारतीय जंगल' कह कर उस की निन्दा करना यथार्थता से कोसों दूर रह कर उसके साथ अन्याय करना है। माना कि चित्रण में सजीवता तथा प्रभावशालिता उत्पन्न करने के लिए बाण ने समास बहुला तथा ओज गुण विभूषिता अलंकृत शैली का यत्र तत्र आश्रय लिया है परन्तु अन्य स्थानों पर लघु-काय वाक्यों एवं समासहीना शैली का प्रयोग करने में भी बाण ने स्वयं को समर्थ एवं सशक्त बनाया है। जिस बाण ने विन्ध्याटवी तथा सन्ध्या का वर्णन करने के लिए घोर शोर करने वाली बरसाती नदियों की भान्ति बड़े वेग से बहने वाले गद्य का आश्रय लिया है, उसी बाण ने कपिंजल के द्वारा पुण्डरीक की भर्त्सना तथा शुकनास के उपदेश देते समय शरत्कालीन शान्त सरिता के समान मन्द गति से चलने वाली शैली का प्रयोग करने में भी पूर्ण रूप से कुशलता का परिचय दिया है।

डा० वरदाचार्य प्रो० वेबर की उक्ति के खण्डन मण्डन में कहते हैं कि—'यह सत्य है कि बाण के द्वारा प्रयुक्त श्लेषों में शब्दों की खींचातानी हुई है और उस ने जिन कथानकों का संकेत किया है, उन में से बहुत से अप्रचलित हैं। बाण की रचना

---

a path for himself and where, even then, he has to reckon with malicious wild beasts in the shape of unknown words that affright him."

(Weber's-treatise on the romances Indische Streifen. P-P. 308-86)

[34] देखिए—'संस्कृत साहित्य का इतिहास'—भाषान्तरकार डा० मंगलदेव शास्त्री—पृ० ३८६।

"The censure is just; Bana revels in the construction of sentences consisting of heaped up epithets in compound form, throwing away all the advantages of an inflected language; moreover he loves to pile up

उन के लिए भी भयावह है जिन्होंने संस्कृत साहित्य का समुचित रूप से अध्ययन नहीं किया। अतः बाण के ग्रन्थों का रसास्वादन न लेने में पाठक की अनभिज्ञता ही कारण है, न कि बाण की रचना शैली। भारतीय लेखकों ने बाण की योग्यता और उस के गुणों की बहुत बल के साथ प्रशंसा की है। गोवर्धन, त्रिविक्रम, धनपाल, धर्मदास, सोड्ढल, सोमेश्वर आदि ने समुचित शब्दों में बाण की शैली की प्रशंसा की है। बाण ने गद्य काव्य के लिए जो उच्च स्तर प्रस्तुत किया है, उस के कारण ही बाण के पूर्ववर्ती कतिपय गद्य-साहित्य के ग्रन्थ लुप्त हो गए हैं[33]।' इसी प्रकार वर्तमान युग के प्रसिद्ध भारतीय विद्वान् एस० के० डे० ने भी प्रो० वेबर के मत के साथ अपनी सहमति तथा असहमति—दोनों ही व्यक्त की हैं[34]।

इस प्रकार बाण भट्ट के गद्य को दुरूह समझ कर उस की निंदा करना अनुचित सा जान पड़ता है, क्योंकि बाण ने अपने ग्रन्थों की रचना उस समय में की थी जब कि समास-बाहुल्य को गद्य का प्राण समझा जाता था—'ओजः समास भूयस्त्वमेतद् गद्यस्य जीवितम्'। और फिर अलंकृत गद्य शैली भी उन के समय में विशेष समादृत थी। अतः इन सब बातों का अवलोकन करते हुए आधुनिक समीक्षा के सिद्धान्तों के अनुसार बाण की शैली की समालोचना करना सर्वथा अनुचित है। डा० श्रीनिवास शास्त्री भी इस बात पर जोर देते हुए कहते हैं कि—'बाण के साथ यदि हमें न्याय करना है तो हमें उस के समय की प्रवृत्तियों को ध्यान में रख कर ही उस की आलोचना करनी चाहिए, केवल आधुनिक मानदण्डों की कसौटी पर उस के काव्य को कसना न्याय्य नहीं होगा। उस विकटाक्षरबन्ध और अलंकार-बहुल शैली के युग में बाण उस से अछूते रह जाते यह तो असम्भव ही था, किन्तु फिर भी बाण ने जो कर दिखाया वह प्रशंसनीय ही है[35]।'

---

in these compounds double meanings, and these he brings about repeatedly by the use of rare senses of ordinary words or the use of utterly abnormal phraseology." (A History of Sanskrit Literature: A. B. Keith. P. 326.)

[33] देखिए—'संस्कृत साहित्य का इतिहास'—अनुवादक डा० कपिलदेव द्विवेदी पृ० १७२।

[34] "While some measure of imperfect sympathy may be suspected in this unqualified denunciation, there is a great deal in this view which is justifiable. But it should not be forgotten that richness of vocabulary, wealth of description, frequency of rhetorical ornaments, length of compounds and elaborateness of sentences, a grandiose

और फिर देखा भी जाए तो बाण की भाषा भारतीय विद्वानों के लिए कदापि क्लिष्ट नहीं। सच्ची बात तो यह है कि बाण ने इस प्रकार की भाषा-शैली का प्रयोग साधारण लोगों के लिए नहीं अपितु विद्वान् संस्कृत साहित्यिकों के लिए किया था। हम इस तथ्य से तो विमुख नहीं होते कि बाण ने कहीं-कहीं श्लेष के चक्र में पड़कर शब्दों की खींचातानी की है और बहुत से अप्रसिद्ध तथा अप्रचलित शास्त्रीय संकेतों तथा पौराणिक कथानकों के रहने से उन की शैली जटिल तथा दुर्गम्य चाहे हो गई है पर बाण को इतना तो क्षम्य ही है क्योंकि सम्भवतः उन्होंने ऐसा उस युग के विद्वानों की सन्तुष्टि के लिए ही किया होगा। इस प्रकार बाण की शैली पाश्चात्य विद्वानों को श्लेष, विरोधाभास, लम्बे-लम्बे समासों तथा विस्तृत वर्णनों से आक्रान्त चाहे दिखाई दे, पर उन की गद्य-शैली का महत्व भारतीय विद्वानों की दृष्टि में बहुत अधिक है। तभी तो कालान्तर में होने वाले भारतीय विद्वानों ने बाण की शैली की मुक्त-कण्ठ से प्रशंसा की है। संस्कृत साहित्य के आलोचकों ने प्रायः बहुत से कवियों की कटु आलोचना की है पर बाण इस दिशा में भाग्यशाली ही कहे जाने चाहिए—क्योंकि वे भारतीय आलोचकों की कठोर से कठोर परीक्षा में भी पूरे उतरे हैं। बाण की कादम्बरी की रोचकता के कारण उस के विषय में तो यहां तक कह दिया गया है—"**कादम्बरी रसज्ञानामाहारोऽपि न रोचते**"—अर्थात् कादम्बरी के रसज्ञों को आहार भी अच्छा नहीं लगता।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि बाण की गद्य शैली के कुछ एक दोष सिकता-कण की भान्ति चाहे स्पष्ट रूप में झलक जाते हैं पर उन दोषों के परिमार्जन के लिए—बाण के गद्य काव्य का स्वतन्त्र शब्द-साम्राज्य, ओजोगुण विशिष्ट पदावली, काव्यकला की सर्वांगीण कुशलता, भावपूर्ण वाक्य, शब्द शास्त्र का प्रगाढ़ पाण्डित्य, ओज के साथ साथ माधुर्य तथा प्रसाद गुण की बहुलता, अलौकिक प्रतिभा, सुन्दर अलंकार योजना, मानव जीवनोपयोगी उपदेशों का सन्निवेश तथा भावपक्ष एवं कला-पक्ष का सम्यक् निर्वाह—सर्वथा समर्थ है। बाण के इन्हीं गुणों से प्रभावित होकर डा० भोलाशंकर व्यास उन की कलामयी शैली की प्रशंसा करते हुए नहीं अघाते। डा० भोलाशंकर—बाण की शैली को उस सुन्दर चम्पा की माला के समान मानते हैं, जिसमें उज्ज्वल दीपक से चमकते फूल गूंथे गए हों। पर वेबर का मन अगर इस

pitch of sound and sense are common features of the Prose Kavya; and in this respect Bana is perhaps less reprehensible than Subandhu, whose unimaginative stolidity aggravate, rather than lessen, the enormity of the blemishes." (History of Sanskrit Literature : P. 236).

[35] देखिए—'कादम्बरी-भूमिका'—पृ० ६७.

माला ने आकृष्ट न किया हो, तो इसमें माला का क्या दोष ? कहा जाता है, भौंरें चम्पा को पसन्द नहीं करते, पर एक कवि ने चम्पा के फूल से कहा था कि यदि मलिन हृदय वाले काले भौंरे ने उस का आदर न किया, तो उसे चिन्ता करने की कोई जरूरत नहीं, भगवान् करें 'कमलनयनी' रमणियों के भौंरे से भी अधिक काले बाल कुशल रहें, जो चम्पा के फूलों का आदर करेंगे । वेबर ने बाण की शैली को उस सघन विन्ध्याटवी की तरह देखा था, जहां पद पद पर अप्रचलित क्लिष्ट शब्द, क्लिष्ट पदयोजना तथा समासान्त पदों एवं लम्बे २ वाक्यों के भीषण जन्तु आकर डराते हैं, और डा० डे को भी बाण तथा सुबन्धु की शैली में यदि कोई भेद दिखाई पड़ा था, तो केवल कविता की मात्रा का ही, गुण का नहीं । पर यह तो रुचिभेद है, जिस पर विवाद करना अनावश्यक है। बाण संस्कृत साहित्य का वह 'पञ्चानन' है जो काव्य की विन्ध्याटवी के हर मार्ग पर 'सिंह ठवनि' से चलता है, अलंकृत समासान्त पदयुक्त वाक्यों की निरर्गल धारा में वह वर्षाकालीन सरिता को भी चुनौती देता है, तो रसमय छोटे छोटे भावप्रवण वाक्यों में वह वैदर्भी के अपूर्व रूप की व्यञ्जना करता है ।[३८]

गद्य-काव्य के निरभ्र-नभोमण्डल में बाण की काव्य-प्रतिभा मध्याह्न कालीन-मार्तण्डमयूखों की भान्ति उसी प्रकार दीप्त है जिस प्रकार पद्यकाव्य के विस्तीर्ण वियत् में कविकुल चूडामणि कालिदास की काव्य-प्रतिभा मयंक की मधुर मरीचि माला की भान्ति सान्द्र है । भेद केवल इतना है कि कालिदास की काव्य-कौमुदी यदि पद्य-कवि रूपी तारिकाओं के परिवेश में बन्धकर आलोकित होती है तो बाण की काव्य-कान्ति अकेले ही अपना आलोक स्वतन्त्र रूप से बिखेरती है । स्मृति सुकर पद्य काव्य के, गद्य काव्य की अपेक्षा अधिक लोकप्रिय होने पर भी बाण की अकृत्रिम काव्य-प्रतिभा ने केवलमात्र अपने ओजस्वी गद्य द्वारा ही पाठकों के मन को आकर्षित किया है । इसके अतिरिक्त पद्य काव्य का पथ प्रकाशित करने वाले अनेक यशस्वी कवि, कालिदास से पूर्व हो चुके थे किन्तु गद्य के क्षेत्र में बाण से पूर्व कोई ऐसा आदर्श कवि नहीं था जो पूर्ण रूप से बाण का मार्ग-दर्शन कर सकता । और फिर गद्य के प्रति लोगों की—**'गद्यं कवीनां निकषं वदन्ति'**—ऐसी धारणा होते हुए भी कवि बाण ने गद्य में ही अपनी लेखनी उठाने का जो साहस किया वह भी असामान्य रूप से सराहनीय है । और सम्भवत: इसी कारण फिर बाण सरस्वती का अवतार कहलाया । कविता-कामिनी को उसने विविध अलंकारों से मण्डित किया, कवि की अप्रतिम शैली ने उसकी सजावट की और तब गद्य काव्य-कान्ता ने साहित्य के मंच पर आकर अपनी विविध भूमिकाओं से सम्पूर्ण सहृदय लोक को अपनी ओर खींच लिया । बाण की अद्भुत काव्यप्रतिभा

---

[३८] **देखिए—'संस्कृत कवि दर्शन' पृ० २१४—१५**

तथा अनुपम वर्णन शैली की भला किस सहृदय आलोचक ने मुक्त कण्ठ से प्रशंसा नहीं की है, तभी तो काव्योचित समस्त गुणों का वाहन करने वाली बाण की गद्य शैली आज भी अननुकरणीय होने के कारण चिर नवीन और चिरनूतन सी लगती है।

कथा की मौलिकता, चरित्र चित्रण की सप्राणता, संवादों की कसावट, वाक्यों के नवीकरण की विलक्षण योग्यता, नूतन अर्थाभिव्यक्ति, रीति की सम्यक् योजना, गुणों का समुचित संतुलन, अलंकारों का औचित्य, पदशय्या का विषयानुरूप सम्गुंफन, अर्थ-भाषा तथा भाव का रुचिर सामंजस्य, कलात्मक तथा भावानुरूप सूक्तियां, शृंगार तथा करुण रस की पूर्ण परिणति, प्रकृति के आलम्बन तथा उद्दीपन गत उभय पक्षों का चित्रण, सहज स्वाभाविक रूप में ग्रथित पांडित्य, अनुभवजन्य ज्ञान, शब्दों की महती शृंखला, सुन्दर तथा चमत्कृत अनूठी कल्पनाएं, सूक्ष्म निरीक्षण शक्ति, वर्णनों की पूर्णता आदि गुणों से क्या गद्य-काव्य और क्या पद्य-काव्य—इन सब की विभाजक रेखाओं को अपने उन्नत, उत्कृष्ट कवित्व से मिटाते हुए बाण ने जिस शैली का पल्लवन किया—वह बाण के पूर्ववर्ती गद्य-परम्परा को पूरी तरह से अतिशयित करती ही है साथ ही साथ आने वाले प्रत्येक कवि की कृति के आगे एक प्रश्नवाचक चिन्ह लगा कर उसे मूक भी बना देती है, तभी तो उन की उस शैली का कोई उत्तरकालीन कवि ठीक रूप से अनुकरण भी नहीं कर पाया—ऐसा जो पुरातन आलोचकों का मत है वह पूर्णतया सत्य है।

विविध

* पुरातन आलोचकों की दृष्टि में बाण
* बाण की काव्य सम्बन्धी मान्यताएँ
* बाणोच्छिष्टं जगत् सर्वम्
* कादम्बरी के पात्र
* बाण कालीन समाज और संस्कृति

'जाता शिखण्डिनी प्राग्यथा शिखण्डी तथाऽवगच्छामि ।
प्रागल्भ्यमधिकमाप्तुं' वाणी बाणो बभूवेति ॥'

१

पुरातन आलोचकों की दृष्टि में बाण

बाण के विषय में प्रचलित प्राचीन आलोचकों की उक्तियां यद्यपि उसके कृतित्व का मूल्याङ्कन करने में पूर्णतः समर्थ नहीं हैं तथापि उन में कुछ न कुछ सत्यांश सुरक्षित अवश्य है और इसी लिए उन का महत्व है। प्रस्तुत लेख में मूल्याङ्कन सम्बन्धी उन्हीं उक्तियों में से कुछ एक महत्वपूर्ण उक्तियों पर विचार किया गया है।

"श्लेषे केचन शब्द गुःफविषये केचिद्रसे चापरे-
ऽलंकारे कतिचित् सदर्थविषये चान्ये कथावर्णने।
आः सर्वत्र गम्भीर धीर कविता विध्याटवी चातुरी
संचारी कविकुम्भिकुम्भभिदुरो बाणस्तु पंचाननः॥"

अर्थात् कुछ एक कवि श्लेष प्रयोग में चतुर हैं, कई शब्दों के विन्यास में, अन्य अलंकार-प्रयोग में कुछ शोभन अर्थ का प्रतिपादन करने में तथा कई कथा-वर्णन में निपुण हैं—पर सान्द्र एवं घनी कविता रूपी विंध्याटवी में चतुराई से संचरण करने वाला तथा कवि रूपि हाथियों के गण्डस्थलों को फोड़ने वाला बाण सर्वत्र शेर है।

कहने का तात्पर्य यह है कि विभिन्न कवियों में उपरोक्त गुण जहां एकांगी रूप में मिलते हैं वहां बाण में सभी मिलते हैं और उनमें वह किसी से पीछे नहीं। कविता रूपी विंध्यावटी में बाण की अव्यवहित और अकुण्ठित गति है। काव्य का कोई ऐसा पक्ष नहीं जिस पर बाण ने अपनी छाप न लगा दी हो। भाव हो या कला पक्ष, कल्पना हो या चिन्तन कहीं भी बाण किसी से पीछे नहीं।

'श्लेषे'—कुछ कवि तो केवल श्लेष प्रयोग में ही सिद्धहस्त है। तात्पर्य संभवतः सुबन्धु से है। सुबन्धु ने स्वयं अपनी कृति को प्रत्यक्षरश्लेषमयप्रबन्धविन्यास वैदग्ध्य-निधिनिर्बन्धनम्' कहा है। स्पष्ट है कि उस ने श्लेष का बहुत व्यापक स्तर पर प्रयोग किया है। 'वासवदत्ता' में जहां भी सुबन्धु को अवसर मिला है वहीं उसने इस अलंकार का प्रयोग किया है। प्रतीत ऐसा होता है कि सुबन्धु ने अपने काव्य का गुंजन केवल श्लेषालंकार विषयक पाण्डित्य के प्रदर्शन निमित्त ही किया है—क्योंकि

कथावस्तु पूर्ण रूप से उपेक्षित, असम्बद्ध और शिथिल है । अलंकार-प्रदर्शन के अवसर प्राप्त करने के लिए सुबन्धु ने मनमाने ढंग से एवं अस्वाभाविक रूप में कथा को मोड़ा है। छोटे बड़े कुल वर्णन मिलाकर सुबन्धु ने ३३ बार श्लेष का प्रयोग 'वासवदत्ता, में किया है । इधर बाण ने श्लेष का प्रयोग मात्रा में चाहे इतना नहीं किया तथापि जितना किया है उतने से यह प्रत्यक्ष सिद्ध है कि वह इस अंलकार के प्रयोग में बिना संतुलन खोए भी सुबन्धु से पीछे नहीं।

'केचन शब्द गुम्फ विषये'—अर्थात् कुछ कवि शब्दों के समुचित विन्यास में प्रवीण हैं। इस कोटि के कवियों में दण्डी का नाम उसके पद लालित्य और शब्दों के सुगुम्फन के कारण अग्रगण्य है। दण्डी ने अपनी कृति को पद लालित्य से संवलित किया है इस में तनिक सन्देह नहीं परन्तु बाण की कृतियों में भी विशेषत: कादम्बरी में ललित पदों के उदाहरण स्थल विपुलता से मिलते हैं।

'केचिद्रसे'—जहां तक रस का प्रश्न है—बाण किसी भी रसवादी कवि से कम नहीं। विप्रलम्भ शृंगार एवं करुण रस के वर्णन सर्वाङ्गपूर्ण एवं अत्यन्त मार्मिक हैं। संचारी भावों का जितना विशद, सूक्ष्म एवं विस्तीर्ण वर्णन बाण ने किया है—वह संस्कृत साहित्य में अनुपम है। इसी प्रकार प्रकृति को उद्दीपन रूप में भी बाण ने जहां प्रस्तुत किया है—वह भी अत्यन्त समीचीन और उसी की प्रतिभा के अनुरूप है।

'चापरेऽलंकारे'—अलंकार प्रयोग में बाण उतना स्वच्छन्द नहीं है जितना कि पथकार है तथापि गद्य माध्यम के अनुरूप छ: अलंकारों का प्रयोग उसने बड़ी सफलता से किया है। उपमा, उत्प्रेक्षा, श्लेष, परिसंख्या, विरोधाभास एवं रूपक का ही प्रयोग प्राय: बाण ने किया है। उपमा और उत्प्रेक्षा का प्रयोग तो बहुत मात्रा में किया है और बाण इनके प्रयोग में हैं भी सिद्धहस्त। यद्यपि कालिदास जैसी समीचीन एवं सुन्दर उपमाएं बाण के काव्य में प्राय: नहीं मिलतीं तो भी हर्षचरित के प्रत्येक उच्छ्वास के आरम्भ में दी गई दो दो उपमाएं पर्याप्त सुन्दर बन पड़ी हैं।

'सदर्थे विषये'—परिणत-पाण्डित्य से युक्त बाण की सार्वभौमिक उक्तियां मात्रा और मार्मिकता में भारवि की उक्तियों से कम नहीं। अत्यन्त अकृत्रिम रूप में प्रसंगानुकूल गुन्थी हुई ये उक्तियां बाण के काव्य में सोने पर सुहागे का कार्य करती हैं।

कथा वर्णन में बाण चाहे बहुत सफल नहीं है और दण्डी से बहुत पीछे है, पर उसमें भी एक बात स्पष्ट है कि बाण के लम्बे वर्णन एवं प्रकृति के चित्रण उस की कथा में पूरी तरह से विलीन अवश्य हो गए हैं और बाण ने कहीं भी सुबन्धु के सदृश अनुचित रूप से वर्णन-लोभ में कथावस्तु की बलि नहीं दी है।

इस प्रकार चन्द्रदेव की समीक्षोक्ति इस सीमा तक बिल्कुल ठीक है कि काव्य

का ऐसा कोई पक्ष नहीं जिसे बाण ने अछूता छोड़ा हो और जिस में उसे सफलता न मिली हो।

"जाता शिखण्डिनी प्राग्यथा शिखण्डी तथावगच्छामि।
प्रागल्भ्यमधिकमाप्तुं वाणी बाणो बभूवेति ॥" गोवर्धनाचार्य

अर्थात् जैसे पूर्व काल में शिखण्डिनी शिखण्डी बन गई थी वैसे ही मैं अनुमान करता कि अधिक प्रौढि प्राप्त करने के लिए वाणी ने बाण का रूप धारण किया।

स्पष्ट ही यहां बाण को वाणी का अवतार कहा गया है। बाण को वाणी का अवतार कहना तो निश्चय ही अतिरंजना और प्रशस्ति मात्र है परन्तु आलोचक का कहने का तात्पर्य केवल इतना ही है कि बाण की वाणी संस्कृत साहित्य में सर्वोत्कृष्ट एवं सर्वगुण सम्पन्न है। 'बाणोच्छिष्टं जगत्सर्वम्' वाली उक्ति भी कुछ २ ऐसे ही भावार्थ की द्योतक है। चन्द्रदेव की उपर्युक्त उक्ति में दिखाया जा चुका है कि बाण संस्कृत साहित्य का बेजोड़ कवि है।

'बाणोच्छिष्टं जगत्सर्वम्'—'सपूर्ण साहित्य जगत्—बाण की जूठन है। अर्थात् कोई भी काव्य का ऐसा पक्ष या गुण नहीं जिसका सम्यक् एवं सफल प्रयोग बाण की कृतियों में न हुआ हो। ऐसा कहना भी अतिरंजना है। वस्तुतः बाण में भी कुछ कमियां एवं दोष निश्चय ही थे। कथावस्तु का दौर्बल्य एक ऐसा दौर्बल्य है जिससे बाण ही नहीं अपितु संपूर्ण संस्कृत साहित्य की परंपरा ही मुक्त नहीं है और इसीलिए बाण भी इसके अपवाद नहीं। इसीप्रकार मौलिकता के अभाव में तात्कालिक कथा रूढियों का इतने पिटे पिटाए ढंग से प्रयोग करना बाण जैसे महाकवि की प्रतिभा के अनुरूप नहीं। कथावस्तु और वर्णनों का संतुलन भी कई एक स्थलों पर बाण ने खोया है।

पर जहां तक बाण के परवर्ती कवियों का सम्बन्ध है उस विषय में निश्चय के साथ कहा जा सकता कि प्रायः सारी गद्यकृतियां, प्रमुख चम्पू कृतियां एवं कुछ एक पद्य-कृतियां भी बाण से प्रभावित ही नहीं अपितु पूरी तरह से अभिभूत हैं। धनपाल की तिलकमंजरी सोड्ढल की अवन्तिसुन्दरी कथा तथा गद्यचिन्तामणि आदि कृतियों पर बाण की कादम्बरी का प्रभाव है और अनुकरण इस सीमा तक किया गया है कि उन्हें बाणोच्छिष्ट कहना असंगत नहीं। इसी प्रकार वामन भट्टबाण रचित वेमभूपाल चरित में हर्षचरित का अनुकरण है तथा त्रिविक्रम भट्ट के नलचम्पू पर सुबन्धु और बाण दोनों का ही प्रभाव है। श्री हर्ष के नैषधीय चरित में कथा वस्तु की उपेक्षा वर्णनों का अयंत विस्तार तथा रस वर्णन में संचारी आदि भावों का व्यापक तथा ब्योरेवार वर्णन चाहे

श्रम साध्य काव्य परम्परा की ही अन्तिम कड़ी के रूप में ही माना जाए पर इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि बाण की कृतियों का प्रभाव भी इस दिशा में कम नहीं था।

'हृदयवसतिः पंचबाणस्तु बाणः'—बाण हृदय में निवास करने वाला कामदेव है। कहने का तात्पर्य यह है कि बाण ने शृंगार प्रयोग किया है। शृंगार-वर्णन में प्रायः कालिदास को सिद्ध समझा जाता है। भारवि और माघ ने भी शृंगार रस का विस्तार से वर्णन किया है परन्तु वे शृंगार रस की अपेक्षा शृंगार कला अथवा काम-कला के शास्त्रीय आचार्य अधिक थे। परन्तु बाण में प्रायः शृंगार का पहला रूप ही मिलता है। बाण के शृंगार वर्णनों की यह अपनी विशेषता है कि वे अत्यन्त व्यापक और पूर्ण हैं। नारी के अपने मुख से ही प्रेम की अभिव्यक्ति करवा कर बाण ने अपनी अपूर्व प्रतिभा का परिचय दिया है।

"बाणं सत्कविगीर्वाणमनुबध्नाति कः कविः।
सिन्धुमन्धुः किमन्वेति द्युमणिः कतमो मणिः॥"

श्रेष्ठ कवियों में विद्वान् बाण का अनुकरण कौन कवि कर सकता है। क्या कूआं समुद्र का अनुकरण कर सकता है, कौन मणि सूर्य हो सकती है।'

बाण की यहां समुद्र एवं सूर्य से उपमा दी गई है। बाण की काव्यगत पूर्णता से ही यहां अभिप्राय है। बाण के परवर्ती कवि बाण का अनुकरण नहीं कर पाए—यह ऊपर सिद्ध किया चुका है।

"हृदि लग्नेन बाणेन यन्मन्दोऽपि पदक्रमः।
भवेत्कविकुरंगानां चापलं तत्र कारणम्॥" त्रिलोचन

'बाण (कवि या तीर) के हृदय में लगने पर भी कवि रूपी हरिण यदि मन्द पद-रचना (संचलन) में प्रवृत्त हों तो इस में हेतु उन की चपलता है।'

आलोचक ने यहां एक तथ्य की ओर संकेत किया है कि बाण की कृतियों को पढ़ने के उपरान्त किसी कवि ने भी उससे अच्छी अथवा उस जैसी कृति की रचना करने का साहस नहीं किया। बाण के पश्चात अलंकृत गद्य में किसी एक भी अच्छी कृति का अभाव कदाचिद् इसी तथ्य का परिचायक है कि बाण के बाद किसी लेखक ने गद्य का आश्रय नहीं लिया और यदि किसी ने लिया भी तो उसकी कृति मन्द ही रही—अधिक प्रकाश में नहीं आई।

"कादम्बरीकथां श्रुत्वा कवयो मौनमागताः।
बाण ध्वनावनध्यायो भवतीति [1]श्रुतिर्यतः॥" कीर्तिकौमुदी

---

[1] यहां स्मृति पाठान्तर है तब अर्थ इस प्रकार रहेगा 'क्यों कि यह नियम है'

'कादम्बरी की कथा को सुनकर कवियों ने चुप्पी धारण कर ली क्यों कि ऐसा सुना जाता है कि बाण की ध्वनि होनेपर अध्ययन नहीं होता। यह उक्ति भी इसी तथ्य पर प्रकाश डालती है कि बाण की कादम्बरी के काव्यगत उत्कर्ष को ध्यान में रख कर किसी कवि ने भी काव्य-सृजन का साहस नहीं किया।

"केवलोऽपि स्फुरन् बाणः करोति विमदान कवीन्।
किं पुनः वलूप्तसंधानः पुलिन्दकृत संनिधिः॥"

'एकाकी चमकता हुआ भी बाण कवियों को मद-हीन कर देता है पुलिन्द के सामीप्य से युक्त एवं निशाना बनाए हुए की तो फिर बात ही क्या है।'

आलोचक के कहने का तात्पर्य यह है कि बाण की कृति कादम्बरी अपूर्ण होते हुए भी उस की असाधारण प्रतिभा का प्रतिपादक है—परन्तु उस के पुत्र पुलिन्द द्वारा पूर्ण की गई कादम्बरी का महत्त्व तो और भी अधिक बढ़ जाता है। अप्रत्यक्ष रूप से यहां यह संकेत भी दिया गया है कि पुलिन्द प्रतिभा में बाण से कम नहीं था। पर कादम्बरी के पूर्वार्ध और उत्तरार्ध की तुलना करने पर हमें यह अवश्य अनुभव होता है कि बाण की मृत्यु के बाद उस के पुत्र ने यद्यपि कादम्बरी को अधिक से अधिक सौष्ठव प्रदान करने का प्रयास किया है तथापि वह बाण की योजना के अनुरूप नहीं बन पाया। बाण जिस मन्द एवं विलासपूर्ण गति से पूर्वार्ध में चलता है—उत्तरार्ध में पुलिन्द उस गति को निभा नहीं पाया। तो भी इतना निश्चित है कि पुलिन्द का प्रयास स्तुत्य है, बहुत प्रशंसनीय है। क्योंकि उसने अविकल रूप से बाण की ही शैली में कृति को पूर्ण किया है। कथा को समेट कर परिणति की ओर ले जाने की व्यग्रता में ही कदाचित् पुलिन्द, बाण जितने विस्तीर्ण, पूर्ण एवं स्फीत वर्णन नहीं दे पाया। प्रातःकाल, मध्याह्न, प्रावृट्, स्कन्धावार और उज्जयिनी यात्रा आदि पांच ही वर्णन उत्तरार्ध में मिलते हैं और उनमें भी केवल प्रातःकाल का वर्णन ही बाण के वर्णनों की भान्ति किंचिद् पूर्ण है—शेष वर्णन तो अत्यन्त संक्षिप्त एवं सीमित हैं। पर इस विषय में पुलिन्द ने कदम्बरी-उत्तरार्ध के आरम्भ में ही बड़े विनीत भाव से कहा है—

"कादम्बरी रसभरेण समस्त एव मत्तो न किंचिदपि चेतयते जनोऽयम्।
भीतोऽस्मि यन्न रसवर्ण विवर्जितेन तच्छेषमात्मवचसाप्यनुसंदधानः॥"

कादम्बरी के शृंगारादि रस (मद्य) के अधिक्य से ये सब लोग मदमस्त हो बेसुध पड़े हैं—इसलिए उस के शेष भाग को रसपूर्ण शब्दावली के अभाव में भी अपनी वाणी से पूर्ण करते हुए मुझे भय नहीं है।'

''रुचिरस्वरवर्णपदा रसभाववती जगन्मनो हरति ।
सा किं तरुणी ? नहि नहि वाणी बाणस्य मधुरशीलस्य ॥''

सुन्दर स्वर एवं वर्ण वाले पदों से युक्त है (सुन्दर आवाज, रंग और गति से युक्त) रस और भावों से युक्त है (अनुराग की भावना से (युक्त) संसार के चित्त का हरण करती है। क्या वह युवती है ? नहीं नहीं मधुर-स्वभाव-शैली वाले बाण की वाणी है।'

'पदलालित्य तो वैसे दण्डी का ही अधिक प्रसिद्ध है परन्तु इस उक्ति में बाण के पदलालित्य की भी प्रशंसा की गई है। बाण के हर्षचरित में लालित्य की मात्रा चाहे इतनी न भी हो पर कादम्बरी का पदलालित्य तो निश्चय ही संसकृत साहित्य के लिए गौरव की बात है। कादम्बरी के पद-लालित्य की एक विशेषता यह है कि उस में हर्षचरित की भान्ति कवि को अनुप्रास का आग्रह नहीं और यह गुण तो बाण ने अपने पुत्र में भी संक्रांत कर दिया था[2]। प्रस्तुत उक्ति में जो बाण की रस-व्यंजना के विषय में कहा गया है—उस में तो प्राय: ऐकमत्य है। बाण की कृतियों में शृंगार और करुण का परिपाक अनुपम है।

''बाण: कवीनामिह चक्रवर्ती चकास्ति यस्योज्जवलवर्णशोभम् ।
एकातपत्रं भवि पुष्यभूतिवंशाश्रयं हर्षचरित्रमेव ॥'' (सोड्ढल)

'बाण कवियों में चक्रवर्ती सम्राट है जिस का छत्र पुष्यभूति वंश से सम्बद्ध हर्षचरित के समान उज्जवल वर्ण से शोभित है।'

इस उक्ति में बाण को कवि-सम्राट के रूप में उल्लिखित किया गया है और हर्षचरित-गत वर्णोज्जवलता की प्रशंसा की गई है। यद्यपि यह सत्य है कि हर्षचरित बाण की परिपक्व कृति नहीं तथापि उसकी शब्द योजना में ओज और प्रखरता कादम्बरी से अधिक है। क्योंकि कादम्बरी में बाण का सर्वाधिक ध्यान रस-व्यंजना की ओर ही रहा है। हर्षचरित से वर्णोज्जवलता का एक उदाहरण अप्रासंगिक न होगा—

'प्रकटकलङ्कम् उदयमानं विशङ्कटविषाणोत्कीर्णपङ्कसङ्करशङ्करशकुरशक्वर कुकुदकूट संकाशम्' आदि ।

''शश्वद् बाणद्वितीयेन नमदाकारधारिणा ।
धनुषेव गुणाढ्येन निःशेषो रंजितो जन: ॥'' (त्रिविक्रम भट्ट)

देखिए[2] मधुमदमुखरमधुकरकुल कलकोलाहलाकुलिते कोक कामिनीकरुण कूजिते विकचदलारविन्द निरयन्द सुगन्ध मन्द गन्ध वाहानंदित दशदिशि प्रदोषसमये विकसित कुसुमा मोद मुकुलित मानिनी मानग्रहोन्मोचहस्ते कुसुमायुधे ।'

निरन्तर बाण से युक्त, झुके हुए आकार वाला तथा मौर्वी से युक्त धनुष जिस प्रकार सम्पूर्ण शत्रुओं को पूरी तरह जीत लेता है (निःशेषोऽरंजितो जनः=निशेषः अरं (अलं) जितः जनः) उसी प्रकार मदाकार (जड़ता, स्तब्धता) से विहीन, बाण सहित गुणाढ्य ने सम्पूर्ण लोक को प्रमुदित किया।'

प्रस्तुत उक्ति में त्रिविक्रम भट्ट का श्लेष-प्रयोग के प्रति आग्रह ही अधिक है यथार्थ्य की मात्रा कम है। इस उक्ति में तथ्यांश इतना ही है कि बाण ने विद्वद्-समाज का हृदय-रंजन किया। गुणाढ्य के साथ बाण का उल्लेख कदाचित् इस लिए किया गया है कि बाण की कादम्बरी की कथा गुणाढ्य की बृहद्कथा में उपलब्ध किसी कथा पर आधारित है।

''शब्दार्थयो समो गुम्फः पाञ्चाली रीतिरिष्यते।
शिलाभट्टारिका वाचि बाणोक्तिषु च सा यदि॥''

'अर्थानुरूप शब्दयोजना को पाञ्चाली रीति कहते हैं—शिलाभट्टारिका की वाणी में अथवा बाण की उक्तियों में यदि वह है।'

इस उक्ति में बाण की वाणी को पांचाली रीति से समन्वित कहा गया है। (शिला भट्टारिका का कृतित्व अत्यल्प है और काल अनिश्चित है)। निश्चय ही अर्थानुरूप शब्द विन्यास में बाण अत्यन्त दक्ष है।[3]

'प्रविष्टे त्वन्तरं बाणे कण्ठे वागेव रुध्यते।'

हृदय में बाण के प्रविष्ट हो जाने पर वाणी कण्ठ में ही रुक जाती है।

इस उक्ति में भी अधिकांश उक्तियों के सदृश इस तथ्य की ओर संकेत किया गया है कि बाण का परिशीलन करने के उपरान्त कवि काव्य रचना में प्रवृत्त नहीं हुए। उन की लेखनी रुद्ध हो गई।

''सहर्षचरिता शश्वत्कृतकादम्बरी कथा।
बाणस्य वाण्यनार्येव स्वच्छन्दं भ्रमतिक्षितौ॥''

'हर्षचरित सहित तथा सदा के लिए कादम्बरी कथा को कहने वाली बाण की वाणी अनार्या की भान्ति लोक में स्वेच्छा से भ्रमण करती है।'

कदाचित् इस उक्ति में यह तथ्य प्रतिपादित किया गया है कि बाण की कृतियों का प्रचार और प्रसार अत्यन्त व्यापक था और उन की बहुत ख्याति थी।

'प्रतिकविभेदन बाणः'— वीरनारायणचरित

'बाण प्रत्येक कवि को बींधने वाला है।

---

[3] विस्तृत विवेचन के लिए देखिए लेख—'गद्य परम्परा में बाण का स्थान'

इस उक्ति में भी बाण को अन्य कवियों से अतिशायी कहा गया है। बाण के विषय में प्रचलित पंचास प्रतिशत से भी अधिक उक्तियां केवल इसी भाव को व्यक्त करती हैं कि बाण ने सभी कवियों को मात कर दिया।

''कादम्बरी सहोदर्या सुधया वै बुधे हृदि ।
हर्षाख्यायिकया ख्याति बाणोऽब्धिरिवलब्धवान् ॥''

'विद्वान् के हृदय में व्याप्त हर्ष की ख्यापक—हर्षचरित आख्यायिका तथा कादम्बरी कृति और मदिरा की सहोदरा सुधा के द्वारा बाण ने समुद्र के तुल्य ख्याति को प्राप्त किया'।

इस उक्ति में भी बाण की कृतिद्वय के आधार पर लोक-व्याप्त प्रसिद्धि का ही उल्लेख हुआ है।

''परिशिलितैव सरसं कविराजै बहुभिरत्र वाग्देवी ।
बाणेन तु वै जात्यात् कथयति नामैव वाणीति ॥''

'यहां अनेकों कवि सम्राटों के द्वारा अनुरागपूर्वक सरस्वती देवी का परिशीलन किया गया परन्तु बाण से सजातीय होने के कारण सरस्वती ने अपना नाम ही वाणी रख लिया।'

इस उक्ति में भी इस बात की ओर संकेत किया गया है कि बाण के हाथों वाणी को पूर्णता प्राप्त हुई।

''अर्थेश्वरं हन्त भजे अभिनन्द वागीश्वरं वाक्पतिराजमीडे ।
रसेश्वरं नौमि च कालिदासं बाणं तु सर्वेश्वरमानतोऽस्मि ॥''

अर्थाभिव्यंजना के स्वामी अभिनन्द को प्रणाम करता हूं। वाणी (शब्द) के स्वामी वाक्पतिराज की स्तुति करता हूं, रस-व्यंजना के स्वामी कालिदास को प्रमाण करता हूं तथा सभी के स्वामी बाण के आगे नत हूं''।

इस उक्ति में बाण के काव्य की शब्द, अर्थ, रस तथा अन्य दृष्टियों से सर्वातिशयता व्यक्त की गई है।

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि अधिकांश पुरातन आलोचक बाण को संस्कृत के सर्वोत्कृष्ट कवि के रूप में स्वीकार करते हैं।

: २ :

बाण की काव्य-सम्बन्धी मान्यतायें

बाण की काव्य-गत मान्यताएं—तात्कालिक विद्वद् समाज द्वारा स्वीकृत एवं अनुमोदित विचारों का ही प्रातिनिध्य करती हैं। हर्ष चरित के प्रारम्भिक श्लोकों में उस ने अपने काव्य सम्बन्धी विचार इस प्रकार व्यक्त किए हैं[1]—'नया विषय, अग्राम्य स्वभावोक्ति, सरल श्लेष, (जो श्रमसाध्य नहीं) सुगम रस, एवं सुन्दर शब्द योजना—इन सब का एक स्थान पर होना कठिन है'। इन सभी गुणों को एक स्थान पर देने का स्तुत्य कार्य बाण ने अपनी कृति-युग्म के द्वारा किया है—इस विषय में कोई सन्देह नहीं।

बाण के काल में भी मौलिक कृतियों का अभाव था। अनुकरण एवं चोरी की आदत कवियों में थी, जैसा कि बाण की निम्न उक्तियों से स्पष्ट है। केवल जन्म ग्रहण किए हुए कुत्तों की भान्ति स्वभावोक्ति से युक्त कृतियों वाले असंख्य कवि तो घर घर में हैं पर शरभ के तुल्य मौलिक रचना करने वाले कवि बहुत कम हैं'।[2] इसी प्रकार दूसरे शब्दों को बदलने से तथा रचना के चिन्हों को छिपाने से उत्कृष्ट कवियों के बीच में चोर कवि बिना कहे ही पहचाना जाता है'।[3]

उपर्युक्त श्लोकों से प्रमाणित है कि बाण, कृति की सर्वप्रथम विशेषता उस का मौलिक होना मानते थे इसी लिए नवोऽर्थो कह कर उसे प्रथम स्थान दिया है।

बाण श्रम-साध्य श्लेष के भी विरुद्ध थे। यदि श्लेष रसोत्पत्ति में बाधक ही बने

---

1. नवोऽर्थो जातिरग्राम्या श्लेषोऽविलष्टः स्फुटो रसः।
   विकटाक्षर बन्धश्च कृत्स्नमेकत्र दुष्करम्॥ हर्ष—६
2. सन्ति श्वान इवा संख्या जाति भाजो गृहे गृहे।
   उत्पादका न बहवः कवयः शरभा इव॥ हर्ष—६
3. अन्यवर्णपरावृत्या बन्धचिन्हनिगूहनैः।
   अनाख्यातः सतां मध्ये कविश्चौरो विभाव्यते॥ हर्ष—७

तथा जटिलता उत्पन्न करे तो ऐसा श्लेष निरर्थक है । इसी प्रकार सहज-बोध-गम्य रस के प्रति भी बाण का आग्रह उपयुक्त ही था । चमत्कृत स्वभावोक्ति एवं सुन्दर शब्द विन्यास—इन दो गुणों को भी बाण ने दुर्लभ काव्य-गुणों में गिना है ।

कथा के गुणों के विषय में अपने विचार उपमा एवं श्लेष के माध्यम से बाण इस प्रकार व्यक्त करते हैं—[4] 'जिस प्रकार कम्पन से (धड़कन) युक्त एवं मन्द्र संभाषण व्यापार के कारण सुन्दर नई नवेली प्रेम वश स्वयं पति के बिस्तर के पास गई हुई कौतुक युक्त अनुराग उत्पन्न करती है उसी प्रकार उज्जवल एवं मधुर-संवाद-मार्दव से युक्त एवं रसपूर्ण शब्द गुम्फन से समन्वित मौलिक कथा-लोगों के हृदय में उत्सुकता से युक्त प्रीति उत्पन्न करती है । मधुर संवाद, मौलिक कथानक एवं रस-पूर्ण-शब्द गुम्फन—ये तीन विशेषताएं कथा की उत्कृष्टता के लिए बाण ने यहां गिनाई हैं और अपनी कृति को इन गुणों से समन्वित भी किया है ।

जहां तक संवादों का सम्बन्ध है—बाण ने उन्हें मधुर एवं मार्मिक बनाने में कोई कसर नहीं उठा रक्खी । संवादों की भाषा प्रसंगानुकूल कसावट से युक्त एवं सहज-सम्प्रेषणीय होने के कारण मधुर है । यद्यपि बाण के संवाद आधुनिक कथा साहित्य एवं प्राचीन नाट्य साहित्य के संवादों की भान्ति संक्षिप्त तो नहीं है तथापि उन में से यदि वर्णन एवं चित्रण पक्ष हटा कर शुद्ध संवाद के रूप में परखा जाए तो वे बड़े मार्मिक एवं प्रभावी प्रतीत होते हैं—जैसे महाश्वेता एवं चन्द्रापीड के साक्षात्कार के पश्चात् होने वाला संभाषण लिया जा सकता है,—[5] तदनन्तर गीत की समाप्ति होने पर उस कन्यका (महाश्वेता) ने चन्द्रापीड को कहा अतिथि का स्वागत हो,

---

4. स्फुरत्कलालापविलास कोमला करोति रागं हृदि कौतुकाधिकम् ।
रसेन शय्यां स्वयमभ्युपगता कथा जनस्यामिनवा वधूरिव ॥ ६—काद-पूर्व०

5 अथ गीतावसाने सा कन्यका चन्द्रापीडमाबभाषे—स्वागतमतिथये । कथमिमां भूमिमनुप्राप्तो महाभाग । तदुत्तिष्ठ । आगम्यताम् । अनुभूयतामितिथिसत्कारः-' इति । एवमुक्तस्तु कृतप्रणामः भगवति यथा शापयसि' इत्यभिधाय तां व्रजन्तीमनु व्रजाः । अर्घजलमादाय तां कन्यकां समुपस्थिताम् 'अलमतियत्नेन । कृतमतिप्रसादेन । भगवति प्रसीद । विमुच्यतामयमत्यादरः । त्वदीयमालोकनमपि सर्वपापप्रशमनमथ-मर्षणमिव पवित्रीकरणायालम् । आस्यताम् – इत्यब्रवीत् । परिसमापिताहारां शिलातले विश्रब्धमुपविष्टां निभृतमुपसृत्य चन्द्रापीड़ सविनयमवादीत् भगवति किं एकाकिना वनमिदममानुषमधिवससि । आवेदयतु भवती सर्वमिदम्—सा प्रत्यवादीत्—राजपुत्र । यदि महत्कुतूहलं तत्कथयामि । श्रूयताम् ।"

आप महानुभाव किस प्रकार इस भूमि को प्राप्त हुए हैं, तो उठिए ! आइए ! आतिथ्य सत्कार ग्रहण कीजिए ।

इस प्रकार सम्बोधित वह उठ कर श्रद्धा से प्रणाम करके—'जैसी आप की आज्ञा' ऐसा कह कर उसके पीछे पीछे चल पड़ा ।

अर्घ्य जल लाकर उपस्थित हुई उस कन्यका को उसने कहा—'इतना कष्ट न कीजिए, आप का इतना ही अनुग्रह बहुत है । भगवति ! अब बस कीजिए—इतना अधिक सत्कार छोड़िए—आप का तो दर्शन ही सब प्रकार के पापों को शान्त करने वाले अघमर्षण के समान मुझे पवित्र करने के लिए पर्याप्त है—बैठिए । भोजनानन्तर शिला के ऊपर एकान्त में बैठी हुई के पास सरक कर नम्रता पूर्वक बोला—भगवति ! आप अकेली ही इस वन में क्यों रहती हैं—आप हमारे कौतूहल को दूर कीजिए—बताईए ।

वह बोली—राजपुत्र ! यदि बहुत कोतूहल है तो कहती हूं—सुनिए !

बाण के शब्दों का विन्यास भी अत्यन्त रसपूर्ण है—इस विषय में कोई सन्देह नहीं । चन्द्रापीड को ताम्बूल देने के लिए महाश्वेता जिस समय कादम्बरी को कहती है तो उस समय के शब्दों के विन्यास में बाण ने शृंगार रस की अतीव सुन्दर एवं स्वाभाविक व्यंजना की है—जैसे

"महाश्वेता तामभाषत्-'सखि कादम्बरी, संप्रतिपन्नमेव सर्वाभिरस्माभिरयमभिनवागतश्चन्द्रापीड आराधनीयः । तदस्मै तावदीयताम्—इत्युक्ता च किंचिद्विवर्तिता वनमितमुखीशनैरव्यक्तमिव 'प्रियसखि लज्जेऽहम् । अनुपजातपरिचयाप्रागल्भ्येनानेन गृहाण । त्वमेवास्मै प्रयच्छ—इत्युवाच सा ताम् । पुनः पुनरभिधीयमाना च तथा कथमपि ग्राम्येव चिराद्दानाभिमुखं मनश्चक्रे । महाश्वेता मुखावनाकर्षित दृष्टिरेव वेपमानाङ्गयष्टि—आकुललोचना, स्थूलस्थूलं निःश्वसन्ती, साध्वसपरवशापातामीति लगितमिव कृतप्रयत्ना प्रसारयामास ताम्बूल गर्भं हस्तपल्लवम् ।"

जहां तक कथानक का सम्बन्ध है—बाण की कथावस्तु मौलिक ही है। कथा सरित्सागर में इस कथा के बीज चाहे मिल जाएं परन्तु कादम्बरी की कथा का विकास पूर्णतः मौलिक एवं बाण की अपनी कल्पना है ।

इसी प्रकार बाण ने कथा के मनोहारी गुणों का भी एक अन्य स्थान पर उल्लेख किया है ।[6] उज्ज्वल दीपक के तुल्यरंग वाली, निबिड़ रूप में ग्रथित सुन्दर जाति-पुष्पों से युक्त चम्पक की कलिकाओं द्वारा निर्मित विशाल मालाओं की भान्ति शृंगार

---

[6]हरन्ति कं नोज्ज्वलदीपकोपमैर्नवैः पदार्थैरुपपादिताः कथाः ।
निरन्तरश्लेषघना सुजातयो महास्रजश्चम्पककुड्मलैरिव ॥

रस एवं दीपक तथा उपमाओं से युक्त, अव्यवहित श्लेष के बाहुल्य से युक्त, शब्द और अर्थ से निर्मित मौलिक कथाएं किस के मन को नहीं हरतीं ।

बाण की कादम्बरी का प्रमुख रस तो शृंगार ही है पर दीपक अलंकार का प्रयोग उसने शायद ही एक बार भी किया हो । कदाचित् बाण का अभिप्राय अर्थान्तर न्यास से रहा होगा । क्योंकि अनेक स्थलों पर सार्वभौमिक उक्तियों के रूप में सामान्य से विशेष का समर्थन तो बाण ने अवश्य किया है पर प्रस्तुत और अप्रस्तुत में एक धर्म का अभिसम्बन्ध व्यक्त करने वाला प्रसंग कहीं नहीं मिलता । पर यदि दीपक की परिभाषा **कारकमेकं स्यादनेकासुक्रियासु चेत्**—के आधार पर देखें तब तो दीपक के अनेकों उदाहरण बाण की कादम्बरी में मिल जाएंगे ।

बाण द्वारा व्यक्त काव्य सम्बन्धी विचार बस इन आरम्भिक श्लोकों में ही व्यक्त हैं ।

: ३ :

बाणोच्छिष्टं जगत्सर्वम्

किसी सहृदय समालोचक ने सकल काव्यविषय, समस्त अभिव्यंजना पक्ष और भाव को बाण का उच्छिष्ट घोषित किया है। सुबन्धु ने जिस कृत्रिम गद्य शैली को पल्लवित किया, उसका प्रौढतम और मंजा रूप हमें बाण के गद्य में दृष्टिगोचर होता है। बाण के पास जहां अपार शब्द भाण्डार, अलंकारों और कल्पनाओं की अपूर्व उद्भावना शक्ति, वर्णन की शक्ति, संगीतात्मक भाषा और भावपक्ष की तरलता है, वहां सुबन्धु के पास केवल शाब्दी कला बाजी है। सुबन्धु ने भी प्रकृति का चित्रण किया है, पर वह बाण की ऊँचाई तक नहीं पहुँच सके।

सुबन्धु की गद्य शैली का रूखा रूप बाण के हाथों में जा कर स्निग्ध हो गया। इसलिए यही कहा जा सकता है कि कवित्व की दृष्टि से सुबन्धु बाण से निम्न कोटि के हैं। दण्डी की गद्य शैली का आदर्श बाण की गद्य शैली से भिन्न है। इसलिए उससे तुलना करना बाण के साथ अन्याय करना होगा। दासगुप्त और डे के शब्दों में—"दण्डी सबल स्फीत संस्कृत गद्य शैली के स्वामी हैं, इसीलिए उनको संस्कृत साहित्य में आदर प्राप्त है और उनकी कृति को जो एक सामाजिक चुनौती है, निःसंदेह संस्कृत गद्य साहित्य की महान् देन है।"

बाण में कुछ ऐसी विशेषताएं हैं जो उन्हें अनायास कालिदास, माघ या भवभूति के समकक्ष उठा देती हैं। अभिधा की अपेक्षा व्यञ्जना का आश्रय लेकर उच्च कोटि के प्रभाव की अपूर्व सृष्टि करने में कालिदास सानी नही रखते। परन्तु माघ और भवभूति के समान सानुप्रासिक समासान्त-पदावली का जितना रमणीक निर्वाह बाण कर पाते हैं, उतना कोई अन्य गद्य लेखक नहीं कर पाया। इस क्षेत्र में तो बाण दोनों के ऊपर उठ जाते हैं। पद्य में एक सी रेखाएँ, एक सा रंग, एक से कला कौशल का परिचय देना सरल है जो गद्य में अत्यधिक कठिन हो जाता है। प्रकृति का जैसा क्रमबद्ध वर्णन बाण में दिखाई देता है वैसा माघ और भवभूति में नहीं। यह ठीक है कि बाण का प्रकृति वर्णन वहीं तक आनन्द प्रदान करता चलता है जहाँ तक प्राकृतिक दृश्यों का बिंबग्रहण होता जाता है, ज्योंही श्लेष और विरोधाभास का चक्कर चला कि पाठक

उकताने लगता है। वैसे तो उसमें माधुर्य का वह निरन्तर बहने वाला झरना प्रवाहित होता है कि पाठक झूम उठता है।

बाण के हर्ष चरित और कादम्बरी गद्य-महाकाव्य के उत्कृष्ट नमूने हैं। ये दोनों कृतियाँ बाण के अलौकिक काव्य-कला-कौशल और प्रदीप्त प्रतिभा वैभव के निदर्शन हैं। फिर भी कादम्बरी की समता किसी भी कवि की गद्यकृति से आज तक नहीं की जा सकी। इसके वाग्विन्यास के विलास को देख कर सहृदय पाठक आनन्द-विभोर हो जाते हैं। बाण के पुत्र पुलिन्द भट्ट का यह कथन कादम्बरी पर अक्षरशः चरितार्थ होता है :—**"कादम्बरीरसभरेण समस्त एव, मत्तो न किञ्चिदपि चेतयते जनोऽयम्।"**

"कादम्बरी (शराब) स्वाद लेकर मैं सर्वथा मतवाला सा हो गया हूँ मुझे कुछ आगे पीछे नहीं सूझता।"

असाधारण रस परिपाक, कथावस्तु का वर्णन-कौशल, प्रकृति का सूक्ष्म प्रसंगानुकूल वर्णन, न टूटने वाली भावों की शृंखला पाठकों के मन को इस प्रकार रमाती चली जाती है कि वे सब व्यापार भूल जाते हैं। किसी ने ठीक कहा है :—

'कादम्बरी रसज्ञानामाहारोऽपि न रोचते'। कादम्बरी के रसज्ञों को भोजन भी अच्छा नहीं लगता।

वैदेशिक कीथ, वेबर आदि बाण के ग्रन्थ को समझने में असमर्थ होने के कारण उसकी निन्दा करते हैं। कीथ अपने संस्कृत साहित्य के इतिहास में लिखते हैं कि वेबर ने जो कदाचित् ही आवेश में आते थे, बाण की शैली के दोषों के प्रति एक बार अत्यन्त तीव्र विरोध का प्रदर्शन किया था। दण्डी की तुलना में उन्होंने उनको अरुचिकर, अतिसूक्ष्मता तथा पुनरुक्तता का अकेले शब्दों पर विशेषणों के भारातिशय के बलात्कार-पूर्वक लादने का, तथा ऐसे वाक्यों की रचना का दोषी हठराया था जिनमें एकाकी की क्रिया के दर्शन कई पृष्ठों के अनन्तर होते हैं। और बीच में विशेषणों का और उन विशेषणों के भी विशेषणों का समावेश किया जाता है। किन्तु ये विशेषण भी समासों के रूप में प्रायेण एक-एक पंक्ति से बड़े ही होते हैं। ऐसी परिस्थिति में बाण का गद्य एक भारतीय जंगल है जिसमें यात्री तब तक आगे नहीं बढ़ सकता जब तक वह झाड़ियों को काट कर अपने लिए मार्ग नहीं बना लेता और जहाँ इसके बाद भी उसे भयानक अज्ञात शब्दों के रूप में दुष्ट जंगली पशुओं का सामना करना पड़ता है।"

डा० डे को भी बाण और सुबन्धु की शैली में केवल कविता की मात्रा का भेद दिखाई पड़ा था; गुण का नहीं। पर यह तो रुचिभेद है। इस पर विशेष विवाद करना

आवश्यक नहीं। हर्ष चरित के आरम्भ के श्लोक से प्रतीत होता है कि बाण के गद्य का आदर्श ही भिन्न था :—

"नवोऽर्थो जातिरग्राम्या श्लेषोऽक्लिष्टः स्फुटोरसः।
विकटाक्षरबन्धश्च कृत्स्नमेकत्र दुष्करम् ॥"

मौलिक कल्पना, सुरुचिपूर्ण स्वभावोक्ति, अक्लिष्ट श्लेष, स्पष्ट रूप से प्रतीत होने वाले रस, दृढ़बन्ध पदावली, इन समस्त गुणों का एक स्थान पर मेल जिसको वह स्पष्टतः आदर्श मानते हैं, दुर्लभ है।

यह ठीक है कि बाण समस्त विशेषणों से युक्त वाक्यों के प्रयोग में आनन्द लाभ करते हैं, और इस प्रकार वे एक विभक्तियुक्त भाषा के समस्त लाभों को ठुकरा देते हैं। साथ ही समास के भीतर श्लेषार्थों के बाहुल्य प्रयोग की ओर उनकी विशेष प्रवृत्ति है। इन श्लिष्टार्थों को वे बार बार या तो साधारण शब्दों के अप्रचलित अर्थों के प्रयोग द्वारा अथवा अत्यन्त साधारण शब्दावली के प्रयोग द्वारा सम्पन्न करते हैं। बाण ने लिट् का प्रयोग परोक्ष वर्णनों के लिए ही किया है। यहाँ वे सुबन्धु से आगे बढ़े हुए हैं। इस प्रकार उनका व्याकरण ज्ञान स्पष्ट है। वे अलंकारों का प्रयोग बिना रुके करते हैं। लययुक्त गद्य की रचना की ओर उनका विशेष झुकाव है। पर किसी कलाकार की परख उसके काल में उसे रख कर करना ही समुचित है। बाण के लम्बे लम्बे समासों के अर्थ प्रायः स्पष्ट हैं। उनके बीच में लघुतर शब्दों का प्रयोग ओजस प्रभाव को उत्पन्न करने के उद्देश्य से किया गया है। भले ही आधुनिक आलोचकों को उनकी यह प्रवृत्ति अखरती है। भारतीय ग्रन्थकार तो इसके भक्त हैं। धर्मदास, गोवर्धन, और जयदेव भी बाण के लययुक्त गद्य और अलंकारों से ही प्रभावित हैं।

यहाँ यह बात स्मरण रखनी चाहिए कि बाण किसी भी स्थिति में औचित्य की बुद्धि का त्याग नहीं करते। हर्ष चरित में उन्होंने प्रायः वीर रस के परिपाक के लिए समास बहुल ओजोगुणमण्डित शैली को अपनाया है। कादम्बरी में भी वन और सन्ध्या के वर्णन में जहाँ दीर्घ समासों की बहुलता दीख पड़ती है वहाँ हृदय के भावों की अभिव्यक्ति में छोटे छोटे प्रासादिक वाक्य ही उपलब्ध होते हैं। कपिंजल द्वारा कामपीड़ा से पीड़ित पुण्डरीक की भर्त्सना स्पष्ट और सबल है। चिता में आग लगाने के समय राज्ञी राज्यश्री की सेविकाओं अथवा मरणासन्न राजा प्रभाकर वर्धन के उद्गार श्रेष्ठ रीति से अभिव्यक्त किए गए हैं। राज सेना, नाना प्रकार के जनसमूह के कोलाहल तथा चारों ओर से लूटे जाने हुए निराश ग्रामीणों के चीत्कारों के चित्रण में बाण का समकक्ष कोई दृष्टिगोचर नहीं होता।

मुक्तकों जैसी चमत्कारपूर्ण उक्तियाँ भी स्थान स्थान पर मिलती हैं, पर बाण ने इनका प्रयोग कम ही किया है।

कादम्बरी से उद्धृत प्रतीहारी का आगे लिखा वर्णन बाण की साधारण शैली का एक निदर्शन है—

"एकदा तु नातिदूरोदिते नवनलिनदलसम्पुटभिदि। किंचिदुन्मुक्तपाटलिम्नि भगवति सहस्रमरीचिमालिनि, राजानमास्थानमण्डपगतम् अङ्गनाजनविरुद्धेन वामपार्श्वविलम्बिना कौक्षेयकेण सन्निहितविषधरेव चन्दनलता भीषणरमणीयाकृतिः, अविरलचन्दनानुलेपनधवलितस्तनतटा उन्मज्जदैरावतकुम्भमण्डलेव मन्दाकिनी चूडामणिप्रतिबिम्बच्छलेन राजाज्ञेव मूर्तिमती राजभिः शिरोभिरुह्यमाना, शरदिव कलहंसधवलाम्बरा, जामदग्न्यपरशुधारेव वशीकृतसकलराजमण्डला, विन्ध्यवनभूमिरिव वेत्रलतावती, राज्याधिदेवतेव विग्रहिणी, 'प्रतीहारी समुपसृत्य क्षितितलनिहितजानुकरकमला सविनयमब्रवीत्।"

इस शान्त चित्र के समक्ष राज्यवर्धन के निधन समाचार को लेकर भण्डि के प्रत्यागमन के मार्मिक चित्र को रखा जा सकता है :—

"मलिन वासा, रिपुशर शल्यपूरितेन निखातबहुलोहकीलकपरिकर रक्षित स्फुटनेनेव हृदयेन हृदजग्नैः स्वामिसत्कृतैरिव व्रणैः ‌भिः शुचं समुपदर्शयन्, दूरीकृत व्यायामशिथिल भुजदण्डदोलायमानमङ्कुलवलयैकशेवालङ्कृतिः, अनादरोपयुक्त ताम्बूलविरलरागेण शोकदहनदह्यमानस्य हृदयस्याङ्गारेणेव दीर्घनिश्वास वेगनिर्गतेनाधरेण शुष्यता स्वामि विरहविधुत जीवितापराधवैलक्ष्यादिव बाष्पवारिपटलेन पटेनेव प्रावृतवदनः विशन्निव।"

बाण के चुभते हुए संक्षिप्त कथन का भी एक उदाहरण प्रस्तुत है—प्रसंग बाण के शपथ लेने का है —

"शपाम्यार्यस्यैव पादपांसुस्पर्शेन यदि परिगणितैरेव वासरैः सकलचापचापल दुर्ललितनरपतिचरणरणायमाननिगडां निर्गौड़ां न करोमि मेदिनीं ततस्तनूनपातिपीतसर्पिषि पतङ्ग इव पातकी पातयाम्यात्मानम्।

हर्ष की माता और पिता के मृत्यु के दृश्यों में भी संक्षिप्त वर्णन के उदाहरण बहुत अधिक दृष्टिगोचर होते हैं। एक उदाहरण और प्रस्तुत है—

"महासत्वता हि प्रथममवलम्बनं लोकस्य पश्चाद्राजजीविता। सत्ववतां चाग्रणीः सर्वातिशयश्रितः क्व भवान् क्व वैक्लव्यम्; कुलप्रदीपोऽसीतिदिवसकरसदृशतेजसस्ते लघूकरणमिव। पुरुषसिंहोऽसीति शौर्य (? चातुर्य) पटुप्रज्ञोपबृंहितपराक्रमस्य निन्देव।

क्षितिरयं तवेति लक्षणाख्यातचक्रवर्तिपदस्य पुनरुक्तमिव । गृह्यतां श्रीरिति स्वयमेव श्रिया गृहीतस्य विपरीतमिव ।''

इत्यादि कथन करते हुए कवि स्वयं थक जाते हैं। क्योंकि ऐसे वाणी के विलासों का तर्क की दृष्टि से कोई अन्त नहीं।[1]

बाण ने समस्त काव्यविषय को अपनी रचनाओं का आधार बनाया है । एक ओर वे शाल्मली-वृक्ष पर रहने वाले तोतों की निर्दोष जीवनयात्रा का अथवा जाबालि के आश्रम की निरुपद्रव शान्ति का जी खोल कर वर्णन करते हैं तो दूसरी ओर शूद्रक और तारापीड़ के राजगृहों के ऐश्वर्य और दिखावे का भी चित्रण करते हैं। हर्ष चरित में भी प्राकृतिक सौन्दर्य के चित्रण के साथ साथ नगरों और मनुष्य-निर्मित कृतियों के सौन्दर्य का चित्रण भी मिलता है ।

काली कलूटी चाण्डाल कन्या का वर्णन इस ढंग से किया है कि पाठक अवाक् रह जाता है। बाण ने उस काली चाण्डाल कन्या को इस सुन्दर ढंग से सजा कर प्रस्तुत किया है कि वह घूमती फिरती इन्द्रनीलमणिपुत्रिका दिखाई देती है, उसके सौन्दर्य को अंकित करने के लिए जिन कल्पनाओं की उद्भावना की है वे सर्वथा मौलिक हैं और स्वाभाविक हैं ।

काली चांडाल कन्या से ठीक विपरीत रूप रंग वाली गौरवर्ण 'महाश्वेता' के गौर स्वरूप को प्रस्तुत करने में बाण ने एक से एक श्रेष्ठ नवीन कल्पना की उद्भावना की है। ऐसा प्रतीत होता है मानों उसके अभिषेक के लिए समस्त रस की गगरी उडेल दी हो। कादंबरी के नखशिख वर्णन में समस्त कल्पनाओं की होड़ सी लगा दी है। पुरुषों की आकृति का वर्णन करने में भी बाण कम कुशल नहीं हैं। शूद्रक और चन्द्रापीड़ जैसे राजाओं का वर्णन कम चित्ताकर्षक नहीं। जाबालि और जाबालिपुत्र हारीत तथा पुण्डरीक और कपिंजल के तपस्वी जन के उपयुक्त वर्णन में बाण ने गहरी सूझ बूझ से काम लिया है । शबर सेनापति मातंग के भयंकर आकार और जरदद्गविड धार्मिक के भय, जुगुप्सा और हास्य के मिले भाव को व्यक्त करने वाले अनोखे रूप का वर्णन करने में भी बाण का कमाल द्रष्टव्य है ।

बाण ने प्रकृतिवर्णन बड़ा सुन्दर किया है। संस्कृत के कुछ महाकवि प्रकृति के मंजुल रूप के ही चितेरे हैं तो कुछ कवि प्रकृति के भयानक लोमहर्षक स्वरूप के वर्णन में चतुर दीख पड़ते हैं। परन्तु बाण ने प्रकृति के उभय रूप का चित्रण बड़ी कुशलता के साथ किया है। इन दृश्यों के स्वरूप को हृदय मे उतारने के लिए विभिन्न अलंकारों

1. कीथ के संस्कृत साहित्य के इतिहास से ।

ी है। उपमा, उत्प्रेक्षा, विरोधाभास और परिसंख्या का आश्रय लेकर ेय की सुन्दर अभिव्यंजना की है। विन्ध्याटवी के भयावह रूप का चित्रण फलता के साथ किया है वह किस सहृदय को चकित करने वाला ाबालि के आश्रम का सुन्दर वर्णन किस के हृदय में सात्विकता का हाँ करता। आश्रम के वृद्ध अन्ध तपस्वियों को परिचित वानरों के द्वारा छड़ी र भीतर आने और बाहर ले जाने का वर्णन अपनी एक अमिट छाप हृदय पर ाता है हर्षचरित में भी विन्ध्य का चित्र-सदृश अत्यन्त विस्तार से वर्णन है। ारित में दिवाकर मित्र का आश्रम वर्णन भी इसी ढंग का है।

ऋतुओं का वर्णन भी अत्यन्त हृदयस्पर्शी है। प्रभात और सन्ध्या, अन्धकार न्द्रोदय आदि प्रकृति के विभिन्न दृश्यों के वर्णन सरस और यथार्थ हैं।

अच्छोद सरोवर का वर्णन कवि के सूक्ष्म निरीक्षण का परिचायक है। बाण को कि वायु के द्वारा उत्पन्न जलतरंग के कणों में सूर्य किरणों के पड़ने पर इन्द्रधनुष उत्पन्न होते हैं। प्रकृतिप्रेम और सूक्ष्म निरीक्षण—हिमालय, सरोवर और महाश्वेता के निवास स्थान के वर्णनों तथा उनकी कृतियों में ाए जाने वाले छोटे शब्द चित्रों में मिल जाता है। प्रकृति के अलंकृत वर्णनों बाण की कल्पना एक से एक सौन्दर्य का बाना धारण करके आती है। सूर्योदय, , चन्द्रोदय आदि के प्राकृतिक वर्णन कल्पना का अवलम्ब पाकर निखर उठे हैं। का वर्णन बाण के अनुपम प्रकृति वर्णनों में से एक है। यहाँ उपमा, समासोक्ति त्प्रेक्षा का चमत्कार ही नहीं है वरन् सन्ध्या का विस्तृत वर्णन विलक्षण ढंग से किया गया है। बाण की कादम्बरी में प्रकृति के सौम्य तथा उग्र रूप का वर्णन रुचिकर है उतना ही रोचक है। उसके नाना वस्तुओं के वर्णनों को संश्लिष्ट भावी बनाने के लिए, भावों में तीव्रता लाने के लिए बाण ने उपमा, उत्प्रेक्षा विरोधाभास आदि अलंकारों का बड़ा भव्य वर्णन किया है। परिसंख्या अलंकार पर तो उनका अनन्य अधिकार है। श्लेष, परिसंख्या का जितना चमत्कारी प्रयोग उन्होंने किया है कदाचित् ही किसी ने किया हो। उनके श्लेष प्रयोग जूही की माला में पिरोए गए चम्पक पुष्पों के समान मन को मुग्ध करने वाले होते हैं। रसनोपमा का आगे लिखा उदाहरण कितना मनोहारी है—

"क्रमेण च कृतं मे वपुषि, वसन्त इव मधुमासेन, मधुमास इव नवपल्लवेन, नवपल्लव इव कुसुमेन कुसुम इव मधुकरेण, मधुकर इव मदेन नवयौवनेन पदम्।

जाबालि के आश्रम का वर्णन करते हुए बाण ने परिसंख्या का प्रयोग कितना रमणीक किया है।

शुकनासोपदेश में रूपकों का विन्यास और उपमा का निवेश इतना भव्य है कि लक्ष्मी की मूर्ति अपने पूर्ण ऐश्वर्य के साथ हमारे नेत्रों के समक्ष सजीव हो उठती है। रूपक की शोभा और विरोधाभास के विलास के कारण यह वर्णन विश्वसाहित्य में बेजोड़ है। लक्ष्मी-जन्य दोषों का सूक्ष्मता से वर्णन इस बात का प्रमाण है कि बाण की दृष्टि कितनी पैनी थी।

अच्छोद सरोवर की स्वच्छता के प्रदर्शन के लिए बाण ने उपमाओं का स्तूप खड़ा कर दिया है।

"अद्य परिसमाप्तमीश्वरयुगलस्यद्रष्टव्यदर्शनफलम्, आलोकितः खलु रमणीयानामन्तः दृष्टः आह्लादनीयानामवधिः, वीक्षितामनोहरानां सीमान्तलेखा, प्रत्यक्षीकृता प्रीतिजनानां परिसमाप्तिः। विलोकिता दर्शनीयानामवसानभूमिः।

रमणीक पदों का विन्यास इससे सुन्दर क्या हो सकता है।

अलंकारों के प्रयोग ने बाण के गद्य को अपूर्व सजीवता प्रदान की है। बाण की रचनाओं में शब्द, अर्थ और मनोभावों का जैसा सुरुचिपूर्ण सामञ्जस्य दृष्टिगोचर होता है वैसा कहीं नहीं दीखता। विकटविन्ध्याटवी का वर्णन करते हुए वे विकट शब्दों का ही प्रयोग करते हैं—**"क्वचित्प्रलयवेलेव महावराह दंष्ट्रासमुत्खात धरणिमण्डला, क्वचिदुत्कृतमृगपति नादभीतेव कण्टकिता"** इत्यादि। वसन्त वर्णन के प्रसंग में मृदुल और अति कोमल पदावली का प्रयोग हुआ है।

हर्ष चरित में वेश्याओं का विभ्रमविलास आलेख्यबद्ध सा अंकित हुआ है।

बाण की रचनाओं में रस का अजस्र प्रवाह प्रवाहित होता दीखता है। महाश्वेता के प्रथम प्रणय और कादम्बरी के साक्षात् के अवसर पर भावों और अनुभावों की जैसी उदात्त सृष्टि हुई है वैसी अन्यत्र दुर्लभ ही है। भावों की अभिव्यक्ति में उचित पदन्यास का सर्वदा ध्यान रखना बाण की उल्लेखनीय विशेषता है। पुण्डरीक को देखने के बाद महाश्वेता को जो अनुभूति होती है वह कैसी चमत्कारपूर्ण है। चन्द्रापीड़ के प्रथम मिलन के अवसर पर कामकला से अपरिचित मुग्धा कादम्बरी की सलज्ज, सस्पृह भावना का अपह्नुतिन्यय अलंकृत शैली में वर्णन बाण की सूक्ष्म निरीक्षण शक्ति का द्योतक है।

महाश्वेता का विलाप और कादम्बरी का विरहवर्णन विप्रलम्भ शृंगार का करुण मार्मिक पक्ष प्रस्तुत करते हैं। पुण्डरीक के वियोग में महाश्वेता के हृदयगत

भावों की सुन्दर पदावली में अभिव्यक्ति बाण की लेखनी का चमत्कार है। जरद्द्रविड धार्मिक के वर्णन में हास्य रस का परिपाक हुआ है। अन्य रसों का प्रवाह भी द्रष्टव्य है। सच तो यह है कि बाण की वाणी जिस किसी भी रस का प्रसार करने में प्रवृत होती है उस का पूर्ण परिपाक ही करती है।

बाण संस्कृत साहित्य का वह पंचानन है जो विन्ध्याटवी के प्रत्येक मार्ग पर सिंहठबनि से चलता है। कहीं उनका गद्य भयंकर शब्द करने वाली बरसाती नदियों की भाँति बड़े वेग से बहता है, तो कहीं वह शरत्कालीन नदी के समान धीमी चाल से चल कर अपूर्व सुषमा को बिखेरता है। 'कथित पदता' तो ढूँढने पर भी नहीं मिलती। सर्वत्र नवीन पदविन्यास, नवीन भावाभिव्यक्ति, सुन्दर भाव भंगी आलोचकों के हृदयों में विस्मयावह भय का संचार करती है।

वास्तव में बाण के गद्य में सूक्ष्म निरीक्षण शक्ति, चमत्कृत वर्णनप्रणाली, अपार शब्दराशि और कल्पनाजन्य मौलिक अर्थों की उद्भावना विशेष रूप से प्राप्त होती है।

सर्वदेव के पुत्र और शोभन के भाई धनपाल ने बाण का अनुकरण किया है, इन्होंने तिलकमंजरी की रचना नायिका के नाम पर की है। इस में समरकेतु के प्रति तिलकमंजरी के प्रेम का चित्रण है। उन्होंने कादम्बरी के सदृश अधिकाधिक चित्र अंकित करने का प्रयास किया है, पर उस ऊँचाई तक नहीं पहुँच सके जहाँ बाण पहुँचे हैं।

कादम्बरी से प्रतिस्पर्द्धा करने वाले दूसरे जैन कवि ओडयदेव हैं। पर बाण की समता कोई भी नहीं कर सका। बाण से कोई भी क्षेत्र अछूता नहीं रहा। यही कारण है कि बाण की होड़ करने के लिए जिन गद्यकारों ने प्रयास किया वे इतना आदर प्राप्त न कर सके। उन कवियों तथा गद्यकारों में बाण जैसी प्रवाहमय शैली और वर्णन पटुता का अभाव था। इसी हेतु गद्य के बीच में पद्य रचना करने की प्रणाली चल पड़ी। बाद के चम्पू काव्यों में पद्यों का कलेवर गद्य से बढ़ गया। बाण का उच्छिष्ट पाकर ही सब ने सन्तोष किया। अतः किसी सहृदय आलोचक का सकल काव्य विषय, समस्त अभिव्यंजना पक्ष और भाव को बाण उच्छिष्ट घोषित करना अक्षरशः सत्य है—' **बाणोच्छिष्टं जगत्सर्वम्** '।

: ४ :

कादम्बरी के पात्र

महाकवि बाण द्वारा रचित कादम्बरी एक अनुपम कथाकाव्य है। इस कथाकाव्य का रसास्वादन तब तक अपूर्ण है जब तक इनके पात्रों का सम्यक् अध्ययन न किया जाए। यह कथाकाव्य केवल साधारण मनोरंजक कथा को ही प्रस्तुत नहीं करता अपितु लेखक के महान् उद्देश्य को भी सामने रखता है। इसी उद्देश्य की पूर्ति इस कथा के पात्र करते हैं। यही कारण है कि कादम्बरी के प्रमुख पात्र साधारण पात्र न होकर आध्यात्मिक प्रतीक भी हैं। महाश्वेता प्रज्ञा का प्रतीक, कादम्बरी कामतत्व का प्रतीक, पुंडरीक महापद्म या सहस्रदल कमल है जो सूर्य या विज्ञान तत्व का प्रतीक है।

इस कथा-काव्य के बड़े से लेकर छोटे पात्रों की संख्या ४० से ऊपर हो जाती है, परन्तु कथानक में महत्व की दृष्टि से इन पात्रों को प्रमुख रूप से तीन वर्गों में रखा जा सकता है। प्रथम वर्ग में वे पात्र आते हैं जो प्रमुख रूप से लेखक के उद्देश्य की पूर्ति के साधन हैं। इसमें चन्द्रापीड़, कादम्बरी, वैशम्पायन तथा महाश्वेता आते हैं। दूसरे वर्ग के पात्र प्रथम वर्ग के पात्रों के उद्देश्य की पूर्ति में सहायक सिद्ध होते हैं। इस वर्ग में कपिंजल, पत्रलेखा, हारीत, जाबालिमुनि, श्वेतकेतु, केयूरक, मदलेखा तथा तरलिका आते हैं। शेष सभी पात्र तृतीय वर्ग में आते हैं। ये सभी पात्र मर्त्यलोक के नहीं। इन में से कुछ चन्द्रलोक के हैं और कुछ गन्धर्व लोक के। कुछ दिव्यलोक के हैं तो कुछ मर्त्यलोक के। चन्द्रापीड़ चन्द्रमा का अवतार होने के नाते चन्द्रलोक का है। महाश्वेता तथा कादम्बरी, उनके माता-पिता सहचर एवं सेवकगण गन्धर्व लोक के प्राणी हैं। श्वेतकेतु, कपिंजल एवं पुण्डरीकाख्य वैशम्पायन दिव्यलोक के प्राणी हैं। लेखक ने अपनी कला चातुरी से इनका पारस्परिक सम्बन्ध इतना घनिष्ट बना दिया है कि उन का उक्त विभेद मानों समाप्त हो गया है। दिव्यलोक, चन्द्रलोक और गन्धर्व लोक के प्राणियों में मानव सुलभ दुर्बलताओं का अंकन करके लेखक ने बड़ी कुशलता से उन्हें इस लोक के प्राणियों का सा रूप दे दिया है। परिणामतः उनके जीवन में किसी प्रकार की अस्वाभाविकता नहीं आ पायी।

आधुनिक युग में वैज्ञानिक दृष्टि से देखने पर कुछ पात्रों के जीवन की घटनाएँ

असम्भव प्रतीत होती हैं परन्तु जब हम पुनर्जन्म के सिद्धांत को देखते हैं तो वे ही घटनाएँ कुछ सीमा तक स्वाभाविक प्रतीत होने लगती हैं। पुंडरीक के शाप वश चन्द्रमा को चन्द्रापीड़ के रूप में अवतरण करना पड़ता है और यही चन्द्रापीड़ राजा शूद्रक का रूप धारण करता है। शाप की अवधि समाप्त होने पर पुनः चन्द्रापीड का रूप धारण करता है मूल रूप चन्द्रमा का नहीं। इसके विपरीत कादम्बरी का जन्मान्तर नहीं होता। ऐसा होने पर भी कादम्बरी और चन्द्रापीड की अवस्था में कोई भेद नहीं बताया गया। पात्रों के चित्रण में अधिक स्वाभाविकता उत्पन्न करने के लिए कादम्बरी का भी जन्मान्तर दिखा कर चन्द्रापीड और कादम्बरी का पुनर्मिलन करना अधिक स्वाभाविक बन पड़ता। इसी प्रकार पुंडरीक वैशम्पायन का रूप धारण करता है और पुनः वैशम्पायनाख्य तोता बनता है परन्तु महाश्वेता अपने उसी जन्म में पुंडरीक का समागम करती है। वैज्ञानिक दृष्टि से ये सब असम्भव है अतः अनुचित है परन्तु यदि हम अवतारवाद को, शाप के फल को, पुनर्जन्म को तथा ऋषि महर्षियों की अलौकिक शक्ति को स्वीकार करें तो इस सम्बन्ध में हमें कुछ भी नहीं कहना। 'संस्कृत साहित्य का इतिहास' में ए० बी० कीथ ने इस सम्बन्ध में लिखा है—'वास्तव में, यह एक विचित्र कहानी है और उन लोगों के प्रति जिनको पुनर्जन्म में अथवा इस मर्त्य जीवन के अनन्तर पुनर्मिलन में भी विश्वास नहीं है, इनकी प्ररोचना गम्भीर रूप से अवश्य ही कम हो जानी चाहिए। इनकी यह सारी कथा 'निकम्मी नहीं' तो, असंगत अद्भुत कथा के रूप में ही प्रतीत होती है जिसके आकर्षण से हीन पात्र एक अवास्तविक वातावरण में ही रहते हैं परन्तु भारतीय विश्वास की दृष्टि से वस्तु-स्थिति बिल्कुल भिन्न है। कथा को हम औचित्य के साथ मानवीय प्रेम की कोमलता, दैवी आश्वासन की कृपा, मृत्यु जनित शोक और कारुण्य और प्रेम के प्रति अविचल सच्चाई के परिणाम स्वरूप मृत्यु के पश्चात् पुनर्मिलन की स्थिर आशा से परिपूर्ण मान सकते हैं।'

कादम्बरी के सभी पात्र स्थिर चरित्र वाले हैं। आद्योपान्त सभी का चरित्र एक जैसा रहता है। विभिन्न परिस्थितियों में कोई भी परिवर्तन नहीं आता। वैशम्पायन में सभीगुण हैं पर कामुकता उसके अन्दर जन्म से लेकर अन्त तक वैसी की वैसी बनी रही। वैशम्पायन का जन्म लक्ष्मी के कामरागात्मक मोहमय अलक्षशक्ति स्त्रीबीर्य से हुआ। यही कारण है कि पुंडरीक के रूप में कामवशता उसके प्राणों की घातक बनी। यही नहीं वैशम्पायन के रूप में यही काम प्रवृत्ति शाप का कारण बनी और तृतीय स्थान में तोते के रूप में भी कामपरायणता ने ही उसे पिता की आज्ञा का उल्लंघन करके महाश्वेता के मिलन के लिए तत्पर किया। इसी प्रकार चन्द्रापीड़ की धैर्यप्रवृत्ति आद्योपान्त बनी रही। कादम्बरी को मिलकर वैशम्पायन की तरह वह सभी कार्यों को

तिलांजिली देकर कादम्बरी के सम्पर्क में नहीं बना रहा, प्रत्युत अपने पिता की आज्ञा को शिरोधार्य कर कादम्बरी को मिले बिना ही उज्जैन आ गया। पत्रलेखा तथा केयूरक द्वारा कादम्बरी की विरह व्याकुल अवस्था का ज्ञान प्राप्त करके भी धैर्य से कार्य लेता है। महाश्वेता के पास पहुँचकर वैशम्पायन की दुःखद घटना से अवगत होकर कादम्बरी को मिलने की चिन्ता न करते हुए प्राण विसर्जन करता है। इस प्रकार चन्द्रापीड़ का कादम्बरी के लिए प्रेम आद्योपान्त धैर्य समन्वित रहा है पर वैशम्पायन अपने तीनों रूपों में अपनी प्रियतमा के सामीप्य को प्राप्त करने के लिए बड़ी व्याकुलता, व्यग्रता एवं अधैर्य से कार्य लेता है। यही नहीं, राजा तारापीड एवं रानी विलासवती अनपत्यता में पुत्र लाभ के लिए अधिक व्याकुल रहे जबकि उनका मन्त्री शुकनास और उसकी सहधर्मिणी मनोरमा ने अनपत्यता की अवस्था में बड़े धैर्य से कार्य लिया है। यही कारण है कि चन्द्रापीड़ का निधन सुन राजा तारापीड़ एवं विलासवती की जो अवस्था हुई वह मन्त्री शुकनास और मनोरमा की नहीं हुई। अतः स्पष्ट है कि लेखक ने अपने काव्य में जिन पात्रों को स्थान दिया है, उनके गुण आद्योपान्त एक जैसे रहे। हाँ, कादम्बरी के जीवन में एक स्थान पर परिस्थितिवश स्खलन अवश्य आया। महाश्वेता की दुःखद अवस्था को देखकर कादम्बरी ने भी तब तक कुमारी रहने का प्रण किया था जब तक महाश्वेता के जीवन में सुख का पदार्पण न हो। तभी तो उसने महाश्वेता को तरलिका के हाथ प्रत्युत्तर देते हुए कहा—"यत्र भर्तृविरहविधुरा परिहृत परपुरुषदर्शना दिवानिशं निवसति प्रियसखी, कथमिव तन्मम हृदयमपरः प्रविशेज्जनः। यत्र च भर्तृ-विरहविधुरा व्रतकर्शितांगी प्रियसखी महत्कृच्छ्रमनुभवति तत्राहमवगण्यंतत्कथमात्म-सुखार्थिनी पाणिं ग्राहिष्यामि।" परन्तु चन्द्रापीड़ को देखकर वह संयम न रख सकी। उसने चन्द्रापीड़ को अपनी नगरी में स्थान दिया, उसे भेंट भेजी एवं स्वयं लिखकर तथा उसे अपने पास निमन्त्रित कर प्रणय पुरस्सर सुखानुभूत किया। यहाँ तक कि चन्द्रापीड़ के स्वदेश गमन पर वह अत्यधिक उत्पीड़ित हुई। परिणामतः पत्रलेखा एवं केयूरक के हाथ चन्द्रापीड़ को पुनरागमन के लिए सन्देश भी भेजा। यही नहीं अच्छोदसर पर चन्द्रापीड़ के आगमन को सुनकर सुरत-व्यापार सम्बन्धी सभी सामग्री को साथ लेकर आयी—

"पत्रलेखानिवेदितचन्द्रापीड़ागमना चन्द्रोदयोल्लासिनी वेलेव महोदधेः समकरध्वजा व्याजीकृत्य महाश्वेतादर्शनं मातापित्रोः पुरः प्रतिपन्न शृंगारवेषाभरणा रणन्नूपुरयुगेन मुखरमेखला दाम्ना रम्योज्ज्वलाकल्पेन कल्पितानंगबलविभ्रान्तिना गृहीतसुरभिमाल्या-नुलेपनपटवासाद्युपकरणेन नातिबहुना परिजनेनानुगम्यमाना पुरः केयूरकेणोपदिश्यमान-

मार्गा पत्रलेखाहस्तालम्बिनी मदलेखया सहकृतालापा 'मदलेखे' पत्रलेखा कथयति प्रत्यहमहं पुनस्तस्मैएकान्तनिष्ठुरहृदयस्य शठयतेनिर्धणमनसो निस्पृहागमनेन न श्रद्दधे ।''

महाकवि बाण ने पात्रों का चयन बड़ी निपुणता के साथ किया है। उन्होंने प्रत्येक पात्र को युग्म के रूप में प्रस्तुत किया है। इन पात्र युग्मों में गुणों, लक्ष्यों एवं कृत्यों की समानता होते हुए वैयक्तिकता को बनाए रखने में कवि को बड़ी सफलता प्राप्त हुई। महाश्वेता एवं कादम्बरी दोनों ही गन्धर्व कन्याएँ हैं, दोनों ही अपने प्रिय सहधर्मियों के समागम के लिए तपश्चर्या करती हुई घोर कष्ट का अनुभव करती हैं फिर भी महाश्वेता और कादम्बरी के आचरण में बड़ा भेद है। महाश्वेता के चरित्र में जो धैर्य है वह कादम्बरी में नहीं। कादम्बरी महाश्वेता को दिए वचनों पर टिक नहीं सकी जबकि महाश्वेता के जीवन में ऐसी कोई घटना नहीं आई। राजा तारापीड़ एवं रानी विलासवती, मन्त्री शुकनास एवं मन्त्री-पत्नी मनोरमा अनपत्यता के कारण अत्याधिक दुःखी एवं उत्पीड़ित हुए परन्तु राजा तारापीड़ एवं विलासवती की तरह उन्होंने धैर्य का त्याग नहीं किया। चन्द्रापीड़ की मृत्यु का समाचार प्राप्त कर तारापीड़ एवं विलासवती अधिक दुःखी हुए परन्तु वैशम्पायन के निधन का समाचार सुन शुकनास एवं मनोरमा ने बड़े धैर्य का प्रमाण दिया।

महाकवि बाण ने राजा तारापीड एवं मन्त्री शुकनास को ही युग्म रूप में प्रस्तुत नहीं किया, उन्होंने राजा तारापीड़ को राजा शूद्रक के साथ भी युग्म सम्बन्ध में बद्ध किया है। इन दोनों राजाओं के गुणों में पारस्परिक समता है, फिर भी इनकी वैयक्तिकता को बनाए रखने के लिए महाकवि ने सफल प्रयत्न किया है। राजा शूद्रक स्त्री पराङ्मुख है, जबकि राजा तारापीड़ स्त्रियों में रमण करने से आनन्द प्राप्त करता है। यही नहीं महाकवि ने सेवक एवं सेविकाओं के रूप में पात्र युग्मता का विस्मरण नहीं किया। चन्द्रापीड़ की सेविका यदि पत्रलेखा है तो मदलेखा ने भी कादम्बरी की सेवा करने से पूर्ण दत्तचित्तता से कार्य किया। इन दोनों की चारित्रिक विशेषताओं में भी भेद है। पत्रलेखा अरुन्धती का अवतार है। इन्द्रायुध के साथ अच्छोदसर में प्राण विसर्जन करने के उपरान्त वह दिव्यलोक में चली गई, परन्तु मदलेखा अपनी स्वामिनी की सहचारिणी बनी रही। इस प्रकार महाश्वेता की आज्ञाकारिणी तरलिका है परन्तु इसकी तुलना में पुण्डरीकाक्ष वैशम्पायन का सहचर कपिंजल है। पुंडरीक एक तपस्वी है अतः उसके सहचर का स्त्री की अपेक्षा पुरुष होना ही अभीष्ट था। इधर चन्द्रापीड़ का सन्देशवाहक बलाहक बनता है तो इधर कादम्बरी का सन्देश वाहक केयूरक है। बलाहक केवल सन्देशवाहक ही नहीं, सेनापति भी है।

महाकवि बाण के पात्रों की एक और विशेषता यह है कि वे या तो पूर्णतया सर्वगुण सम्पन्न हैं या अवगुणों से युक्त हैं। जब कभी महाकवि बाण राजाओं, ऋषियों

महर्षियों का वर्णन करते हैं तब ऐसा प्रतीत होता है कि महाकवि बाण ने मानो संसार के सभी गुणों को उन पात्रों के बीच में दिखाने की होड़ लगा दी है। ऐसा करते हुए वे स्वाभाविकता की सीमा को भी लाँघ जाते हैं। संसार में सभी राजा एक जैसे हों, ऐसा देखने में कम आता है, पर महाकवि बाण के राजा तारापीड़ में वही गुण हैं जो युवराज चन्द्रापीड़ में हैं और जो राजा शूद्रक में हैं। ऐसा करते हुए राजाओं आदि का वैयक्तिक अस्तित्व पर्याप्त मात्रा में विलीन हो जाता है।

यही नहीं महाकवि बाण ने पात्रों के चारित्रिक गुणों पर अधिक बल डालने के लिए एक ही गुण की विभिन्न शब्दावली में अनेकशः पुनरावृत्ति की है। ऐसा करने से ग्रन्थ का शरीर तो बढ़ता है पर वर्णन के अधिक लम्बा होने के कारण अरोचकता भी कुछ सीमा तक उत्पन्न हो जाती है। उदाहरण स्वरूप जाबालि मुनि के त्रिकालदर्शी होने के गुण का वर्णन लेखक ने चार पंक्तियों में किया है। देखिए—स हि भगवान्-कालत्रयदर्शी तपः प्रभावाद्दिव्येन चक्षुषा सर्वमेव करतलगतमिव जगदवलोकयति। वेत्ति जन्मान्तराण्यतीतानि कथयत्यागामिनमप्यर्थम्। ईक्षणगोचरगतानां च प्राणिनामायुषः संख्यामेवदयति।"

दूसरी ओर दोषी पात्रों का वर्णन करते हुए महाकवि को सभी दोष ही दृष्टिगत हुए हैं, गुण नहीं। चंडिका के मन्दिर में बूढ़े द्रविड़धार्मिक का वर्णन ऐसा ही है। जाबालि ऋषि उत्तम गुणों से सम्पन्न हैं परन्तु जहाँ चंडिका को प्रसन्न करने के लिए नित्य पशु-बलि दी जाती है ऐसे चंडिका के मन्दिर में बैठे द्रविड़धार्मिक का कितना भयंकर चित्र महाकवि बाण ने खींचा है यह निम्नलिखित कुछ पंक्तियों से अवगत हो जाता है—

"स्थूलस्थूलैः शिराजालकैर्घोणागोलिकाकृकलासकुलैरिव दग्धस्थाण्वाशङ्कया समारूढैर्गवाक्षितेन, अलक्ष्मीसमुत्खातलक्षणस्थानैरिव विस्फोटकव्रणबिन्दुभिः कल्माषितसकलशरीरेण कर्णावतंससंस्थापितया च चूडया रुद्राक्षमालिकामिव दधानेन........ कुवादिदत्तसिद्धांजनदानस्फोटितैकलोचनतया.........दिवसमेव मशककवलितानुकारिकिमपि कम्पितोत्तमाङ्गं गायता.........गृहीततुरगब्रह्मचर्यतयान्यदेशागतोषितासु जरत्प्रव्रजितासु बहुकृत्वः संप्रयुक्तस्त्रीवशीकरण चूर्णेन.........जरद्द्रविड़धार्मिकेणाधिष्ठितां चंडिकामपश्यत्।" चरित्र-चित्रण के इस दोष पर प्रकाश डालते हुए 'History of Sanskrit Literature' में S. N. Dass Gupta—तथा S. K. De ने लिखा है—It cannot be denied that those old romancers are not always good at assessing the fine shades of human conduct, they see life as an affair in which black is black,

and white is white, black and white seldom merge in dubious grey....."

महाकवि बाण के चरित्र चित्रण की एक और महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि उन्होंने प्रत्येक व्यक्ति का बड़ी सूक्ष्मतापूर्ण अध्ययन किया है। उन्होंने प्रत्येक पात्र के नख शिख का वर्णन करते हुए उनकी वेशभूषा का भी वर्णन किया है। ऐसा करते हुए उन्होंने प्रत्येक पात्र को पृथक अस्तित्व प्रदान कर इहलोक का सजीव पात्र बना दिया। राजा शूद्रक, राजा तारापीड़, महर्षि जाबालि, द्रविडधार्मिक, भील आदियों का वर्णन इस बात का उदाहरण है। महर्षि जाबालि और द्रविडधार्मिक का वर्णन पढ़ते ही उनका पारस्परिक विभेद पूर्णतया स्पष्ट हो जाता है। शबर सेनापति का वर्णन अधिक स्वाभाविक एवं सजीव बन पड़ा है। शबर सेनापति के विवरण से उसके आकार, विचार, वेषभूषा, कार्य आदि सभी का ज्ञान हो जाता है। यह बात दूसरी है कि महाकवि वर्णन विस्तार के मोह में सीमा को भी लांघ जाते हैं परन्तु इस बात को हम अस्वीकार नहीं कर सकते कि ऐसे वर्णनों में लेखक स्वाभाविकता एवं सजीवता उत्पन्न कर देता है, पात्रों में प्राण डाल देता है। Sh. S. N. Das Gupta तथा Sh. S. K. De. ने अपनी पुस्तक 'History of Sanskrit Literature' में लिखा है—"But making allowance for aberrations inevitable in a rich and exuberant talent, it must be said that Bana's power of Characterisation, delineation of sentiment is not entirely divorced from reality."

———

: ५ :

बाण कालीन समाज और संस्कृति

मानव के माध्यम से संस्कृति समाज में रूपायित होती है। मानव-मन की प्रवृत्तियों, रुचियों, शक्तियों, गुणों आदि पर उन की जीवन-पद्धति तथा क्रिया-कलाप आधारित होते हैं। समाज में प्रचलित रीति-रिवाज, परम्पराएं, मान्यताएँ तथा जीवन के मूल्य चाहे वे किसी भी कलाकृति के माध्यम से अभिव्यक्ति पावें, युग विशेष के समाज का सांस्कृतिक रूप प्रस्तुत करते हैं। अमूर्त संस्कृति के उपादानों तथा सामाजिक अवस्था को जानने का सर्वोत्तम साधन उस युग का साहित्य ही होता है। और यदि साहित्यकार की सूक्ष्मेक्षिणी दृष्टि समाज के बाह्यावरण को चीर कर न केवल उस के अस्पष्ट परन्तु महत्त्वपूर्ण तथ्यों तक पहुँच जाती है, तथा उस का मनोवैज्ञानिक मन विभिन्न स्तरों, क्षेत्रों व अवस्थाओं के मानव-मन के अन्तर्भावों को भी जानने और चित्रित करने में समर्थ है, तब तो कहना ही क्या ? बाण की सूक्ष्म दृष्टि का परिचय न केवल प्रत्येक पात्र की वेश-भूषा के चित्रण में ही मिलता है, अपितु मानव-मन के अन्तर्भावों को भी सशक्त साहित्यिक अभिव्यक्ति प्रदान करता है इसी लिए वे अनायास ही उत्कृष्ट साहित्यकारों की कोटि में आ बैठे। न केवल ऐतिहासिक, अपितु सामाजिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि से हर्षचरित अपने युग का जैसा चित्र उपस्थित करता है, वैसा अन्य प्राचीन-काव्यों में कम ही देखने को मिलता है। यही कारण है कि उस युग का सांस्कृतिक इतिहास प्रस्तुत करने के लिए इतिहासकारों को हर्षचरित से अच्छा साधन तथा आधार न मिल सका। इस छोटे से लेख में उस युग के समाज और संस्कृति का सर्वांगीण परिचय मात्र ही प्रस्तुत किया जा सकेगा।

शोण के तटवर्ती प्रदेश प्रीतिकूट में जन्म लेने वाले श्रीकंठ जनपद की राजधानी स्थाणीश्वर में—वहाँ नृप श्रीहर्ष के पास कुछ समय तक रहने वाले बाण का भौगोलिक ज्ञान केवल इन प्रदेशों तक ही सीमित न था। हर्ष के साम्राज्य का विस्तार होने के कारण उसे सम्पूर्ण उत्तरापथ का भी बोध था, जिसका उल्लेख उस ने हर्षचरित में स्थान-स्थान पर किया है। कादम्बरी में विन्ध्याचल, विन्ध्याटवी और उसे पार कर दण्डकारण्य का चित्र प्रस्तुत करने में भी वह नहीं चूका। परम्परागत ज्ञान से न केवल उस ने गंगा और सरस्वती की पवित्रता का उल्लेख किया है, अपितु तब तक

प्रचलित भारत के समीपस्थ अठारह द्वीपों की और भी दो, तीन स्थानों पर संकेत किया है। उज्जयिनी का व्यापक-चित्रण तो साहित्यकार की उस से घनिष्ठता का परिचायक है, चाहे वह साहित्य के माध्यम से ही क्यों न हो? हर्ष के समय तक भारतवर्ष एक इकाई के रूप में प्रख्यात हो चुका था, यह भी बाण के वर्णन से ज्ञात होता है। कुल मिलाकर कहा जा सकता है, कि यातायात के साधनों के अभाव में अपने भ्रमणशील जीवन में बाण स्वत: चाहे बहुत दूर तक न घूमा हो, लेकिन उसे भारत में प्रकृति के विभिन्न रूपों के विकास का बहुतायत से बोध था, जिसका परिचय अन्यत्र देखने को मिलेगा।

यदि इतिहास केवल तिथियों का लेखा-जोखा नहीं है, तो हर्षकालीन इतिहास का जो विवरण हमें हर्षचरित से उपलब्ध होता है, उस के महत्व को भुलाया नहीं जा सकता। श्रीकंठ जनपद के राज्य का विस्तार करने वाले हर्ष के पिता प्रभाकर वर्धन थे। वह न केवल 'हूणहरिणकेसरी' (हूण रूपी हिरणों के लिए सिंह) था, लेकिन 'सिंधुराजज्वरो' (सिन्धु के राजा के लिए ज्वर) भी था। गुर्जर, गांधार, लाट और मालव देश भी उस के प्रभाव से आतंकित थे। यह ऐतिहासिक तथ्य है कि प्रभाकर वर्धन ने अपने छोटे से राज्य का विस्तार किया था, इसी से आस-पास के अन्य राजा उस की शक्ति की महत्ता को स्वीकार करते थे। राज्यवर्धन, श्रीहर्ष तथा राज्यश्री उन की तीन सन्तानें हुईं। कन्नौज के मौखरि-राजा ग्रहवर्मा से राज्यश्री का विवाह एक अन्य महत्वपूर्ण ऐतिहासिक घटना है। हूणों के आक्रमण को रोकने के लिए राज्यवर्धन गए थे और उन का अनुसरण करते हुए हर्ष भी गए थे, पर वे पिता की बीमारी का समाचार पाकर जल्दी लौट आए। हूणों को जीतने के प्रयत्न में राज्यवर्धन जो युद्ध कर रहे थे, उस से 'शरव्रणबद्धपट्टकैः' (घावों पर पट्टियाँ बाँध कर) वे जब लौटे तो महाराज की मृत्यु हो चुकी थी। मन ही मन हर्ष का यह भय कि पिता की मृत्यु को सुन कर पुरुषसिंह राज्यवर्धन (**न गृह्णीयाद्वल्कले नाश्रयेद्वा राजर्षिराश्रमपदं न विशेद्वा पुरुषसिहोगिरिगुहाम्**) वल्कल न ग्रहण कर ले अथवा ऋषि आश्रम का आश्रय न ले ले अथवा गिरि गुफा में न बैठ जावे तथा हर्ष के द्वारा उस का स्वागत और पुन: क्षत-विक्षत, शोकाभिभूत राज्यवर्धन द्वारा भी सभा में स्वत: शस्त्र और राज्य त्याग का सन्देश इस बात के प्रमाण हैं कि हर्ष ने बड़े भाई से राज्य छीना नहीं। यह त्याग भारतीय इतिहास का एक स्वर्णिम पृष्ठ है। इतना ही नहीं, उसी समय जब दुष्ट मालवाधिपति द्वारा महाराज ग्रहवर्मा की मृत्यु तथा राज्यश्री को कैद करने का वृत्तान्त सुना तो पुन: हर्ष को राजधानी में छोड़कर वह उसे जीतने और राज्यश्री को वापिस लेने निकल पड़ा। राज्यवर्धन ने मालव-नरेश को तो आसानी से ही पराजित कर दिया, लेकिन गौड़-नृप के औपचारिक सम्मान से उस पर विश्वास करने के कारण निहत्था

वह उसी के द्वारा एकान्त में मार दिया गया। (**मुक्तशस्त्रं एकाकिनं विस्रब्धं स्वमवने व्यापादितमश्रौषीत्**।) तब क्रोधित हर्ष उससे बदला लेने और राज्यश्री को ढूंढने निकला। सम्भवत: गौड़-नृप (शंशाक ?) हर्ष से डर कर स्वत: ही लौट गया और किसी प्रकार बन्दीगृह से छूट कर राज्यश्री भी विन्ध्याटवी में चली गई। बौद्ध भिक्षु दिवाकर मित्र के शिष्य द्वारा उसे राज्यश्री का पता लग गया और उस से मिलन हो गया। '**सिंधुराजं प्रमथ्य**' सिंधुराज को जीत कर भी हर्ष ने अपने राज्य में मिलाया था और पर्वतीय राजाओं से भी वह कर लेता था। तथ्यात्मक दृष्टि से ऊपरलिखित घटनाएँ उस युग के राजनैतिक इतिहास का स्वरूप स्पष्ट करती हैं और इस कृति में उपलब्ध राजकुल तथा जन सामान्य नगर और ग्राम, समाज और व्यक्ति, स्त्री और पुरुष सभी के चित्र तत्कालीन सामाजिक और सांस्कृतिक अवस्था का व्यापक चित्रण उपस्थित कर युग के इतिहास को पूरा कर देते हैं।

बाण ने समाज के विभिन्न स्तरों का उल्लेख अपनी कृतियों में किया है। उस युग में ब्राह्मणों का प्रमुख स्थान था, मुख्य मंत्री से लेकर कंचुकी तक राज्य के सभी विश्वस्त पदों पर वे ही आसीन थे। दूसरी ओर शिक्षक, गुरु और ऋषि आश्रमों के आचार्य होने के कारण भी समाज में उनका विशेष आदर था। सम्भवत: समाज में ब्राह्मणों के इस सम्मान्य स्थान के कारण ही बाण को कहना पड़ा—'**असंस्कृतमतयोपि जात्येव द्विजन्मानो माननीया**' असंस्कृत बुद्धि वाले भी जन्म से ब्राह्मण होने के कारण आदरणीय हैं। द्वितीय उच्छ्वास के आरम्भ में जब बाण लौटकर घर आया, तो वहाँ उसने ब्राह्मण-गृह का जो चित्र खींचा है, उससे उनके क्रिया-कलापों पर बहुत कुछ प्रकाश पड़ता है। अध्ययन-अध्यापन उनका परम्परागत प्रमुख कार्य है, इसलिए '**अनवरताध्ययनध्वनिमुखर**' निरन्तर अध्ययन में लगे हुए ध्वनि करते हुए शिष्यों के दर्शन होते हैं। इन शिष्यों में बालक-बालिकाएँ दोनों ही थे। मस्तक को त्रिपुण्ड भस्म से उज्ज्वल कर सोम यज्ञ के लोभी वटु भी वहाँ उपस्थित थे। इससे स्पष्ट है कि ब्राह्मणों के घरों में अध्यापन के साथ साथ यज्ञ करने की विधि भी बताई जाती थी। उपयुक्त सामग्री को साधन बनाकर आंगन में वेदी का भी निर्माण किया जाता था। कभी कभी शुकसारिकाएँ यह अध्यापन का कार्य करके गुरुओं को विश्राम का अवसर प्रदान करती थीं। बाण स्वत: ब्राह्मण वंश-परम्परा में हुआ था, उस के उचित ही उसका अपना घर भी था। और गाँव में ही सम्भवत: व्याकरण, न्याय, मीमांसा, काव्य और वेद पाठ का अध्ययन-अध्यापन भी होता था। जीवन के अन्यान्य क्षेत्रों से सम्बन्ध रखने वाली उसकी मित्र-मण्डली को देखने से उसकी बहुविध रुचियों का परिचय मिलता है। गुरुकुल एवं ऋषि आश्रम में शिक्षा पाने से, विद्वन्मण्डली, कलावंतों तथा राजकुल के परिचय में आने से उसका चतुर्विध ज्ञान एवं व्यापक अनुभव ही उसकी कृतियों के

माध्यम से साकार हुआ। उस युग का ब्राह्मण युवक एक सीमा विशेष में ही आबद्ध न था, अपितु बाण की तरह इत्वर (अवारा) भी हो जाता था। क्षत्रियों का अलग से कोई वर्णन नहीं किया गया है, लेकिन कहीं कहीं सैनिकों के चित्र देखने को मिलते हैं, सम्भवतः यह क्षत्रिय सैनिकों के ही हों। वे लाल रंग का कंचुक या छोटी कुर्ती कस कर पहने हुए होते थे। उत्तरीय की छोटी-सी पगड़ी सिर पर बाँधी हुई थी तथा 'अनवरत व्यायामकृशकर्कशशरीरेण' लगातार व्यायाम करने से गंठे हुए शरीर वाले होते थे। इनके पास तलवार या छोटी छुरी भी होती थी। उस युग के राजा प्रायः क्षत्रिय न होकर वैश्य थे, हर्ष भी इसके अपवाद न थे। उनमें वैश्यवृत्ति का विकास न होकर क्षत्रिय राजकुमार के उपयुक्त गुणों का विकास हुआ था। राजकुमारवत् उन्होंने सभी विद्याओं के साथ साथ शस्त्र-विद्या का अभ्यास कर उस में भी विशेष निपुणता प्राप्त की थी। सम्भवतः इसीलिए भाई के हंता गौड़ाधिप को मारने की उन्होंने प्रतिज्ञा भी की थी। क्षत्रिय राजा के उपयुक्त सभी सात्विक एवं ऐश्वर्यशाली गुणों का उस में विकास हुआ था। ब्राह्मणों से प्रभावित होने के कारण न केवल वह कवि और विद्वानों का आदर करने वाला और मित्र ही बन गया था, अपितु स्वतः भी नाटककार था। आरम्भिक छह वर्षों में उसने युद्ध कर शत्रुओं का नाश किया और अगले तीस वर्षों में राज्य को साम्राज्य में परिणत किया तथा सुख, शांति और समृद्धि का प्रसार किया। उस युग में अस्पृश्य न हों, ऐसी बात नहीं, लेकिन बाण के वर्णनों में इसका बहुतायत से उल्लेख नहीं मिलता। हाँ! कादम्बरी में राजा शूद्रक के पास शुक को लाने वाली चाण्डाल कन्या के विषय में उसने अवश्य कहा है—'अमूर्तामिव स्पर्शवर्जितामालेख्यगतामिव दर्शनमात्रफलम्' स्पर्शवर्जित अर्थात् अछूत चित्रलिखित की तरह चाण्डाल कन्या—जिसे केवल देखा जा सकता था और छू नहीं सकते थे। इससे स्पष्ट है, कि वर्ण-व्यवस्था की यह अस्पृश्यता भी समाज में किसी न किसी रूप में प्रचलित थी।

ब्रह्मचर्याश्रम का उस युग में भी विशेष महत्त्व था। यद्यपि नालन्दा का उल्लेख बाण की कृतियों में उपलब्ध नहीं, तो भी इतिहासकारों का मत है, कि यह उस युग की प्रधान शिक्षा संस्था थी। जो भी हो, इतना अवश्य है, कि वह युग आश्रमों व गुरुकुलों का युग था। राज्यश्री को ढूंढते ढूंढते हर्ष दिवाकर मित्र के आश्रम में जा पहुँचता है। यह बौद्ध गुरु का आश्रम था। यहाँ न केवल दस शीलों का उपदेश दिया जाता था, अपितु जातक-कथाएँ भी सुनाई जाती थीं। इस प्रकार विद्याभ्यास और चरित्र का विकास साथ साथ चलता था। दिवाकर मित्र का उज्ज्वल चरित्र इस आश्रम की सफलता का मूल कारण कहा जा सकता है। कादम्बरी में दण्डकारण्य में अगस्त्य के आश्रम तथा जाबालि ऋषि के जिस आश्रम का उल्लेख है, उससे जीवित वैदिक परम्परा का बोध होता है। वहाँ कृष्णमृगसार निर्भय घूम रहे थे। वेदपाठी शिष्यों के साथ

मुनिगण समिधा, दर्भ, पुष्प आदि लेकर आ रहे थे। सिखाए हुए लंगूर बुड्ढे और अंधे तपस्वियों का हाथ पकड़ उन्हें इधर उधर ले जाते थे। कहीं यज्ञ हो रहे थे, कहीं मुनि ध्यान लगाए बैठे थे, तो कहीं योग का अभ्यास कर रहे थे। सम्भवतः उस युग में वैदिक और बौद्ध-शिक्षा के आश्रमों का अलग अलग विकास हो रहा था। इन आश्रमों के अतिरिक्त स्थाणीश्वर के आस पास विद्यार्थियों के गुरुकुल भी थे और ब्राह्मण-घरों की पाठशालाओं का अन्यत्र उल्लेख हो चुका है। ब्रह्मचर्याश्रम विभिन्न विद्याओं के अभ्यास तथा चरित्र के विकास का समय था।

गृहस्थाश्रम भारतीय जीवन पद्धति का मेरुदण्ड है। वैवाहिक परम्परा इसका आधार है, तो संतति फल-फूल। सात्त्विक प्रेम दाम्पत्य का मूल तत्त्व है। हर्ष के जन्म पर विकसित गृहस्थ के उल्लास का परिचय मिलता है। राज्य श्री का वर चुनना और ग्रहवर्मा से उसका विवाह नवीन गृहस्थ के महत्त्व को स्पष्ट करता है। भाई-बहिन के सम्बन्ध ने ही हर्ष को राज्यश्री को ढूँढने पर विवश कर दिया था। तारापीड़ की संतान प्राप्ति के लिए साधना तथा कुमार को विधिवत् शिक्षा देकर युवराज पद के उपयुक्त बनाना इसी भावना का प्रसार है। महाश्वेता और पुण्डरीक का प्रेम तथा कादम्बरी और चन्द्रापीड़ का विभिन्न काम-दशाओं में से गुजरना एक ही दिशा में प्रयाण है। राजकुल में गृहस्थ जीवन के विकास के अतिरिक्त ग्रामीण गृहस्थ के चित्र भी दर्शनीय हैं। जंगल के ग्रामीण लकड़ी काटने के लिए जाते समय घर का राशन छिपाकर बुड्ढों को रखवाली बिठा जाते थे। जहाँ कहीं उपज होती थी, वे पैदावार के बोझ को सिर पर लाद कर घर ले आते थे। घरों के आस-पास की भूमि पर सब्जियों की बेलें लगाई हुई थीं। दुर्लभ खाद्य पदार्थों को अवसर पाकर सुगृहिणियाँ संगृहीत कर लेती थीं। मद्य भी प्रायः इन घरों में रहता था। इस प्रकार राजकुल और वन-ग्राम के गृहस्थ जीवन का परिचय हमें अवश्य मिलता है, पर जन-सामान्य के गृहस्थ-चित्रों के बहुतायत से दर्शन नहीं होते।

चन्द्रापीड़ को राज्य सौंपकर राजा तारापीड़ का वानप्रस्थ आश्रम में प्रवेश, इस आश्रम के महत्त्व का परिचायक है। उपभोग के बाद त्याग की आवश्यकता है, प्रवृत्ति के बाद निवृत्ति की। राज्य वर्धन ने भी हर्ष को राज्य सौंप कर इस त्याग का ही परिचय दिया था। स्वतः हर्ष ने भी अन्यान्य प्रदेशों को जीत कर सभी को पूर्णतया अपने राज्य में न मिलाकर केवल कर लेने की व्यवस्था कर कई, राजाओं को उनके राज्य लौटा दिए थे। वानप्रस्थ के मूल में जो त्याग या निवृत्ति की भावना काम कर रही है, वही ऋषि-आश्रमों को भी उचित रूप से विकसित होने में सहायक सिद्ध होती है। और महाराज प्रभाकर-वर्धन की मृत्यु के बाद उनके कुछ सेवक, मित्र एवं मंत्री शोकाभिभूत होकर संसार का परित्याग कर पर्वतों पर चले गए थे,

(केचितगृहीतकाषाया:) वहाँ उन्होंने कपिलदर्शन शास्त्र का अध्ययन भी किया था। वानप्रस्थ और संन्यास आश्रम की परम्परा अभी एकदम समाप्त नहीं हुई थी और समाज में भी किसी न किसी प्रकार उसका महत्त्व बना ही हुआ था।

समाज के विभिन्न स्तरों के लोगों का परिचय पाने के लिए बाण की मित्र-मण्डली पर एक विहंगम दृष्टि डाल लेना ही पर्याप्त होगा। वारवाण और वासवाण नामक विद्वानों से उसका परिचय था। अपभ्रंश के प्रसिद्ध कवि ईशान, प्राकृत के लेखक वायुविकार, तथा गीतकार वेणीभारत बाण के साहित्यकार मित्र कहे जा सकते हैं। कथाकार जयसेन, पुराणपाठक सुदृष्टि तथा सुभाषित गायक बंदी जन अनंगबाण और सूचीबाण साहित्यिक वातावरण को बनाए रखने वाले मित्रों का एक अन्य समुदाय था। संगीतकारों में मृदंग बजाने वाला जीमूत, वंशी बजाने वाले मधुकर तथा पारावत तो थे ही, इन के साथ सोमिल और ग्रहादित्य गवैये भी थे। शिखंडक और तांडविक नर्तकों के साथ नर्तकी हरिणिका की उपस्थिति इस बात का प्रमाण है, कि केवल राज्य-दरबार में ही नर्तकियों का स्थान न था, अपितु जन-समाज में भी उन्हें मान्यता प्राप्त थी। चित्रकार वीरवर्मा और मिट्टी के खिलौने बनाने वाला कुमारदत्त भी उसके व्यवसायी कलाकार मित्रों में से कुछ थे। सोने के व्यापारी स्वर्णकार चामीकर तथा हैरिक सिन्धुषेण भी अवश्य ही सुन्दर आभूषणों का निर्माण करते रहे होंगे। भिषग् मंदारक और विषवैद्य मयूरक जहां औषधियों से लोगों का उपचार करते थे, वहाँ रसायनिक विहंगम और मंत्रसाधक कराल भी सामाजिक व्याधियों के प्रकोप को शांत करते थे। साधु सन्यासियों में से सभी सम्प्रदाय वालों से उसने अपना सम्बन्ध बनाया हुआ था। वेदांती सुमति और परिव्राजक ताम्रचूड़ के साथ साथ शैव वक्रघोण, जैन वीर-देव तथा बौद्ध भिक्षुणी चक्रवाकिका सभी उसकी मित्र-मण्डली के सदस्य थे। बहुत सम्भव है विधिवत शिक्षा प्राप्त कर बाण को इश्वर (आवारा) बनाने में जुआरी आखंडल, धूर्त भीमक तथा ऐन्द्रजालिक चकोराक्ष का ही हाथ रहा हो, क्योंकि चपल युवक बाण का इन से भी सम्बन्ध रहा था और इनका मनोरंजन या व्यवसाय पासा खेलना आदि ही था। समाज के निम्न-वर्ग के कुछ परिचरों को भी बाण ने अपने मित्र-वर्ग में सम्मिलित किया है उनमें ताम्बूलदायक चंडक, प्रसाधिका कुरंगिका तथा संवाहिका केरलिका विशेष हैं।

इससे जहाँ बाण की व्यापक रुचि और लोक-प्रियता का पता चलता है, वहाँ समाज के विभिन्न क्षेत्रों, रुचियों व व्यवसायों के व्यक्तियों से भी हमारा परिचय होता है। विभिन्न व्यवसाय होते हुए भी वैयक्तिक रुचि की समता मित्रता का आधार होती है। और बाण की मित्र-मण्डली में तीन, चार स्त्रियों का होना भी इस बात का प्रमाण है, कि समाज में स्त्री और पुरुष स्वतंत्रता-पूर्वक मिल सकते

थे। इन व्यवसायों के अतिरिक्त राजसेवकों का भी बाण ने उल्लेख किया है। न उनका स्वाभिमान रह जाता है और न स्वतंत्र व्यक्तित्व। अनावश्यक चापलूसी और खुशामद से ही उनका जीवन भार बना हुआ होता है। नौकरी में बार-बार उन्हें अवांछित एवं अनुपयुक्त कार्य भी करने पड़ते हैं। कीचड़ की तरह सबको नीचे ले जाना वाला दास शब्द बड़ा कठोर है। (**प्रबलपंक इव सर्वमधस्तान्नयति दारुणो दास शब्दः।**)

भारतीय संस्कृति को सामाजिक जीवन में अनुप्राणित करने वाले संस्कार हैं। इसीलिए यहाँ संस्कारों ने प्रायः उत्सवों का रूप धारण कर लिया है, क्योंकि उनका मनाना एक औपचारिकता-मात्र न होकर परिवार, और समाज में उसकी महत्ता और मान्यता को बनाए रखना है। और भारतीय जीवन पद्धति इन संस्कारों का ही ताना-बाना है।

प्रभाकर वर्धन का प्रातः, सायं आदित्यहृदयमंत्र का जाप संतान के लिए ही था। परिणाम स्वरूप यशोवती का गर्भाधान संस्कार हुआ। इस अवस्था में वह किस प्रकार सहेलियों का सहारा लेकर देव-वंदना के लिए जाती थी इसका बाण ने उल्लेख किया है। राज्यवर्धन के जन्म के समय यह उत्सव एक मास तक चला था। पुनः हर्ष के जन्म समय तारक ज्योतिषी ने उस के सम्राट होने के लक्षण घोषित कर दिए थे। एक ओर ब्राह्मणों ने वेद मंत्रों का गान आरम्भ कर दिया, तो दूसरी ओर शंख, दंदुभी आदि बहुत से मंगलवाद्य बजने लगे। राजकुल में स्तर या अवस्था विशेष का विचार छोड़कर नाच-गान प्रारम्भ हो गया। भद्र महिलाएं और वैश्यायें सभी समान रूप से विलास मग्न हो गईं। राज्य के सामान्य नियमों के बन्धन ढीले हो गये। अन्तःपुर में घुस जाना अपराध न रह गया और सभी जगह प्रतिहारियों का दबदबा कम हो गया। नगर में भी प्रसन्न होकर लोगों ने दुकानें लूट लीं, सम्भवतः यह मिठाई की दुकानें होंगी। नगर भर के लोग इस जन्मोत्सव पर नाचने में मग्न हो गए। (**प्रवृत्तसकलकटकलोकः पुत्रजन्ममहोत्सवो महान्।**) यह नाच-गाने का प्रोग्राम एक ही दिन नहीं, लगातार कई दिनों तक चलता रहा और पनिहारिनें, दासियाँ, सामन्त-स्त्रियाँ सभी एक साथ नाचने लगीं। कहीं कुट्टनियाँ नाचते नाचते सामंतों से लिपट गईं तो कहीं दासियाँ साधुओं से। इस प्रकार समाज के सभी स्तरों और अवस्थाओं के लोगों को आनन्द-मग्न देखते ही बनता है। राजा ने इस शुभ अवसर पर बन्दियों को मुक्त कर दिया (**मुक्तानि बन्धन बृन्दानि**)। यह प्रथा प्राचीन काल से चली आ रही थी और आज भी जीवित है।

तारापीड़ को स्वप्न में पत्नी के मुख में चन्द्रमा के प्रवेश करने के दर्शन हुए थे, अतः उसने पुत्र का नाम चन्द्रापीड़ रखा। नामकरण संस्कार के समय उसने ब्राह्मणों को

बहुत-सी सुवर्ण मुद्राएँ भी दीं। उसका अनुकरण करते हुए मंत्री शुकनास ने भी अगले दिन अपने पुत्र का नाम वैशम्पायन रखा और बाद में उनके चूड़ाकरण आदि संस्कार भी विधिवत् हुए। बाण ने अपने उपनयन, समावर्त्तन आदि संस्कारों का भी उल्लेख किया है। राज्यश्री के विवाहोत्सव का विस्तार में विवरण मिलता है। अन्यान्य राजाओं में से राज्यश्री ने मौखरी राजकुमार ग्रहवर्मा को अपने वर के रूप में चुना था। दूत द्वारा वर की स्वीकृति आ जाने पर महाराज ने कन्यादान का जल गिराया। विवाह की तैयारियाँ होने लगीं। आमंत्रित अतिथि व सम्बन्धी आने लगे। राजसेवक नगर, ग्रामों से उपयुक्त साधन-सामग्री जुटाने लगे। ज्योतिषियों ने विवाह का लग्न साधा, कुलवधुएँ मंगलाचार के गीत गाने लगीं और चतुर चित्रकार मांगलिक चित्र बनाने लगे। अनेक प्रकार के वस्त्रों की रंगाई और छपाई कर के उन्हें विवाह के समय के उपयुक्त बनाया जाने लगा। सूती और रेशमी, पतले और मुलायम सभी प्रकार के वस्त्र संजोये गये। विवाह के लग्न तक सब मार्गों को सजा दिया गया। तब ताम्बूल वाहक आया। उसका स्वागत कर उसके हाथ लग्न समय का संदेश भेज दिया। बारात सहित ग्रहवर्मा आया वह सुशोभित हथिनी पर सवार था। चारों ओर सुगन्धित द्रव्य बिखरे हुए थे, मल्लिका पुष्पों की माला को उसने सिर पर धारण किया हुआ था सम्भवतः यह सेहरा हो। हर्ष ने पैदल ही उसका स्वागत तथा आलिंगन किया और सम्मान से बैठाया। लग्न-समय पर कलशों से सुशोभित वेदी के पास वर और वधू को लाया गया तथा अग्नि की साक्षी में समिधाओं से यज्ञ करते हुए विवाह-संस्कार सम्पन्न हुआ। विवाह के बाद वर-वधू जिस वास-गृह में गए, उसके द्वार पर रति और प्रीति की मूर्तियाँ चित्रित थीं। (**प्रविवेश च द्वारपक्षकलिखितरीतिप्रीतिदैवतम्वासगृहम्**) बाण इसका उल्लेख करना भी न भूले। पुनः सुख-पूर्वक दस दिन वहाँ रहकर ग्रहवर्मा दहेज और वधू सहित अपने घर को लौटे।

प्रभाकरवर्धन की रुग्णता का समाचार सुन जब हर्ष उनके पास पहुँचा, तो उनमें कुछ प्राणशक्ति बाकी थी, उन्होंने हर्ष को अपना अन्तिम संदेश दिया और आँखें मूँद लीं। महादिनाश के बहुत से अपशगुन तब प्रगट थे। पुरोहितों के साथ-साथ सांमतों और पुरवासियों ने अर्थी को उठाया और सरस्वती के किनारे जाकर महाराज का दाह-संस्कार कर दिया। बाण ने दाह-संस्कार का तो नहीं, परन्तु शोकाभिभूत समाज का व्यापक चित्रण किया है। पुनः उनके फूल चुनकर उन्हें कलश में रखकर अस्थि-प्रवाह के लिए विविध सरोवरों, नदियों तथा तीर्थों में भेज दिया गया।

समाज के विभिन्न क्षेत्रों, व्यवसायों, अवस्थाओं और स्तरों से आने वाले लोगों

के शरीर की गठन, रूप-रंग, हाव-भाव एवं वेश-भूषा का जैसा सूक्ष्म चित्रण बाणं ने प्रस्तुत किया है वैसा अन्यत्र सुलभ नहीं। इसी से उस युग के समाज की मनो-भावनाओं, प्रथाओं एवं मान्यताओं का परिचय मिलता है, अतः कुछ रूपों पर दृष्टिपात करना अनुचित न होगा।

युवक सैनिक ने सिर के बालों को इकट्ठा कर उनका जूड़ा बांधा हुआ था। अगरु की काली बिन्दियों से युक्त लाल कचुंक-छोटी सी कुर्ती कसी हुई थी। सिर पर उत्तरीय की पगड़ी थी (उत्तरीयकृतशिरोवेष्टन) हाथ में कुछ ढीला कड़ा था, कमर की पट्टी में असि-छोटी छुरी लगाई हुई थी तथा निरन्तर व्यायाम के कारण उसकी देह छंटी हुई थी। कांतिमान् मुख के कारण उनका सेना-नायक सम्भ्रान्त-कुलीन प्रतीत होता था और वह घोड़े पर सवार था। एक अधेड़ अवस्था का विशालकाय, गौरवर्ण, दाढ़ी-मूँछ रहित, घुटे सिर वाला, शिष्ट आकृतिवाला, भव्य रूप वाला, सफेद कंचुक पहने हुए और सिर पर धुले हुए दुकूल-पट्ट को बांधे हुए अंगरक्षक था। सम्भवतः डा० वासुदेवशरण अग्रवाल को इसके विदेशी होने का भ्रम हो गया है। महाप्रतिहार परियात्र की चौड़ी छाती पर हार झूल रहा था, कानों में कुंडल थे, पतली कमर की पेटी पर माणिक्य चमक रहा था। बाएँ हाथ में मोतियों की मूठवाली तलवार और दाहिने में सोने की वेत्रयष्टि रहती थी। कठोर कर्म होते हुए भी स्वभाव से नम्र था। (मधुरया गिरा सविनयमभाषत) गौड़ाधिपति से बदला लेने के लिए हर्ष के जिस वृद्ध सेनापति ने उसे प्रोत्साहित किया था, वह लम्बा, गोरा, श्वेत केशी, साहसी और वीर वृद्ध था। उसकी चौड़ी छाती पर क्षत-चिन्ह आज भी उसका गौरव बढ़ा रहे थे। सफेद दाढ़ी झूल रही थी, भौंहें आँखों पर झुक आई थीं। लेकिन उसके चेहरे से पता लगता था, कि वह शत्रु-सेना को मार भगाने वाला, अपनी भागती सेना को रोकने वाला, युद्ध प्रेमियों को अनायास ही आकर्षित करने वाला और समस्त युद्ध-मर्म को जानने वाला है। सम्भवतः उसी ने हर्ष से साम्राज्य-निर्माण में हर्ष का साथ दिया था। मेखलक दूत का चंडातक मटियाले रंग की पेटी से ऊँचा कसा हुआ था और चिट्ठी को उसने डोरे के बीच में बाँध कर सुरक्षित रक्खा था। खराद पर चढ़ी हुई कमर वाला कुमारगुप्त और चौड़ी छाती वाला लम्बा तथा गोरा माधवगुप्त दोनों क्रमशः राज्यवर्धन और हर्ष की सेवा के लिए नियुक्त हुए। जंगली शबर युवक का चित्र अद्भुत है। चौड़ी छाती और लम्बी भुजाएँ, उदर छंटा हुआ, खराद पर चढ़ा हुआ मध्य-भाग, सब शारीरिक शक्ति के लक्षण हैं। ऊंचे माथे पर काले केशों का घेरा, नाक चपटी और ठोढ़ी मोटी, पर छोटी तथा गाल की उभरी हुई हड्डियाँ और चौड़े जबड़े—सब लक्षण विंध्य प्रदेश के आदिवासियों का चित्र उपस्थित करते हैं। धनुष बाण और पशुओं के शिकार ने उसके शिकारी रूप को और भी स्पष्ट

कर दिया था। स्थाणीश्वर के बाजार में हर्ष ने यमपट्टक को देखा। बाएँ हाथ में लाठी पर उसने एक चित्रपट लगा रखा था, जिस पर भैंसे की सवारी करते हुए यमराज का चित्र अंकित था। दाहिने हाथ में उसने एक सरकंडा ले रखा था, जिससे वह लोगों को नरक में मिलने वाली यातनाओं का स्मरण करवा रहा था। कुतूहल के कारण बालकों ने उसे सड़क पर घेर रखा था। (कुतूहलाकुल बहलबालकपरिवृतम्) दाक्षिणात्यमहाशैव भैरवाचार्य के परिव्राट् का चित्र भी दर्शनीय है। सिर चौड़ा, माथा ऊँचा, नाक टेढ़ी, गालों में गड्ढे, लटकता हुआ अधर, भुजाएँ घुटनों तक, तथा लम्बी ठोढ़ी के कारण उसका मुँह और भी लम्बा लग रहा था। शरीर पर गेरुए कपड़े का उत्तरीय तथा कंधे पर लटकता हुआ लाल योग पट्ट था। एक हाथ में बाँस था, जिसके सिरे पर झोली और कौपीन लटक रहे थे। झोली में कमण्डलु और बाहर खड़ाऊँ लटक रही थी। और स्वतः भैरवाचार्य काला कंबल ओढ़े बाघचर्म पर बैठा था। ५५ वर्ष की आयु होने पर भी कुछ ही बाल सफेद थे, सिर पर जटाएँ थी। माथे पर शिकन, ललाट पर भस्म छाती पर दाढ़ी, नाक का अग्रभाग झुका हुआ तथा कान में स्फटिक के कुण्डल से वह सुशोभित हो रहा था। औषधि, मंत्र तथा सूत्र के अक्षरों से युक्त शंख का टुकड़ा लोहे के कड़े में बाँध कर एक हाथ में डाला हुआ था, तो दूसरे में रुद्राक्ष की माला थी। क्षौम का कोपीन पहन कर पर्यंकबंध की मुद्रा में टांगों को योगपट्ट से बाँधे बैठा था। पुनः साधना भूमि में जब उसके दर्शन हुए तो वह भस्म का महामण्डल बना कर बैठा था और शव पर अग्नि जलाकर तिलों की उसमें आहुति दे रहा था। इससे स्पष्ट है, कि उस समय अंध-विश्वास-पूर्ण बहुत सी साधनाएँ समाज में प्रचलित हो चुकी थीं। और मनोकामना पूर्ति के चक्कर में जन-सामान्य तो क्या राजे, महाराजे भी ऐसे साधकों के शिकार होते थे।

बौद्ध भिक्षुओं के आचार्य दिवाकरमित्र के आश्रम में उस के दोनों ओर दो सिंह शावक बैठे थे। वह लाल चीवर-मुलायम वस्त्र धारण किए हुए था। सभी सात्विक गुण—यम, नियम, तप, शौच, विश्वास, दाक्षिण्य, परानुकम्पा आदि उस में मूर्तिमान् प्रतीत होते थे। उस का तापस-वेश प्रभावशाली था।

राज्य के विशेष अधिकारियों में महासामन्त स्कन्दगुप्त के आजानु लम्बे बाहु दण्ड, लम्बा नासावंश तथा भव्य मुख-मण्डल उस के महान् अधिकार के परिचायक थे। लम्बे घुंघराले बाल, आगे की ओर बढ़ा हुआ होंठ तथा भारी भरकम चाल उस के व्यक्तित्व के अन्य विशिष्ट लक्षण थे। हर्ष का चित्र और भी भव्य बना है। महानीलमणि की पाद पीठ पर बायाँ पैर रख कर संगमर्म की चौकी पर आंगन में हर्ष बैठे थे। देवताओं के रूप-सौंदर्य को बाण ने हर्ष में अनुभव किया इसीलिए उसे कान्ति है।

पराक्रम, कला, सौभाग्य, धर्म आदि का अजस्र स्रोत कहा है। फेन-श्वेत अत्यन्त पतला अधरवास पहने था तथा उस पर मुलायम वस्त्र—सम्भवतः रेशम की पट्टी बांधे हुए था। तारांकित उत्तरीय से शरीर के ऊपरले भाग को ढका हुआ था। छाती पर शेषहार था तथा भुजाओं में जड़ाऊ केयूर। ललाट पर अरुण चूड़ामणि, केशान्त पर मालती पुष्प की मुंडमाला तथा सिर पर शिखंडाभरण-कलगी सुशोभित थी।

जहां अन्यान्य क्षेत्रों के पुरुष-वर्ग के चित्रण से बहुविध समाज का परिचय मिलता है, वहाँ स्त्रियों के कुछ चित्रों को उभार कर बाण ने उन के सामाजिक परिवेश का भी परिचय दिया है। सन्देश वाहिका मालती धुले हुए रेशम का श्वेत, लम्बा झीना कंचुक पहने हुए थी। सम्भवतः झीना होने के कारण ही उस के नीचे बिन्दियों से युक्त कुसुम्भी रंग का लाल चंडातंक भी पहने हुए थी। मुख मानो नीले अंशुक की जाली से ढका हुआ था। माथे पर दमकता हुआ पद्मराग था, कटि प्रदेश में बजती हुई करधनी तथा गले में बड़े बड़े मोतियों का हार। छाती पर रत्नों की माला अलग से लटक रही थी, हाथ की कलाई में पन्नों से जड़ित सोने का कड़ा था तथा कानों में बाली थी। माथे पर कस्तूरी का तिलक बिन्दु तथा ललाट पर मांग में से लटकता हुआ चटुला तिलक आभूषण भी था। पीठ पर बालों का जूड़ा था और सामने केशों में चूड़ामणि मकरिका आभूषण। उस युग में स्वर्णाभूषणों का कितना प्रचलन था, इस वर्णन से स्पष्ट है और नारी-प्रसाधन को सदा से ही यहाँ महत्त्व दिया गया है, गुप्त-युग में इस का विशेष प्रचार था। दरबार की वारविलासिनियों का भी बाण ने एक चित्र प्रस्तुत किया है। ललाट पर अगरु का तिलक, चमचमाते हार, जिनकी मध्य-मणि इधर-उधर हिल रही थी, तथा बकुलमाला धारण किए हुए वे नृत्य कर रही थीं। चंचल भ्रूलताएं, तिरछी भौहों के साथ चितवनें तथा इसी प्रकार की अन्य भाव-भंगिमाएँ उन के हाव-भावों को प्रदर्शित कर रही थीं। सती होने के लिये प्रस्तुत यशोवती का वेश भी बाण की लेखनी से अछूता नहीं रहा। शरीर पर कुंकुम का अंगराग लगा कर उस ने मरणचिन्ह के रूप में लाल पट्टांशुक धारण किया हुआ था तथा गले में लाल कंठ-सूत्र पहन लिया था। हाथ में पति का चित्र फलक लेकर वह सती होने का निश्चय कर चुकी थी। इस से प्रचलित सती-प्रथा का भी बोध होता है।

समाज के अन्यान्य स्तरों व अवस्थाओं के लोगों की वेश-भूषा का बहुतायत से परिचय ऊपर लिखित उद्धरण से मिल जाता है। कुछ वस्त्रों का उस युग में विशेष प्रयोग होता था, उन का उल्लेख कर देना अनुपयुक्त न होगा। अंशुक एक विशेष रूप से पतला व मुलायम वस्त्र था—उसी के कई भेद थे, कभी वह उत्तरीय के रूप में

प्रयुक्त होता था, तो कभी उष्णीष पगड़ी बाँधने के लिये। नीलांशुक से मुँह ढकने की जाली का काम लिया जाता था, तो पट्टांशुक सती की शोभा बढ़ाता था। इसी प्रकार इस के और भी कई भेद थे। ऐसा प्रतीत होता है कि उस समाज में इस का बहुतायत से प्रयोग होता था, इससे यह अनुमान लगा लेना भी कदाचित् अशुद्ध न होगा कि अशुंक-वस्त्र निर्माण का उद्योग पर्याप्त महत्वपूर्ण होगा। योगियों और सन्यासियों द्वारा बहुधा योगपट्ट वस्त्र का उत्तरीय के रूप में प्रयोग होता था—यह बहुत सम्भवतः गेरुए रंग का सादा-सा कपड़ा होता था। गमद्दानुमा अधोवस्त्र का प्रायः समाज में प्रयोग होता था, यह अशुंक की भान्ति महीन न होकर कुछ मोटा होता होगा—ऐसा प्रतीत होता है। स्त्रियाँ कंचुक रूपी उत्तरीय के अतिरिक्त अधोवस्त्र के रूप में लहंगे का प्रयोग करती थीं। चंडातक ऊपर से नीचे तक लम्बे चोगे के रूप में आने वाला वस्त्र था, समाज में—विशेष रूप से राजसेवकों में इस का बहुतायत से प्रचलन था। आश्रमों में कहीं-कहीं वल्कलों के वस्त्र भी देखने को मिलते थे और विंध्याटवी के जंगली कौपीन के अतिरिक्त शायद ही किसी वस्त्र का उपयोग करते रहे हों। राज्यश्री के विवाह के समय जिन वस्त्रों को संगृहीत किया गया, वे छः प्रकार के थे—क्षौम, बादर, दुकूल, लालातन्तुज, अशुंक तथा नेत्र। क्षौम, सम्भवतः कोई कीमती, मुलायम वस्त्र रहा होगा। दुकूल उत्तरीय, चादर, धोती आदि के लिए प्रयोग में आने योग्य कुछ बड़ा कपड़ा होता होगा। अशुंक और नेत्र सम्भवतः रेशम के ही दो भेद थे। यहाँ वस्त्रों की रंगाई और छपाई का भी विशेष उल्लेख है। पहनने के अतिरिक्त बिछाने आदि के लिये भी उस समय कपड़े संगृहीत किये गये थे। राजाओं की वेश-भूषा में चार प्रकार के उत्तरीय—कंचुक, चीनचोलक, वारबाण तथा कूपसिक तथा तीन प्रकार के अधोवस्त्रों का उल्लेख मिलता है। इस से स्पष्ट है कि जन-समाज में अन्यान्य प्रकार के वस्त्रों व पहिरावे का प्रयोग प्रचलित था।

प्रसाधन का सर्वोत्तम साधन आभूषण युग विशेष की समृद्धि और मनोवृत्ति के परिचायक होते हैं। मकरिका सिर का आभूषण था, जो कभी मुकुट के साथ प्रयोग में आता था और कभी स्वतन्त्र रूप में। विटलीलालाटिका नामक आभूषण से मस्तक को सजाते थे, सम्भवतः यह बिंदी जैसा कोई आभूषण रहा होगा। केशान्त में मौलसिरी की मुण्डमाला पहनने का रिवाज था। सिर पर लोग मौलि भी धारण करते थे तथा पद्मराग मणि से जड़ित शिखंडखंडिका या कलगी भी इन मालाओं के बीचमें लगाते थे। स्त्रियाँ सिरपर चटुला तिलक व पद्मराग का चटुला धारण करती थीं जो उनकी मांग में से आगे को लटकता रहता था। कर्णाभरणों में त्रिकंटक सबसे अधिक प्रचलित था, स्त्री और पुरुष दोनों ही इसका प्रयोग करते थे। पुत्र जन्म महोत्सव पर दास-दासियाँ भी इसे पहन कर नाच कर रही थीं। कहीं-कहीं बालियों के पहनने का भी उल्लेख मिलता

है। शंख की बनी हुई अंगूठियों का भी प्रयोग होता है। गले में पहने जाने वाले हार और मालाएँ कई प्रकार की होती थीं। कोई बड़े-बड़े मोतियों वाली छोटी-सी, तो कोई लम्बी-प्रालम्ब माला, जो माणिक और पन्नों से जड़ी हुई होती थी। कलाई में सोने का कड़ा पहनने का रिवाज भी बहुत प्रचलित था। युवक सैनिक और सम्भ्रांत युवतियाँ प्रायः सभी इसका उपयोग करते थे। हाँ युवतियों के कड़ों में पन्ने आदि जड़े होते थे। करधनी या सोने की मेखला का भी प्रयोग प्रायः स्त्री और पुरुष दोनों ही करते थे। स्त्रियों में नूपुर का प्रयोग भी देखने को मिलता है, पर लगता है, यह बहुत प्रचलित न था। जनसमाज में प्रचलित इन आभूषणों के अतिरिक्त राजाओं के विशेष आभूषणों का परिचय भी हर्ष के वर्णन में उपलब्ध है। हर्ष की छाती पर शेष हार सुशोभित था और ललाट पर पद्मराग का अरुण चूड़ामणि। ललाट की केशान्त रेखा पर मालती पुष्प की मुण्डमाला तथा मुकुट पर लगी कलगी के रूप में शिखंडा-भरण सिर को सुशोभित कर रहे थे। कानों में कुण्डल के अतिरिक्त श्रवणावतंस भी शोभित था। सामान्यतः राजाओं के कर्णाभूषणों में इनके अतिरिक्त पत्रांकुर, कर्णपूर तथा कर्णोत्पल का भी उल्लेख मिलता है। अलकों को यथास्थान टिकाए रखने के लिए बालपाश का भी प्रयोग होता था, जो सम्भवतः सोने की पत्ती के रूप में होता था। राजाओं की पगड़ी—उष्णीषपट्ट भी बहुधा सोने का जड़ाऊ आभूषण ही होता था, जिस में उन के वैभव के अनुरूप मणियाँ आदि जड़ी रहती थीं। इनके अतिरिक्त राज-छत्र का उन दिनों विशेष प्रचार था। प्रधान सेनानी और महामात्य आदि भी कभी-कभी उसे धारण करते थे। इतने अधिक आभूषणों का प्रयोग तथा बाण के मित्रों में सुवर्णकार चामीकर आदि का होना सिद्ध करता है, कि यह उद्योग भी नागरिकों की आजीविका अर्जित करने का एक अच्छा साधन था।

भोजन के सम्बन्ध में उस समय भी समाज में स्पृश्यास्पृश्य का विचार विद्यमान था। अंत्यजों के हाथ का भोजन द्विज नहीं ग्रहण करते थे। गेहूँ, चावल, दूध, घी, दही आदि उस युग में प्रचलित भोजन की सामग्री थी। रोटी का प्रयोग होता था। इन के अतिरिक्त यावा पर चबेना और सत्तू का प्रयोग प्रचलित था। मिश्री या मीठे का भी प्रयोग होता था। ब्राह्मणों में मद्य-सेवन अच्छा नहीं समझा जाता था, पर जन-साधारण में मद्य-पान बहुतायत से होता था। मांस-भक्षण पर भी कोई प्रतिबन्ध न था, लेकिन बैल, गदहा, घोड़ा, हाथी, सूअर आदि के मांस का प्रयोग केवल अंत्यज ही करते थे। उत्सवों में मदिरा का सीमातीत प्रयोग होता था। हर्ष का जन्मोत्सव और राज्यश्री का विवाहोत्सव इस के प्रमाण हैं। सेना के भोज्य पदार्थों में चावल, चने, सत्तू के साथ-साथ बेर, कांजी का घड़ा और गन्ने के रस, राब की गगरी के भी दर्शन होते हैं। सेना ने जाते-जाते उड़द के खेतों को भी रौंदा था। गाँवों के घरों में

अन्यान्य सब्जियों की बेलों का भी उल्लेख मिलता है। रसोई के बर्तनों का उपयोग होने के भी प्रमाण मिलते हैं। तापक (तवा), तापिका (तवी), तलक (अंगीठी) तथा कड़ाही आदि का और कुछ तांबे के बर्त्तनों का भी उपयोग होता था।

मनोविनोद जन-सामान्य के मनोरंजन का साधन होते हैं। जन-मानस के स्तर और रुचि भेद के कारण उनमें भी पर्याप्त विविधता पाई जाती है। विद्वान् सामाजिकों के मनोरंजन के लिए विद्यागोष्ठी का आयोजन होता था, सम्भवतः काव्य-गोष्ठी या गीत गोष्ठी भी इसी का अंग हों, इस कोटि में तो वे आ ही जाती हैं। कला-मर्मज्ञों के मनोरंजन के लिए नृत्य, वाद्य व वीणा गोष्ठियाँ समाज में प्रचलित थीं। राज्य-उत्सवों पर इनका विशेष रंग जमता था। द्यूत गोष्ठियों का भी अभाव न था। श्वेत और काले आठ खाने वाले (अष्टापदपट्ट) शतरंज का खेल भी मनोरंजन का एक उत्कृष्ट साधन समझा जाता था। आक्षिक (पासा खेलने वाला) आखंडल स्वतः बाण का ही मित्र था। स्थाणीश्वर में लासकों की संगीत-शालाएँ, वेश्याओं के कामायतन तथा वीणा-वादन के स्थान भी सामाजिकों के मनोरंजन-स्थल थे। रासमण्डलियाँ भी जन-मानस के आह्लाद की सामग्री प्रस्तुत करती थीं, विशेषतः उत्सवों के समय पर। ये मण्डलियाँ अन्यान्य वाद्य यंत्रों का उपयोग करती थीं। राजगृहों में मनोविनोदनार्थ पंजर-शुक-सारिका, गृहमयूर, हंसमिथुन, चक्रवाल युगल आदि कई पक्षी होते थे। इनके अतिरिक्त मृगया-शिकार उस युग का एक अन्य प्रधान मनोरंजन था। युद्ध के लिए गये हुए राज्यवर्धन का अनुसरण करता हुआ हर्ष सम्भवतः शिकार में ही लग गया था, जब उसे पिता के रुग्ण होने का समाचार मिला था। राजाओं के शिकार खेलने के लिए सेवक जंगली पशुओं को खदेड़ कर एक ओर लाते थे। शिकार के डर से भागते हुए पशुओं का कादम्बरी में अच्छा चित्र मिलता है, इसी गड़बड़ी में चन्द्रापीड़ का छत्र उठाने वाला भी कहीं पीछे रह जाता है और धूप से बचने के लिए उसे पत्रों के काम-चलाऊ छत्र का आश्रय लेना पड़ता है। इनके अतिरिक्त राजाओं की काम-क्रीड़ाएँ भी उनके मनोरंजन का साधन थीं, जिनका उल्लेख तारापीड़ के विनोदों में मिलता है। समृद्ध समाज को ही मनोरंजन के लिए अवकाश मिलता है, और बाण के युग का समाज कम समृद्ध न था।

साहित्य और कलाओं का समुचित विकास सांस्कृतिक प्रगति का द्योतक है। हर्ष स्वतः नाटककार था, बाण संस्कृत का अद्वितीय गद्यकार हुआ है, उसकी साहित्यिक गरिमा का उल्लेख अन्यत्र मिलेगा। संस्कृत के साथ २ अपभ्रंश और प्राकृत का साहित्य भी उस समय पर्याप्त विकसित हो रहा था। साहित्य के अतिरिक्त संगीत का भी विशेष विकास हुआ था। वीणा, मृदंग तथा पटह के अतिरिक्त वारविलासिनियों द्वारा जन्मोत्सव पर आलिंग्यक, वेणु, झल्लरी, तंत्री-पटह, अलाबु-वीणा तथा काहल आदि का प्रयोग इस बात का प्रमाण है और यह सब सिखाने के लिए स्थाणीश्वर में कई

संगीत शालाएँ भी थीं। बाण के ध्रुवपद गान के ज्ञान से प्रतीत होता है, कि परम्परागत संगीत पद्धतियों का भी समाज में प्रचलन था। चित्रकला का तो और भी अधिक विकास हुआ था। हर्ष-जन्म से पूर्व यशोवती जिस भवन में थी, उस पर चित्रित चँवरधारिणी स्त्रियां भी चँवर झलने लगी थीं (सुप्तायाः चित्रभित्तिचामरग्राहिरयोपि चामराणि चालयांचक्रुः)। विवाह के बाद ग्रहवर्मा और राज्यश्री जिस वास-गृह में गए थे उसके द्वार पर भी रति और प्रीति के चित्र अंकित थे। राज्यश्री के विवाह के समय न केवल चित्रकार मांगलिक चित्र बना रहे थे, अपितु महिलाएँ भी कलश और सुराइयों पर चित्र बना रही थीं। वेदी को पूर्णतया सजाया गया था। उज्जयिनी में अनेक चित्रशालाएँ थीं, जहाँ चित्र बनाने की कला सिखाई जाती थी और बाण के मित्रों में चित्रकार भी थे। इस सबसे स्पष्ट है, कि उस युग में चित्रकला का पर्याप्त विकास हुआ था। कपड़ों की रंगाई और छपाई के कार्य का उल्लेख पहले ही हो चुका है। राज्यश्री के विवाह-मण्डप के आस-पास बहुत-सी मूर्त्तियाँ थी। बाण ने आरम्भ में ताण्डव करते हुए नटराज शिव की मूर्ति का भी उल्लेख किया है। वास्तु-निर्माण कला का इस समय विशेष विकास हुआ था। विवाह के बाद उपयोगी वास-गृह में दर्पण लगे हुए थे। राजकुल में चार कक्ष्य होते थे, जो वीथियों से परस्पर जुड़े हुए थे। तृतीय कक्ष में प्रभाकरवर्धन और यशोवती का आवास था, चतुर्थ में हर्ष का आस्थानमंडप। धवलगृह महाराज और महारानी के निवास-प्रासाद थे। राजकुल के बाहर स्कन्धावार था, वहीं से अन्दर जाने वालों का प्रवेश नियन्त्रित किया जाता था। आंगन के चारों ओर बने हुए कमरे ही चतुःशाल कहलाते थे, वहीं पर बैठने के लिए ऊंची वेदिका भी बनी होती थी। महलों के खम्भों में मणियाँ भी जड़ी रहती थीं। सामान्य जनता के घर सादा, परन्तु आराम-देह बने होते थे। समय २ पर उन पर पलस्तर और सफेदी होती थी, विशेषतः उत्सव के अवसरों पर। राज्यश्री के विवाह के समय सफेदी करने के साथ साथ महल को सब प्रकार से सजाया भी गया था।

उस युग में प्रचलित प्रथाओं और रीति-रिवाजों का भी हमें परिचय मिलता है। संतानोत्पत्ति-विशेषतः पुत्र जन्म के लिए समाज में अंध-विश्वास पर आधारित अन्यान्य साधनाओं का आश्रय लिया जाता था, कादम्बरी में इसका विशेष उल्लेख है। देवताओं के आशीर्वाद से संतान सुलभ थी। बच्चों के दल से घिरी हुई बिल्ली के मुँह वाली मातृ देवी सूतिका-गृह में रक्खी जाती थी। जन्म समय पर ही ज्योतिषी नव-जात शिशु के लक्षण देखते थे और राजा शुभ मुहूर्त्त में ही शिशु के प्रथम दर्शन कर सकता था। विवाह के अवसर पर लग्न साधने के लिए अथवा युद्ध में प्रस्थान के लिए ज्योतिषियों का आश्रय लिया जाता था। प्रस्थान के समय बड़ों का आशीर्वाद प्राप्त करना आवश्यक था, तभी कार्य में सफलता प्राप्त होती थी। तीर्थ-यात्रा आदि पर जाते समय लाल मालाओं को पहन कर लोग घर से निकलते थे। राज्यारूढ़ होने के

समय राजा बंदियों को छोड़ता था। और हर्ष पंचवार्षिक दान भी देता था, जिससे पता चलता है कि समाज में यह प्रथा चली आ रही थी । राजा के आगे हरवाले प्राय: चला करते थे। समाज में विवाह के अवसर पर सिठनियों (अश्लील गालियों) का रिवाज प्रचलित था। दहेज प्रथा भी देखने को मिलती है। युद्ध पर प्रस्थान करने के समय मांगलिक सूत्रों व मंत्रों का पाठ होता था, शंख बजते थे, सेनाएँ सूर्य निकलने से बहुत पहले ही चल पड़ती थीं। उससे पूर्व राजा विधिवत् यज्ञ करता था, ग्राम दान आदि देता था, तब सफलता की कामना कर प्रस्थान करता था। प्रभाकर-वर्धन की मृत्यु से पहले ही यशोवती का सती होना प्रचलित सती-प्रथा का द्योतक है। मृत्यु के समय राजा का कर्तव्य-प्रेरक, धैर्य बंधाने वाला संदेश व्यक्ति के लौकिक-पारलौकिक जीवन में संतुलन का परिचायक है। अगरु काष्ठ की चिता, सरस्वती के किनारे पर दाह-संस्कार, सरिता-जल में अस्थि-प्रवाह तथा मृत्यु के उपरांत अशौच के दिनों की स्वीकृति कुछ अन्य प्रचलित प्रथाएं थीं। पिता की मृत्यु के समय हर्ष ने सभी असगुन अनुभव किए थे।

समाज में स्त्रियों की स्थिति अच्छी थी। कुलीन समाज की स्त्रियाँ न केवल विधिवत् शिक्षा पाती थीं, अपितु अन्य कलाओं में भी प्रवीण होती थीं। सखियों सहित राज्यश्री ने नृत्त, गीत आदि कलाओं में विशेष योग्यता प्राप्त की थी। (अथ राज्य-श्रीरपि नृत्तगीतादिषु विदग्धासु सखीषु सकलासु च कलासु प्रतिदिनमुपचीयमानपरिचया।) सच्चरित्रता कुलीन नारी का विशेष गुण समझा जाता था, पर वेश्यालय न हों, ऐसी बात भी नहीं। और राजकुल की दासियों के मंत्रियों व सामन्तों से गुप्त-सम्बन्ध भी बने ही हुए थे। समाज में स्त्रियाँ गृहिणियाँ ही थीं, केवल राजकुल में—विशेष रूप से अन्त:पुर में परिचारिका या दासी का कार्य करती थीं। महारानी का राजकुल में विशेष सम्मान था और दाम्पत्य प्रेम की घनिष्ठता ने ही उसे यह कहने पर विवश किया, कि महाराज को मरते देख मेरा जीना बड़े साहस का कार्य है। (मरणाच्च मे जीवितमे-वास्मिन् समये साहसम्) इसीलिये वह उसी समय सती हो गई। स्त्रियों का विवाह प्राय: छोटी ही अवस्था में हो जाता था, और राजकुल की स्त्रियों को वर-चुनाव में स्वतंत्रता प्रतीत होती है, राज्यश्री ने ग्रहवर्मा को चुना था। विधवा स्त्रियाँ भिक्षुणी या सन्यासी भी हो जाती थीं। बाण की मित्र-मण्डली में चार स्त्रियों का होना उनकी समाज में स्वतंत्रता का परिचायक है। वे अच्छे वस्त्रों और आभूषणों का उपभोग करती थीं, जिसका उल्लेख पहले ही आ चुका है।

धार्मिक स्वतन्त्रता भारतीय संस्कृति की एक बड़ी विशेषता रही है। बाण के युग में जहाँ एक ओर बौद्ध-धर्म के अन्यान्य सम्प्रदायों का विकास हो रहा था, वहाँ गुप्त-काल में जिस हिन्दू-धर्म का पुनरुत्थान हुआ था, उसके भी कई सम्प्रदाय समाज में अपना स्थान बनाए हुए थे। सम्भवत: शिव उस युग का सर्वाधिक प्रचलित देव

था। हर्ष भी अपने आरम्भिक जीवन में शिव-भक्त ही थे। स्थाणीश्वर के तो घर घर में शिव की पूजा होती थी। (गृहे-गृहे अपूज्यत भगवान् खंडपरशुः)। सरस्वती द्वारा सरिता तट पर शिव के पंचब्रह्माक्षर की पूजा का उल्लेख है। यात्रा पर प्रस्थान करते समय बाण भी दूध से शिव को स्नान कराके और विधिवत् पूजा करके ही चला था। युद्ध के लिए हर्ष ने जिस मन्दिर से प्रस्थान किया था, सम्भवतः वह भी शिव-मन्दिर ही था। भास्कर वर्मा तो एकाकी शिव-भक्त ही था। कादम्बरी में भी कई स्थलों पर शिव मन्दिर का उल्लेख मिलता है। गुग्गुल जलाकर, दूध से स्नान कराकर, बिल्वपत्र आदि चढ़ाकर विधिवत् शिव-लिंग की पूजा प्रचलित थी। प्रभाकर वर्धन द्वारा सूर्य की पूजा भी इस बात का प्रमाण है, कि उस समय इसका पर्याप्त प्रचलन था। इसके अतिरिक्त दुर्गा, चण्डिका, मातृका आदि देवियों की मूर्तियों तथा पूजा का उल्लेख यत्र-तत्र मिलता है। राज्यश्री के विवाह में इन्द्राणी का भी पूजन हुआ था। यज्ञीय कर्मकाण्ड केवल ब्राह्मणों के घरों तक ही न सीमित थे, अपितु स्थाणीश्वर में सर्वत्र ही हवन, यज्ञ, महादान और वेदघोष की धूम थी और श्रौत-आचारों को भी जन-सामान्य में मान्यता प्राप्त थी। इस प्रकार धार्मिक कर्म-काण्डों का समाज में विशेष स्थान था। दिवाकर मित्र के आश्रम से बौद्ध धर्म के प्रचार का बोध होता है, भिक्षु और भिक्षुणियों का उल्लेख समाज में उसके जीवन्त-रूप का प्रमाण है। जैनों के भी कुछ सम्प्रदाय उस समय प्रचलित थे। मंत्रसाधक, कापालिक और तान्त्रिकों ने भी समाज में अपना स्थान बनाया हुआ था। संतान-कामना से लोग मंत्र-साधकों का आश्रय लेते थे, ऐसे ही साधक कराल बाण के मित्र थे। प्रभाकर वर्धन की मृत्यु से रक्षा के लिए जब वैद्य और पूजा-पाठ कुछ न कर सका, तो मास भर तक भूतोपचार होता रहा, लेकिन यमराज अजेय सिद्ध हुआ। शैव भैरवाचार्य ने महाश्मशान भूमि में अनेक तांत्रिक क्रियायें की थीं—शव पर बैठ कर विधिवत् होम करना उनमें से प्रमुख थी। बाण के युग में एक ओर तीर्थों, पवित्र सरिताओं-गंगा आदि की मान्यता स्थापित हो चुकी थी और लोग विधिवत् पूजा, तीर्थ-यात्रा, स्नान, व्रत, उपवास आदि में विश्वासी थे, तो दूसरी ओर समझ न आने वाली अन्यान्य सम्प्रदायों की तान्त्रिक-क्रियायें भी समाज में प्रचलित थीं। उस समय में प्रचलित विभिन्न उन्नीस सम्प्रदायों के भी बाण ने नाम गिनाए हैं। दिवाकरमित्र के आश्रम में ये लोग परस्पर विचार-विनिमय के लिए आते रहे होंगे। इनमें आर्हत, श्वेतपट और केशलुंचन जैन साधु थे। लोकायतिक चार्वाक थे, भागवत, वर्णी, कणाद, कापिल, औपनिषद, ऐश्वरकारणिकि, धर्मशास्त्री, पौराणिक, साप्ततन्तव और पाँच-रात्रिक वैदिक मतानुयायी थे। इससे स्पष्ट है, कि उस युग में वैदिक मत का विशेष प्रचार होने लग गया था। प्रभाकरवर्धन की रुग्णता का संदेश पाकर जब हर्ष राजकुल में लौटा था, तो उसने वहाँ सभी सम्प्रदाय वालों की क्रियाओं, मंत्र-पाठों, देव-पूजाओं

तथा यज्ञों को होते देखा था। इससे राजा की धार्मिक उदारता का पता चलता है, सम्भवतः हर्ष स्वतः भी अपने अन्तिम दिनों में बौद्ध हो गया था। इस प्रकार सामाजिक स्तर पर धार्मिक कट्टरता लोगों में घर नहीं कर गई थी, यद्यपि कहीं-कहीं विभिन्न सम्प्रदायों के लोगों में परस्पर द्वेष की भावना के दर्शन अवश्य होते हैं, यथा दिवाकर मित्र आदि पाराशरी भिक्षुओं और ब्राह्मणों में।

बाण के युग में शासन-प्रबन्ध कैसा था, इस पर भी दृष्टिपात करना असंगत न होगा। वंश-परम्परा से राजा का बड़ा पुत्र ही प्रायः राज्य का अधिकारी होता था। यद्यपि यहाँ पिता-मृत्यु से शोकातुर राज्यवर्धन ने छोटे भाई हर्ष को राज्य सौंप दिया था और स्वतः शत्रुओं से बदला लेने चला गया था। अपने राज्य के विस्तार और महत्ता के साथ साथ वे बड़ी उपाधियाँ ग्रहण करते थे। 'परमभट्टारक महाराजाधिराज' उपाधि का हर्ष ने प्रयोग किया है। राजा ही मंत्रियों की नियुक्ति करता था, पर ऐसा प्रतीत होता है, कि पहले राजा के समय से चले आने वाले मुख्य मंत्रियों व सेनापतियों को वह उसी प्रकार बना रहने देता था। वे उसके अच्छे सलाहकार और शुभेच्छुक होते थे। राजा में सभी सात्विक वृत्तियों और सद्गुणों की अपेक्षा बनी रहती थी—इसीलिए बाण ने हर्ष में बहुत-से देवताओं के गुणों का उल्लेख किया है। यद्यपि राजा का प्रधानमन्त्री एक ही रहता होगा, पर बाण ने प्रायः मंत्रियों के लिए महामात्य शब्द का ही प्रयोग किया है। वृद्ध और योग्य राजा के सम्बन्धी को इस पद के लिए प्राथमिकता दी जाती थी, सम्भवतः हर्ष का प्रधान अमात्य उसका ममेरा भाई भण्डी था। महासंधिविग्रहाधिकृत एक अन्य उच्च पद था, आजकल की भाषा में इसे विदेश-मन्त्री भी कहा जा सकता है, यह समीपवर्ती राजाओं से सभी प्रकार के सम्बन्ध स्थापित करने का अध्यक्ष होता था। हर्ष के समय इसी ने समीपवर्ती राजाओं को हर्ष की आधीनता स्वीकार करने या युद्ध के लिए सन्नद्ध होने की घोषणा की थी। उन दिनों प्रधान सेनानायक बहुत महत्त्व-पूर्ण पद था, हर्ष का वृद्ध और अनुभवी सेनानायक सिंहनाद सम्भवतः प्रभाकर वर्धन के समय से ही चला आ रहा था। बाण ने विस्तार से उसके पराक्रमी देह का परिचय दिया है। राज्यवर्धन की मृत्यु पर गौड़ाधिपति से बदला लेने की प्रेरणा इसी ने हर्ष को दी थी। इसके अतिरिक्त बलाध्यक्ष का भी उल्लेख मिलता है, सम्भवतः यह सेना के एक अंग के अध्यक्ष होते होंगे जैसे पदाति सेना, अश्वसेना और गजसेना। सभी के अलग-अलग अध्यक्ष होंगे। इनके अतिरिक्त कर वसूल करने वाले राज्य-कोष के अधिकारी तथा राज्य में न्याय का प्रबन्ध करने वाले भी उस युग में महत्त्व-पूर्ण मंत्री रहे हैं। महत्त्वपूर्ण मामलों की जाँच सम्भवतः राजा खुद ही करता था। समीपवर्ती राजाओं से तीन प्रकार के सम्बन्ध होते थे, एक वे जो पूर्ण आधीनता स्वीकार कर लेते थे, दूसरे जो कर देते थे और

तीसरे जो छोटे होते हुए भी मित्र थे। सामंत और महासामन्तों का सम्राट् के दरबार में विशेष स्थान था, सम्भवत: उन्हीं के माध्यम से राजा जन-सामान्य की अवस्था और रुचियों को जान पाता था तथा उनकी रक्षा का भार राजा पर था। प्रतिहार, महाप्रतिहार और दौवारिकों का भी विशेष महत्व था, क्योंकि उनकी कृपा के बिना महाराज के दर्शन सम्भव न थे। राजकुल के परिचरों में अंगरक्षक, अन्त:पुर का वयोवृद्ध कंचुकी तथा अन्य अनेक विश्वस्त दास-दासियाँ होती थीं। राज्य उत्सवों में ये लोग खुलकर भाग लेते थे। दूतों का महत्व-पूर्ण स्थान था, वे निर्भय होकर दूसरे राज्य में जा सकते थे। शासन के लिए राज्य के प्रांत प्राय: राजकुमारों या अन्य विश्वसनीय अधिकारियों के अधीन होते थे। गाँवों में राजा की ओर से अक्षपटलिक नियुक्त थे—जो सम्भवत: आजकल के पटवारी से अधिक अधिकार रखते थे, क्योंकि राजाज्ञाओं को प्रचारित करने के लिए उनके पास भी करणिक होते थे। राजा के द्वारा जिन्हें दान में भूमि या गाँव दिए गए हैं, ऐसे अग्रहारभोगी ब्राह्मणों तथा राज्य कर्मचारियों में झगड़े का भी बाण ने उल्लेख किया है। राज-दरबार में राजा ऋतु के अनुकूल आसन ग्रहण करता था। राज-कार्यों के अतिरिक्त वह विद्वानों या कवियों को भी मिलने में प्रसन्नता अनुभव करता था। बाण की विद्वत्ता का परिचय मिलने पर वह उससे विशेष रूप से प्रभावित हुआ था, स्वत: भी नाटककार था। दिन का एक भाग वह धार्मिक कृत्यों में भी अवश्य बिताता था। मनोरंजन के अन्यान्य साधनों में मृगया को भी उसने अपनाया था। उसका पंचवार्षिक-दान प्रसिद्ध है, जबकि पाँच वर्ष बाद वह तीर्थ विशेष पर जाकर ब्राह्मणों और गरीबों को दान देकर अपना कोष खाली कर देता था। बाण ने उसके राज्य में वर्तमान प्याऊओं का भी उल्लेख किया है। उसके कर्मचारी वर्ग में ब्राह्मणों की प्रधानता थी, सम्भवत: इसलिए कि वे ही सर्वाधिक विश्वसनीय समझे जाते थे। ज्योतिषियों के अतिरिक्त चिकित्सकों का भी समाज व राजकुल में विशेष स्थान था। प्रभाकर वर्धन के चिकित्सकों में से एक सुषेण भी था। सभी प्रकार की औषधियों का प्रयोग होता था।

सेना उस युग के शासन का एक विशेष अंग थी। पदाति, अश्व सेना और गजसेना हर्ष की सेना के तीन भाग थे, प्रत्येक का एक अध्यक्ष था और उनके ऊपर प्रसिद्ध सेनानायक बृद्ध सिंहनाद। बहुत सी सेना प्राय: राज-प्रासाद के पास ही बाहर की ओर रहती थी। पदाति-सेना-नायक सम्भवत: घोड़े पर रहता था, ताकि सबका निरीक्षण कर सके। अश्वसेना का बाण ने उतना उल्लेख नहीं किया, जितना गजसेना का। इससे पता लगता है, सम्भवत: उन दिनों गजसेना का अधिक महत्व हो। समीप-वर्ती राजाओं से, सामंतों से तथा अपने कर्मचारियों द्वारा कई प्रकार से राजा को

हाथी प्राप्त होते थे। हर्ष के अपने हाथी दर्पपात का बाण ने बड़ा ही सुन्दर चित्रण किया है। गजसेना का अध्यक्ष सम्भवतः स्कन्दगुप्त था, जिसे युद्ध के लिए प्रस्थान करते समय हर्ष मिला था। ह्यान च्वांग ने हर्ष की सेना में ६० हजार हाथियों का होना बताया है, जो एकदम अविश्वसनीय प्रतीत होता है, हाँ! इससे इतना ही अनुमान लगाया जा सकता है, कि उसकी सेना में बहुत ज्यादा हाथी थे। युद्ध के लिए प्रस्थान के समय विधिवत् यज्ञ, पूजा आदि करके ज्योतिषी से मुहूर्त पूछकर चला जाता था। समग्र साधन सामग्री के साथ-साथ अन्तःपुर का भी सेना के साथ-साथ जाने का उल्लेख मिलता है। प्रस्थान के निमित्त रात के तीसरे पहर ही कूच का नगाड़ा बज जाता था। सशस्त्र सन्नद्ध सैनिकों, सामंतों व राजाओं का बाण ने बड़ा ही विशद् चित्रण प्रस्तुत किया है। सम्राट् भी कभी-कभी सेना का निरीक्षण करते थे। सेना के चलने से कृषकों की फसल की भी हानि होती थी, सम्भवतः युद्ध के बाद सम्राट् कर आदि न लेता हो। इस प्रकार बाण के सेना-वर्णन में ही इस युग के बहुत से सांस्कृतिक जीवन का परिचय मिलता है, क्योंकि उसका वर्णन बड़ा व्यापक और सूक्ष्म बन पड़ा है।

भ्रमणशील बाण ने अपनी सूक्ष्मेक्षिणी दृष्टि और कौतूहल-जनक वृत्ति के माध्यम से अपने युग के समाज का जैसा व्यापक परिचय पाया था, वह अद्भुत था। फिर उसकी सशक्त अभिव्यक्ति और साहित्यिक-गरिमा को समझ लेना भी उतना आसान नहीं। और उसके रत्नों को ढूंढ निकालना तो किसी विशिष्ट विद्वान् का ही कार्य है। उस युग के सांस्कृतिक-जीवन पर प्रकाश डालने के लिए सांस्कृतिक के प्रत्येक उपादान का विशद और व्यापक विवरण अपेक्षित है। इन पृष्ठों में तो सम्भवतः उसकी एक झलक मात्र ही मिल सके।

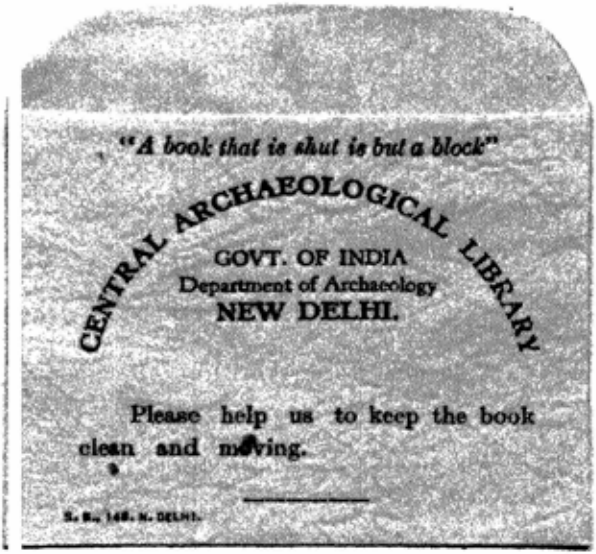

"A book that is shut is but a block"

CENTRAL ARCHAEOLOGICAL LIBRARY

GOVT. OF INDIA
Department of Archaeology
NEW DELHI.

Please help us to keep the book clean and moving.

S. B., 148. N. DELHI.